आधुनिक पशुपालन
एवं
दुग्ध विज्ञान

(Animal Husbandry & Dairy Science)

लेखक :

रामअवतार पोरवाल

एम०एस-सी०एजी०बी०एड०(कृषि)

कृषि प्रमुख

श्री कर्ण नरेन्द्र राजकीय सीनियर उच्च मा० विद्यालय

जोबनेर (जयपुर)

महिपालसिंह चौधरी

एम०ए०, बी०एस-सी०एजी०, एम०एड०

व्याख्याता (कृषि)

राजकीय सीनियर उच्च माध्यमिक विद्यालय

भरतपुर

संशोधनकर्ता :

डॉ० वी० वी० सिंह

एम०एस-सी०एजी०(ए०एच० & डी०)पी-एच०डी०

अधिष्ठाता

डेयरी विज्ञान महाविद्यालय, उदयपुर

राजस्थान प्रकाशन

त्रिपोलिया बाजार, जयपुर-2

* प्रकाशक :
राजस्थान प्रकाशन
त्रिपोलिया बाजार,
जयपुर-2

* मूल्य :
50.00

* संस्करण :
1990

* कम्पोजिंग :
जनरल कम्पोजिंग एजेन्सी
किशनपोल बाजार, जयपुर-

* मुद्रक :
मॉडर्न प्रिण्टर्स
गोधों का रास्ता
जयपुर-302003

आमुख

आदिकाल से ही मानव की उदरपूर्ति एवं जीविकापार्जन का मूल स्रोत पशुपालन रहा है। मानव पशुओं की विभिन्न नस्लें, उनके पालन-पोषण की विभिन्न क्रियाओं से परिचित रहा है। कृषि में पशुओं के महत्त्व से समाज पूरी तरह परिचित है। इन्हीं विविध उपयोगिता के कारण बोर्ड ने उच्च माध्यमिक कक्षा मे पशुपालन एवं दुग्ध उद्योग विषय प्रारम्भ किया है।

पशुपालन क्षेत्र मे विगत वर्षों में वैज्ञानिकों ने विभिन्न उन्नत नस्लें इनके पालन-पोषण की तकनीक को विकसित किया है। इन सभी जानकारी को पशुपालकों तक प्रसार के लिए अच्छे साहित्य की कमी है। इसी कमी की पूर्ति के लिए 'पशुपालन तथा दुग्ध उद्योग' पुस्तक प्रस्तुत है। जो उच्च माध्यमिक कक्षा के छात्रों की आवश्यकता को पूरा करती है।

पुस्तक की संरचना में तत्सम्बन्धी हिन्दी एवं अग्रेंजी मे लिखी अनेको पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं की सहायता ली गई है, उनके लेखको तथा प्रकाशको का आभारी है।

पुस्तक लेखन में साथी अध्यापक बन्धुओ तथा छात्रों से सहयोग एवं प्रेरणा मिली है उनके हम कृतज्ञ हैं। पुस्तक विवेचन के लिए अधिष्ठाता, डेयरी विज्ञान महाविद्यालय, उदयपुर के डॉ० बी० बी० सिंह के विशेष आभारी हैं जिनके सद्-प्रयासों से ही पुस्तक का यह संशोधित एवं परिवर्द्धित रूप आ सका है।

पुस्तक प्रकाशन के लिए हम राजस्थान प्रकाशन के श्री राजेन्द्र कुमार जसोरिया के आभारी हैं जिन्होंने पुस्तक मुद्रण मे विशेष रुचि ली है। पाठकों द्वारा दिए जाने वाले विषय सम्बन्धी उपायों/सुझावों का अगले सस्करणमें समावेश किया जावेगा।

हमें विश्वास है कि पुस्तक पशुपालकों तथा छात्रों दोनों को ही उपयोगी होगी।

लेखक

पोरवाल एवं चौधरी

विषय-सूची

प्रथम खण्ड–पशुपालन

द्वितीय खण्ड—पशु चिकित्सा

खण्ड तृतीय—दुग्ध विज्ञान

प्रथम खण्ड

पशु पालन (Animal Husbandry)

सामान्य—

1. पशुधन का महत्त्व, मिश्रित खेती।
2. पशुधन से प्राप्त पदार्थों का राजस्थान की अर्थव्यवस्था में महत्त्व।
3. भारत में पशुधन की समस्यायें।

चुनाव—

4. पशुधन (गाय एवं बैल) का चुनाव।
5. शिशु व प्रौढ़ पशुओं की आयु एवं देहभार का निर्धारण।

नस्लें

6. विभिन्न पशुधन—गाय, भैंस, बकरी, भेड़ की नस्लें।

सामान्य प्रबन्ध—

7. पशुओं का आवास।
8. गाय, नवजात एवं सांड का प्रबन्ध।
9. पशुओं की सुरक्षा एवं प्रबन्ध सम्बन्धी सामान्य क्रियायें।
10. पशुओं के मेले व प्रदर्शन के लिए तैयार करना।
11. पशुओं को वश में करना।
12. कृत्रिम गर्भाधान।

भोज्य एवं भोजन विधि—

13. पशु शरीर का संगठन एवं पशु आहार।
14. आहार निर्धारण।
15. चारे का संरक्षण।

पशुपालन का महत्त्व एवं मिश्रित खेती

पशुपालन—व्यवहारिक ज्ञान की वह शाखा है जो पालतू पशुओं को स्वस्थ एवं मितव्ययतापूर्ण पालन करने की कला का ज्ञान कराती है। इसके अन्तर्गत पशु-प्रजनन, पोषण एवं देखरेख तथा चिकित्सा व्यवस्था का गठन एवं विस्तृत अध्ययन करते हैं।

अनुमान है कि ईसा से लगभग 6,000 वर्ष पूर्व से ही मानव द्वारा पशुओं का पालन-पोषण किया जाता रहा है। आदिकाल में मानव अपने उदरपूर्ति के लिए इनको पालना था जिनको मारकर इनके मांस से उदरपूर्ति तथा चमड़े से शरीर को गर्मी एवं सर्दी से बचाव का कार्य लेता था। पशुओं को पालतू बनाने के प्रमाण मिस्र की यादगारों से मिलते हैं।

प्राचीन ग्रंथों में पशुओं के पालने के उन्नत तरीकों का वर्णन मिलता है। वे पशुओं के पालन-पोषण के महत्व को समझते हैं। भगवान श्रीकृष्ण की उत्कृष्ठ गोपालक के रूप में आज भी ख्याति है।

भारतीय संस्कृति में उपयोगी वस्तुओं के प्रति कृतज्ञता एवं सम्मान प्रकट करना मुख्य बिन्दु रहा है। इसी से उनको देवी-देवताओं का स्थान दे दिया जाता रहा है। गाय का दूध जन्म से लेकर जीवन के प्रत्येक क्षण में हर आयु के लोगों के लिए आवश्यक रहा है। इसी से गाय को 'गौ-माता', पृथ्वी को 'भू-देवी' तथा वनस्पतियों की विभिन्न रूपों में पूजा की जाती रही है। इनकी विशेष देखरेख तथा उन्नत पालन की विधियों के अपनाने से उस काल में दूध-दही की नदियाँ बहती थी जिससे जन-स्वास्थ्य काफी अच्छा था।

भारत की 80 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर आधारित है। कृषि प्रधान देश होने से मानव-जीवन में पशु सदैव ही कृषि की रीढ़ की भांति रहा है। कृषि रूपी धर्म आज भी मिट्टी को स्वर्ण बनाने वाले चिरंतन सत्य पर आधारित है परन्तु यह तभी तक स्थिर है जब तक पशु इसका सहचर है। पशु का सम्बन्ध विच्छेद होते ही यह मिट्टी के ढेर के रूप में रह जावेगी। अतः देश में पशुओं की उन्नति कृषि प्रधान देश की वास्तविक उन्नति है।

पशु और कृषि एक दूसरे के पूरक हैं। जो निम्न विवरण से स्पष्ट है—

1. कृषि से प्राप्त पदार्थों का पूर्ण उपयोग—कृषि फसलों से अनाज प्राप्ति के बाद इनका भूसा, कड़बी, खोकर, भूसी, खली आदि पशुओं के आहार में उपयोग आते हैं।

2. शक्ति के साधन—कृषि में किये जाने वाले अधिकांश कार्य जैसे खेतों की जुताई, सिंचाई, फसल की मड़ाई, ढुलाई आदि कार्य पशुओं द्वारा किये जाते है। भारतीय परिस्थितियों में कृषि पशुओं पर आधारित हैं। इनके अभाव में कृषि सम्भव नहीं है। ऐसा अनुमान है कि इनसे 30 हजार मेगा शक्ति बिजली के समान ऊर्जा मिलती है जिसके लिए 30 हजार करोड़ रुपये की आवश्यकता होगी।

3. अतिरिक्त समय एवं श्रम का उपयोग—कृषकों का फसलों की बोआई आदि कार्यों के बाद वर्ष का काफी समय खाली रहता है। इस समय का पशुपालन व्यवसाय अपनाने से उपयोग हो सकता है। परिवार के वृद्ध, बालक तथा महिलायें पशुपालन में विशेष रुचि लेती है जिससे इनकी शक्ति तथा समय का सदुपयोग हो जाता है।

4. जीवांश खाद की प्राप्ति—पशुओं का मल-मूत्र, मुर्गियों की बीट बहुमूल्य जीवांश खाद हैं जिसके प्रयोग से भूमि की उर्वराशक्ति की वृद्धि के साथ भौतिक-दशा में सुधार होता है तथा ये रासायनिक उर्वरकों के कुप्रभाव को दूर करते हैं।

5. आय का स्रोत—पशुओं के बच्चे, इनके दूध तथा इससे बने पदार्थ, अण्डा आदि बहुमूल्य पदार्थों से पशुपालक के परिवार के व्यक्तियों का स्वास्थ्य अच्छा बना रहता है तथा इनको बेचने पर अतिरिक्त आय प्राप्त होती है जिससे इनका सामाजिक स्तर अच्छा हो जाता है।

6. बेकार भूमि का चरागाहों में उपयोग—सिंचाई के सीमित साधनों के कारण काफी क्षेत्र पर कृषि नहीं की जाती है; बल्कि इन पर प्राकृतिक वनस्पतियाँ उगती रहती है। इन क्षेत्रों को चरागाह में विकसित कर लाभ उठाया जा सकता है।

7. यातायात के साधन—ग्रामीण क्षेत्रों में पक्की सड़कों के न होने से आज भी गाड़ी बैलों, भैंसे से चलाई जाती है। नगरीय क्षेत्रों में सवारी ले जाने के तांगे, इक्के घोड़ों से चलाए जाते हैं। पर्वतीय भागों में घोड़े व खच्चर तथा रेगिस्तानी भागों में ऊँट यातायात के प्रमुख साधन हैं। इनसे खाद्य पदार्थ आदि खेत से खलिहान, खलिहान से घर तथा मण्डी तक ले जाये जाते हैं।

8. उच्च स्तर के खाद्य पदार्थों की प्राप्ति—विभिन्न प्रकार के पशुओं से कम व्यय पर उच्च स्तर के खाद्य पदार्थ प्राप्त होते हैं। इनमें गाय, भैंस, बकरी से दूध, मुर्गी से अण्डा मास आदि प्राप्त होता है, जिससे परिवार के लिए खाद्य सामग्री क्रय नहीं करनी पडती है।

9. ईंधन की पूर्ति—देश की जनसंख्या में आशातीत वृद्धि होने से इनके भोजन को पकाने के लिए ईंधन की समस्या उत्पन्न हो चुकी है। पशुओं के गोबर के उपले बड़ी मात्रा में बनाये जाते हैं। वर्तमान में 'गोबर गैस सयन्त्र' काफी लोकप्रिय हो रहे हैं। सामान्य स्थिति का पशुपालक इस सयत्र को लगाकर बिजली तथा ईंधन की समस्या को हल कर सकता है तथा बचा गोबर अच्छी जीवांश खाद होती है।

10. उद्योग-धन्धे—पशुओं से प्राप्त पदार्थों पर कई धन्धे बड़े स्तर पर चल रहे हैं। इनके अन्य उप पदार्थों से कई उद्योगो को कच्चा माल प्राप्त होता है। इनमें डयरी, पौल्ट्री, बोन-मील, चर्म, ऊन तथा सींग, खुर, बालो पर आधारित कई उद्योग प्रमुख हैं।

11. बेकारी समस्या का समाधान – निरंतर बढ़ती जनसंख्या को रोजगार प्राप्त कराना सुलभ कार्य नहीं है। पशुपालन से सम्बन्धित अनेको व्यवसायो को प्रोत्साहित कर इनमें अनेको व्यक्तियों को रोजगार मिल सकता है।

12. औषधि प्राप्ति– गाय का दूध सभी आयु के व्यक्तियों के लिए पूर्ण आहार है। इसका गोबर-मूत्र औषधि के रूप में काफी समय से उपयोग में लाया जा रहा है। पशुओं के यकृत-रस (Liver Extract) टॉनिक के रूप में काम में लाया जाता है।

13. राष्ट्रीय आय का स्रोत—राष्ट्र की कुल आय का लगभग 60% भाग कृषि तथा इससे सम्बन्धित शाखाओं से प्राप्त होता है जिसमें कुल की 50% आय पशु तथा इनके उत्पादित पदार्थों से प्राप्त होती है।

विगत दशको में राष्ट्र की जनसंख्या में 20% की वृद्धि हुई जबकि पशुओं की संख्या 5% बढी है। इस प्रकार वर्तमान परिप्रेक्ष्य में पशु-विकास की अत्यन्त आवश्यकता है जिससे मानव को [illegible] के साथ कृषि का समुचित विकास [illegible]

अभी हाल [illegible] उर्लो-कंचन (महाराष्ट्र) के सहयोग से भीलवाड़ा जिले के ग्राम [illegible] खेड़ा में 320 हेक्टर भूमि पर लगभग 1·3[illegible] करोड़ की लागत से अनुसंधान केन्द्र स्थापित करने का निर्णय लिया है जिससे राज्य में ग्रामीण विकास, कृषि अनुसंधान, डेयरी विकास,

चारा विकास, पशु स्वास्थ्य विकास तथा कृषि वानिकी के कार्यक्रमों का तेजी से विकास हो सकेगा।

राजस्थान में पशुधन (1983 की पशुगणना के आधार पर)

कुल पशुधन—	4,49,75,267
गौ-वंश —	1,34,66,000
भैंस —	60,34,000
भेड़ —	1,33,85,000
बकरी —	1,53,97,000
घोड़े-टट्टू —	45,381
सूअर —	1,78,819
ऊँट —	7,52,887
गदहे —	2,9,874
मुर्गी–देशी —	18,80,000
उन्नत—	3,62,[illegible]00
कुत्ते —	14,34,863

मिश्रित खेती (Mixed Farming)

भारत मे मिश्रित खेती की प्रेरणा 1941 में नई दिल्ली में कृषि तथा पशुपालन मण्डल के फसलों और मिट्टी विभाग द्वारा आयोजित एक गोष्ठी के विचार-विमर्श से मिली।

साधारण भाषा मे मिश्रित खेती का अर्थ, 'एक खेती के साथ दूसरी खेती करना है।'

मिश्रित खेती, विविधमुखी खेती का ही एक रूप है। विविध मुखी का अर्थ है, जब किसी फार्म पर बहुत सी फसलें पैदा की जा रही हों या सहायक धन्धे किये जा रहे हों तो किसी एक मद से आय 50 प्रतिशत न पहुँचे।

मिश्रित खेती का वास्तविक अर्थ यह है कि जब एक ही मौसम मे एक *स्थान पर ही मुख्य खेती के साथ दो या अधिक खेती के अपनाने को मिश्रित* खेती कहते हैं।

मिश्रित खेती के सिद्धांत

1. सभी साधनों का समुचित उपयोग—कृषि के साधन भूमि, श्रम, धन तथा प्रबन्ध का समुचित उपयोग हो।

2. भूमि का अधिकतम उपयोग—उपलब्ध भूमि की योजना इस प्रकार बनाई जावे जिसका अधिकतम उपयोग हो सके। कंकरीली, पथरीली भूमि का

उपयोग पशु बाड़ा, मुर्गी शाला के लिए किया जा सकता है। निचली भूमि में टैंक बनाकर मछली पालन कार्य किया जा सकता है। इस तरह भूमि से अधिकतम लाभ लिया जा सकता है।

3. श्रम का समान वितरण—मिश्रित खेती की योजना इस प्रकार बनाई जावे कि फार्म पर उपलब्ध श्रमिकों को पूरे वर्ष समान रूप से कार्य मिलता रहे तथा वे बेकार न रहें।

4. फार्म पर उत्पादित उप पदार्थों का उपयोग—मिश्रित खेती के लिए दूसरी खेती ऐसी चुनी जावे कि एक खेती का बेकार पदार्थ दूसरे के उपयोग में आ जावे। जैसे फसल के भूसे, कड़वी आदि का उपयोग पशुओं के लिए हो सकता है। इसी प्रकार पशुओं का मल-मूत्र कृषि के लिए उत्तम जीवांश खाद होगी।

5. निजी आवश्यकता की पूर्ति—मिश्रित खेती में ऐसे व्यवसाय चुने जिससे कृषक की नित्य प्रति की निजी आवश्यकता की पूर्ति हो सके। जैसे फसल उत्पादन के साथ दूध-अण्डे, रेशम, आदि का व्यवसाय किया जा सकता है।

6. प्रति दिन आय मिलती रहे—पशुपालक को अपने दैनिक खर्च के लिए कुछ न कुछ आय मिलती रहे तभी वह उत्साह से नई-नई योजनाओं को अपनायेगा।

7. विपणन की सुविधा—मिश्रित खेती में आवश्यक है कि उन्हीं व्यवसायों को अपनाया जाएँ जिनका उत्पाद स्थानीय क्षेत्र में खप सकें तथा इनको ले जाने के लिए उपयुक्त यातायात सुविधा हो। इनके अभाव में लाभ की अपेक्षा हानि की आशंका है।

8. आय में वृद्धि—मिश्रित खेती वही लाभदायक सिद्ध होगी जो सभी साधनों के समुचित उपयोग से अधिकतम उत्पादन दे जिससे कृषक को अतिरिक्त आय प्राप्त होगी।

मिश्रित खेती के अन्तर्गत आने वाले व्यवसाय—

(1) फसलों की खेती
(2) सब्जियों की खेती
(3) फलों की खेती
(4) पशु पालन
(5) मुर्गीपालन
(6) सुअरपालन
(7) भेड़-बकरी पालन
(8) मत्स्य पालन
(9) मधुमक्खी पालन
(10) रेशम-कीट पालन

मिश्रित खेती से लाभ—

1. कृषक की बेकार-प्रयोग्य भूमि का उपयोग हो जाता है।
2. अच्छी किस्म की जीवांश खाद मिलती है जो भूमि की उर्वरता बढाती है।
3. सभी उपलब्ध साधनों का समुचित उपयोग होता है।
4. मानव तथा पशु शक्ति का अधिक उपयोग होता है।
5. उप पदार्थों का समुचित उपयोग होता रहता है।
6. नित्य प्रति की घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति होती है।
7. परिवार के व्यक्तियो के लिए खाद्य-सामग्री-दूध, फल, अण्डे आदि मिलते रहते हैं जिससे उनका स्वास्थ्य अच्छा रहता है।
8. समय-समय पर आय होने से आत्म-सन्तुष्टि तथा प्रोत्साहन मिलता है।
9. कुछ सीमा तक बेरोजगारी की समस्या के समाधान मे सहायता मिलती हैं।
10. आय मे वृद्धि होने से सामाजिक-आर्थिक स्तर ऊँचा हो जाता है।
11. प्राकृतिक विपदा से किसी एक धन्धे के नष्ट होने पर दूसरे सहायक धन्धे से सहायता मिलती है।

मिश्रित खेती के दोष—

1. थोडे से क्षेत्रफल में फसल बोने से यन्त्रों का उपयोग करने मे असुविधा होती है।
2. सभी कार्यों के निरीक्षण में असुविधा होती है।
3. इस प्रकार फार्म पर कई लेखे-जोखे रखने पडते हैं।
4. उत्पादित माल की मात्रा कम होने पर इनके विपणन मे असुविधा होती है।

मिश्रित खेती के लाभो को देखते हुए इनकी कमियां नगण्य है। अत देश की परिस्थितियों मे कृषि की यह पद्धति अधिक लाभदायक सिद्ध हुई है।

प्रश्न

1. एक डेयरी फार्म तथा एक मिश्रित फार्म की तुलना कीजिए। आप कौन-सा फार्म खोलना चाहेंगे और क्यों ?
2. मिश्रित खेती से क्या अभिप्राय है ? इसके क्या-क्या लाभ हैं ?



राजस्थान की अर्थव्यवस्था में पशुधन से प्राप्त पदार्थों का योगदान

(Role of Animal products is Rajasthan Economy)

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों मे पशुपालन आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। देश के लगभग 5 लाख गांवो में लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या, जिसके पास 90 प्रतिशत पशुधन है, रहती है जिनमें से 80 प्रतिशत जनसंख्या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर आधारित है। पशु-मानव को संतुलित आहार ही नही प्रदान करते है बल्कि कृषि कार्यो को करने के साथ-साथ बहुमूल्य जीवांश खाद देते हैं।

आर्थिक दृष्टि से राजस्थान एक पिछड़ा हुआ गरीब प्रदेश है जहां की काफी जनसंख्या कृषि तथा इससे संबंधित व्यवसायों से जीवन-यापन करती हैं। यहां की शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क जलवायु तथा रेतीली भूमि होने से कृषि पूर्णतया प्रकृति पर निर्भर है जिससे सफल कृषि नही हो जाती है और अधिकांश लोग पशु पालते हैं जिससे विषम स्थिति मे वे पशुओं से प्राप्त आय से वह अपना तथा परिवार का भरण-पोषण कर सकें।

राज्य में विभिन्न प्रकार के 4·95 करोड़ पशु पाये जाते है। कुल राष्ट्रीय आय का 7 प्रतिशत धन पशुधन तथा इससे जुड़े व्यवसायों से प्राप्त होता है। राज्य का कोई न कोई भाग अकाल की विभीषिका का सामना करता रहता है फिर भी राज्य की कुल आय का 12 प्रतिशत भाग पशु धन से मिलता है। अतः वह अत्यंत आवश्यक है कि सरकार पशु धन विकास के लिये पर्याप्त साधन जुटाये। इसीलिये दुग्ध विकास, पशु नस्ल सुधार और रोगों की रोकथाम के लिये 'आपरेशन फ्लड' योजना के अन्तर्गत द्वितीय चरण मे 86 करोड रुपये का प्रावधान रखा है जिससे ग्रामीण क्षेत्र के 1 करोड़ 13 लाख पशु पालक लाभान्वित होंगे।

राज्य की अर्थव्यवस्था मे पशुधन से प्राप्त पदार्थों से आय के योगदान का जानकारी निम्न विवरण से मिलती है—

1. दूध तथा दुग्ध उत्पाद—गाय, भैंस, बकरी आदि से हमे दूध प्राप्त होता है, जो स्वयं से पूर्ण आहार है। दूध से संबंधित अग्रलिखित उद्योग चल रहे है—

(म) डेयरी—वर्तमान मे राज्य मे 10 डेयरी संयत्र कार्य कर रहे हैं जिनमें रानीवाड़ा टाटा तथा भरतपुर की डालमिया डेयरी डालमिया प्रतिष्ठान के अन्तर्गत हैं। अलवर, उदयपुर, भीलवाड़ा, जयपुर, अजमेर, उरमुल डेयरी (बीकानेर) सहकारिता संगठन पर कार्य कर रहो हैं। इन डेयरियों को 1549 संग्रहण केन्द्रों से 4 लाख लिटर से अधिक दूध प्रतिदिन संग्रहण करके भेजा जाता है।

राज्य में 18 शीतकरण सयंत्र (Chilling Plants) लगे हैं जहां दूध को ठण्डा किया जाता है। राज्य मे प्रतिदिन लगभग 2·5 लिटर दूध दिल्ली भेजा जाता है तथा शेष नगरों मे विभिन्न उपभोक्ताओं को उनके समीपस्थ बूथों से दूध वितरित किया जाता है।

(ब) घी उत्पादन—ग्रामीण क्षेत्रों में दूध की अधिकांश मात्रा को डेयरी मे देने से घी का उत्पादन काफी कम हो गया है फिर भी 40% दूध घी बनाने मे उपयोग होता है। भरतपुर की डेयरी 'अनिक' तथा जयपुर डेयरी 'सरस' घी तैयार तथा अन्य उत्पाद तैयार करती हैं। दूध से घी के अतिरिक्त खाद्य योगहर्ट, शिशु आहार, दही, पनीर, मावा, छैना दुग्ध पाउडर और आईसक्रीम, आदि पदार्थ बनाकर उपयोग में लाये जाते है। 650 टन पाउडर भारतीय सेना को भेजना प्रस्तावित है। वर्तमान मे जयपुर डेयरी "टैटा पैक" दूध योजना पूरी होने वाली है जिससे दूध विशेष प्रकार के कागज म पैक करके सामान्य कक्ष तापक्रम पर 2 सप्ताह तक रखा जा सकेगा। बीकानेर डेयरी संयंत्र द्वारा देशी मिठाई 'रसगुल्ला' बनाने की योजना है।

2. पशु-आहार—पशुओं को अच्छा सुलभ आहार प्रदान करने के लिये राज्य मे सहकारी स्तर पर पशु आहार फैक्ट्री जयपुर, नदबई (भरतपुर), अजमेर, बीकानेर तथा जोधपुर मे कार्यरत हैं। जहां विभिन्न खाद्य सामग्रियों को समिश्रित करके कणों के रूप में विभिन्न प्रकार के आहार बनाये जाते हैं। इस आहार को दुग्ध संग्रहण केन्द्रो द्वारा दूध देने वाले पशुपालकों को उचित दरों पर वितरित किया जाता है जिससे पशुओं को संतुलित आहार मिल जाता है जो इनके उत्पादन को बढ़ाती हैं।

3. पशु मेले—राज्य मे वर्ष भर विभिन्न स्थानों पर लगभग 156 पशु मेले लगते है जिनमे 16 पशु मेले 15 दिन तक लगते है। इन मेलो में आस-पास क्षेत्र, नगरों तथा दूसरे समीपस्थ राज्यों से पशुपालक आकर पशुओं को क्रय करते तथा बेचते हैं जिनसे काफी आय होती है।

4. मुर्गी पालन—राज्य की शुष्क जलवायु में मुर्गी पालन अधिक लोकप्रिय हो रहा है। ग्रामीण तथा नगरों मे लगभग 22 लाख देशी और उन्नत मुर्गियां पाली जा रही है। जिनसे वर्ष में 1·3 करोड़ अण्डे मिलते हैं। राज्य का विकसित

मुर्गी पालन क्षेत्र अजमेर है जहां से प्रतिदिन लगभग एक लाख अण्डे गुजरात, बम्बई, मद्रास आदि नगरों मे भेजे जाते है। अण्डे विपणन का पूरा कार्य सहकारी समितियां कर रही हैं।

5. मांस उत्पादन—राज्य का अलवर 'कम्पोजिट मीट प्लाण्ट' अरब देशों को प्रतिवर्ष 40 लाख टन मांस (5 हजार सुअर, बकरे तथा भेड़ों का) निर्यात कर रहा है। नगर का राजकीय शूकर फर्म विदेशी 'लार्ज व्हाईट यार्क शायर' नस्ल से देशी नस्लों को प्रजनन कराकर इनके संकर बच्चों को पशुपालकों को देती है।

केन्द्रीय सरकार ने अलवर व भरतपुर जिले के निर्धनतम परिवारो का चयन करके इन्हें शूकर इकाइयों के लिये ऋण व अनुदान सुलभ कराया है। इनके पालन-पोषण की जानकारी भी समय-समय पर दी जाती है। प्रति इकाई 80-100 रुपये प्रतिमाह आय होती है।

6. चर्म उद्योग—फ्रांस सरकार के सहयोग टोंक मे चर्म रंगाई फैक्ट्री स्थापित की गई हैं जहां पर एक दिन में एक हजार खालें रंगकर तैयार की जा सकती है। चमड़े से विभिन्न प्रकार के जूते, चप्पल, अटैची, पर्स, बैग, कृषि सिंचाई के लिये चरस आदि वस्तुएं अनेको गृह उद्योग केन्द्रो पर बनाई जाती हैं।

7. ऊन उत्पादन—राज्य के विभिन्न क्षेत्रों मे आठ नस्लों की लगभग 1·34 करोड़ भेड़ें पाली जाती हैं जिनसे 1·4 करोड किलोग्राम मोटी किस्म की ऊन प्राप्त होती हैं जो देश की कुल ऊन उत्पादन का 40% हैं।

जोधपुर, बीकानेर, ब्यावर (अजमेर) में अनके कारखाने लगे हुये हैं जहां पर ऊनी कपड़े, ऊन, कम्बल जमदे, नमदे तथा गलीचे आदि बनाय जाते हैं। अमरीका, योरोप तथा अरब देशों 'से' यहा के बने गलीचो की मांग अधिक हैं जिसमें 200 करोड़ रुपये (82-83) के गलीचे निर्यात के आदेश मिले हैं। अनुमान है कि 30-40 भेड़ों के पालन से वर्ष में 3-4 हजार रुपये की आय होती हैं। भेड़ों से अधिक ऊन प्राप्त करने के लिये विदेशो से आयातित भेड़ कोरीडेल, मेरिनो से प्रजनन कराकर उन्नत नस्लें तैयार करने के प्रयास किये जा रहे हैं।

भेड़ो की खालो से प्रतिवर्ष 1·6 करोड़ रुपयों की आय होती है। इनकी मींगनी की खाद का उपयोग इतना अधिक प्रचलित है कि राज्य से 30% भेड़-पालक हरियाणा, मध्य प्रदेश, गुजरात आदि राज्यों को निष्क्रमण करते हैं।

8. ऊंट पालन—राज्य का ऊंटों मे एकाधिकार है। राज्य का पश्चिमी भाग शुष्क तथा मरु प्रदेश है जहां की स्थिति मे ऊंट ही कृषि कार्य, कुओं से पीने तथा सिंचाई के लिये पानी निकालने तथा आवागमन का साधन है। इनकी संख्या 7·5 लाख है। पश्चिमी सीमा सुरक्षा के उपयोग मे लाये जाते हैं। इनके पालन-पोषण तथा चिकित्सा संबंधी अनुसंधान कार्य बीकानेर मे किया जा रहा है।

9. मत्स्य पालन—राज्य के अधिकांश क्षेत्रों में वर्षा के जल को संग्रह के लिये तालाब बने हुये हैं जिनके पानी को सिंचाई में काम लाते हैं। राज्य में लगभग 155 हेक्टर भूमि में मछलियां पाली जा रही हैं जिनसे वर्ष में 1.5 करोड़ टन मछली मिलती है जो दक्षिण भारत में भेजी जाती है।

10. उत्तम जीवांश खाद—पशुओं के मल-मूत्र से उत्तम प्रकार की कीटाणु रहित खाद तैयार की जाती है जो भूमि की उर्वरता बढ़ाने के साथ इसकी भौतिक दशा को सुधारती है। कृषि वैज्ञानिक श्री पाण्ढरी ने एक किलो गोबर तथा अन्य बेकार पदार्थों के सम्मिश्रण से 40 किलो 'सैन्द्रिय' उत्तम खाद बनाने में सफलता पाली है। मुर्गी की विष्ठा भी अच्छी खाद के रूप में काम आती है।

11. जलाने के लिये ईंधन व्यवस्था—देश में प्रतिवर्ष लगभग 10-12 करोड़ टन लकड़ी भोजन बनाने में नष्ट हो जाती है जिसका मूल्य लगभग 1.2 अरब है जिस कारण वह निरंतर अबाधगति से कटकर अवर्षा तथा भू-क्षरण में सहायता करते हैं। देश में उपलब्ध गोबर के एक-तिहाई से आधा भाग (लगभग 60 करोड़ टन) के उपले बनाकर जला दिये जाते हैं।

अतः 'गोबर गैस संयंत्र' लगाना उत्तम है जिसमें भोजन पकाने, प्रकाश तथा इंजिन चलाने के लिये गैस मिल जाती है और अच्छी सड़ी गली अधिक तत्व वाली गोबर की खाद मिलती है। एक किग्रा. गोबर से 1 से 3 घन फुट गैस मिलती है। साधारण 5-6 पशु रखने वाला पशुपालक इस संयंत्र को लगाकर अपनी आवश्यकता की पूर्ति कर सकता है।

12. सुरक्षा एवं मनोरंजन—पशुपालक तथा अन्य व्यक्ति गृह, उद्यान, फार्म तथा फैक्ट्री आदि की सुरक्षा के लिये विभिन्न नस्लों के कुत्ते पालते हैं जिनकी संख्या 14 लाख है। सुरक्षा के अतिरिक्त मनोरंजन के लिये कुत्ते, घोड़े, बिल्ली आदि पशु पाले जाते हैं। इनको पाल-पोसकर बाहर भेजकर आय प्राप्त करते हैं।

14. औषधि—प्राचीन समय से गौ-मूत्र, पंचगव्य, और औषधि के रूप में उपयोग में आ रहा है। यह कई असाध्य रोगों-विशेष तौर पर विकृत-यकृत रोग, टी० बी०, कैंसर, कुष्ट रोगों आदि में बड़े लाभदायक सिद्ध हुआ है। हैदराबाद के एक वैद्य राज ने गौमूत्र में वनौषधि मिलाकर टिकियां और इंजेक्शन बनाने में सफलता पा ली है जो कई असाध्य रोगों में लाभप्रद होंगे। पशुओं के यकृत रस का टोनिक के रूप में प्रयोग हो रहा है।

15. अन्य गृह उद्योग—पशु अपने जीवनकाल में अनेक उपयोगी उत्पादों को देते रहते हैं। इनके प्रत्येक अंग का उपयोग होता है। हड्डियों से बोन मील, जो खनिज आहार है, बनाया जाता है। इनके सींग, खुरों से अनेक प्रकार के

भारत में पशुपालन की समस्यायें

देश में विश्व की कुल पशुधन की जनसंख्या का लगभग 20% पशुधन पाया जाता है। देश मे प्रति दो व्यक्ति लगभग 1·5 पशु का औसत है अर्थात् 100 मनुष्यों के पीछे 76 पशु हैं। इतनी विशाल पशुधन होते हुए प्रति व्यक्ति औसत दूध उत्पादन ग्राम है। पशुओं से उनके ब्यांत में विदेशो की अपेक्षा उत्पादन भी काफी कम है। इन पशुओं का स्वास्थ्य भी अपेक्षाकृत उन्नत नहीं है। वर्तमान में कई अच्छी उन्नत जातियां लुप्त होती जा रही हैं।

पशुधन की हीनता के कई कारण हैं। पशुपालक दिन प्रतिदिन कई समस्याओं का सामना कर रहा है। इन विविध समस्याओं को दो वर्गों में विभाजित कर उनका समाधान करना आवश्यक है।

(अ) प्रजनन समस्याएं—

1. **उन्नत सांडों का अभाव**—सांडों की कमी से देशी नस्लो के छोड़े सामान्य नस्लो के सांडो से ही गायें गर्भित कराई जाती हैं जिनसे अनुपयोगी बच्चे प्राप्त होते है जो न तो कृषि कार्य के लिये अच्छे और न दूध के लिए अच्छे होते हैं।

2. **प्रजनन अभिलेख न रखना**—प्रायः पशु के जन्म से लेकर उसके जीवनकाल के लेखे नही रखे जाते हैं जिससे उनकी आयु, ऋतुकाल, ब्याने का समय, दुग्धकाल की अवधि का ज्ञान नही हो पाता है।

3. **जननेन्द्रिय रोगों का होना**—पशुओं के संक्रामक रोग, गर्भपात, बांझपन आदि प्रजनन मे विषमता ला देते हैं जिनके समय पर निदान न होने से ये अन्य पशुओं में फैल जाते हैं।

4 **उचित देखभाल का अभाव**—पशु के गर्भित होने से लेकर ब्याने तक अच्छी देख-रेख नही की जाती है जिससे बच्चे का विकास तथा पशु का स्वास्थ्य अच्छा नही रहता है। ब्याने के बाद ठीक प्रकार से देखभाल न होने पर थनैला, गर्भाशय शोथ (Metritis) आदि रोग हो जाते हैं जिनकी समय पर चिकित्सा न होने पर पशु पूर्णतया बेकार हो सकता है।

5. दोषपूर्ण प्रजनन कभी-कभी गाय ब्याने के एक-दो माह बाद पुनः गर्भित हो जाती है इससे वह निर्बल होने के साथ अन्य रोगों से पीड़ित हो जाती है क्योंकि गर्भाशय को पूर्ण सामान्य अवस्था ग्रहण करने में 2–2·5 माह लगते है।

6 प्रजनन व्यवस्था का अभाव देश में प्रशिक्षित एक कर्त्तव्यपरायण कार्यकर्ताओं का अभाव है जिससे पशुपालकों को सही समय पर प्रजनन सुविधायें नही मिल पाती हैं।

(ब) खाद्य सम्बन्धी समस्यायें—

1. अधिक पशु संख्या—देश में लगभग 1·9 करोड दुग्ध जाति के पशु हैं जिनमें 25 जाति गोवंश तथा 9 जातिजां भैंस वश की हैं जिनसे दुग्ध उत्पादन मिलियन टन है जो उत्पादन की दृष्टि से विकसित देशों की तुलना मे काफी कम है।

2. पशु पोषाहार की कमी—देश मे जनसंख्या की वृद्धि से कृषि भूमि पर अनावश्यक दाव पड रहा है क्योंकि जनसंख्या के आवास तथा आहार की पूर्ति इसी भूमि से होती है। जनसंख्या की उदरपूर्ति न होने पर भला पशु आहार की पूर्ति किस प्रकार होगी।

3. अपर्याप्त चारा—अनुमान है कि पशुओं के लिये 219 करोड टन हरा चारा तथा 40 मिलियन टन दाने की आवश्यकता है, जबकि 60 करोड टन सूखा चारा, 178 करोड टन हरा चारा तथा 26 मिलियन टन दाने की कमी रहती है जिसका पशुओं की वृद्धि पर प्रभाव पड़ता है और उनसे कम उत्पादन मिलता है।

4. चरागाहों का अभाव—जनसंख्या की आशातीत वृद्धि के कारण कृषि योग्य भूमि का आवास तथा औद्योगिक क्षेत्र बनाने मे उपयोग कर लिया गया है और काफी भूमि पर धान्य फसलें उगाने से चारे के उगाने की भूमि तथा चरागाह दिनों दिन कम होते जा रहे हैं जिससे पशुओं को घर पर (Stall Feeding) ही रखकर पालन किया जाता है।

5. चारे उगाने के ज्ञान में कमी—कृषक अपने पोषण की फसलो को उगाता है तथा थोड़े से क्षेत्र पर पुरानी विधि से चारे की ऐसी फसलें उगाता है जिनकी एक बार ही कटाई होती है। इसमे अतिरिक्त खाद, सिंचाई तथा अच्छे बीज की कमी के साथ उपयुक्त शस्यावर्तन न अपनाने से चारा कम मिलता है।

6. चारा संरक्षण का अभाव—चारे के सूखने पर उसकी पौष्टिकता कम हो जाती है तथा काफी मात्रा मे चारा बेकार चला जाता है; क्योंकि पशुपालकों को साइलेज, हे बनाने का ज्ञान नही होता है।

7. देवी प्रकोप—प्रतिवर्ष अधिक वर्षा एवं बाढ से फसलें नष्ट हो जाती है तथा बड़ी संख्या में पशु बह जाते है । इसके विपरीत सूखा पड़ने से फसलें सूख कर नष्ट हो जाती है जिसके कारण पशु अधपेट भूखे रहने पर जनक्षमता कम हो जाती है और वे अनेक बीमारी से ग्रस्त होकर मर जाते है ।

8. खिलाने के ज्ञान की कमी—खाद्य पदार्थों की कमी होने पर भी पशुपालक पशुओं को साबुत कड़वी-चारा डाल देते है जिससे काफी भाग बेकार जाता है, दाने को अलग खिलाते है तथा खनिज पदार्थों को नहीं देते हैं। इससे पशुओं का स्वास्थ्य खराब हो जाता है जिससे उत्पादन कम मिलता है ।

(स) पालन-पोषण संबंधी समस्यायें

1. आवास की कमी—ग्रामीण पशुपालक आवश्यकता मे अधिक पशु रखता है जिनको एक बाड़े या बन्द कमरे मे बन्द कर देता है जिससे पशुओ को अनेक रोग लगने की संभावना रहती है ।

2. पालन संबंधी क्रियाओ का ज्ञान न होना—अधिकांश पशुपालकों के अशिक्षित होने से उन्हे पशु पालन की उन्नत क्रियाओ का ज्ञान नही है । नवजात शिशु मे नाड़ा उपचार न करने से प्रारम्भ से ही कई रोग हो जाते है । दिन प्रतिदिन की क्रियायें, खुरहरा सफाई, नहलाना आदि आवश्यक क्रियाओ के न करने से पशुओं की अच्छी वृद्धि नही होती है ।

3. चिकित्सा सुविधा का अभाव—पशुओं के बीमार होने पर इनका इलाज न कराके झाड-फूंक या देशी घरेलू इलाज कराते रहते हैं जिससे पशु काफी समय मे स्वस्थ होते हैं । ग्रामीण क्षेत्र मे चिकित्सा सुविधा उपलब्ध नही है जिससे पशुओ को समय से उपचार न मिलने से पशु बेकार अनुपयोगी हो जाते हैं ।

उन्नत क्रियायें एवं सुझाव

1. बधियाकरण—देशी अनुत्पादक सांड़ों को प्रजनन रोकने के लिये बधिया कर देना चाहिये जिससे संतति खराब न हो ।

2. उन्नत सांड़ों का प्रबंध—देश मे विदेशों से आयातित आयरशायर, होल्सटीन, फ्रीजिन तथा जर्सी सांड राजकीय, सैनिक एवं महाविद्यालयों के फार्मो पर प्रजनन कार्य हेतु मंगाये गये जिनका उपयोग कराना अच्छा है ।

3. संकरण कार्य—प्रारम्भ मे आयरशायर से साहीवाल नस्ल की गायों में प्रजनन किया गया जिन से प्राप्त बच्चे दुधारु होने पर मुंह-खुरपका रोग से प्रभावित हो जाते थे जिससे प्रजनन सफल नही हो सका तथा इसके बछड़े भारतीय स्थिति मे अच्छे सिद्ध नही हुये । प्राप्त सांड पूर्ण शुद्ध नस्ल के नहीं थे ।

4 **कृत्रिम गर्भाधान** (Artificial Insemination)–अच्छे नस्लों के सांडों का अभाव तथा विदेशी उन्नत सांड़ों के रख-रखाव की परेशानी से बचने के लिये 1944-46 में कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र स्थापित किये गये। केन्द्रित ग्राम योजना (Key Village Scheme) के अंतर्गत देश के विभिन्न प्रदेशों मे अनेको गर्भाधान केन्द्र, उपकेन्द्र पशुपालन विभाग की देख-रेख मे स्थापित किये गये। जहां वीर्य एकत्रित करके कृत्रिम गर्भाधान किया जाता है।

5. **वीर्य-कोषों** (Semen Bank) **की स्थापना**--रक्त कोष (Blood Bank) की भांति सरकार ने उत्तम साडो की कमी की पूर्ति के लिये जिले स्तर पर वीर्य कोष स्थापित किये हैं जहां से विदेशो से आयातित फ्रोज्ड सीमेन या प्राकृतिक वीर्य उपकेन्द्रो पर भेजा जाता है।

6. **पशु–रोग नियंत्रण**—देश मे हुये विभिन्न चिकित्सा अनुसंधानों के लाभों को ग्रामीण पशुपालकों तक पहुंचाने के लिये सरकार ने विकास समितियों (Blocks) के साथ पशु चिकित्सालय खोले है तथा प्रत्येक 5 कि. मी के क्षेत्र मे चिकित्सा सुविधा उपलब्ध कराने के प्रयास किये जा रहे है। यहां पशु चिकित्सा के अतिरिक्त पशु जननेन्द्रिय रोग निदान तथा कृत्रिम गर्भाधान कार्य होता है। पशु चिकित्सक से पशुपालन-पोषण की पूरी जानकारी दी जाती है।

पशुपालन विभाग की ओर से पशु प्रदर्शनी, शिविर, वार्ता तथा भ्रमणों के आयोजन से पशुपालकों को पशु प्रजनन तथा पोषण के ज्ञान की वृद्धि कराई जाती है।

7 **गौ-शालाओं तथा गौ सदनो की स्थापना**--केन्द्रीय गौशाला विकास बोर्ड ने देश मे गौशाला तथा पिंजरापोल समितियां बनाई है जिनके अन्तर्गत निम्न योजनायें चल रही है।

गौशाला विकास—यहां शुद्ध नस्ल की गायों की तथा बछडो को पाला जाता है। सरकार इनको अनुदान देती हैं तथा बछड़ों को प्रजनन के लिये साड़ के रूप में पशुपालन विभाग क्रय कर लेता है जिनसे शुद्ध नस्ल के सांड़ो की पूर्ति होती है—

गौ-सदन तथा पिंजरापोल--इनको जंगलो मे स्थापित किया जाता है जहां अपाहिज, अनुत्पादक एवं बेकार पशुओ को रखा जाता है, इनमें सांड नही रखते हैं। ये जंगल की घास-चारा खाकर निर्वाह करते हैं जिससे अच्छे पशुओ का दाना-चारा बच जाता है। पशुपालन विभाग से सम्पर्क करके क्षेत्र के ऐसे पशुओं को उनकी गाड़ी से वहां भेजा जा सकता है।

8 **चरागाहों का विकास**—खुले तथा बिना बाड़ के चरागाहों में सुधार नही हो सकता है क्योंकि वहां चराई को रोका नही जा सकता है। अतः चरागाह

की वृतिकरण (Fencing) करें। आवश्यक की उचित सिंचाई आदि की व्यवस्था करें पर चरागाह को 4-6 खण्डों में विभाजित को दुधारू, युवा, मूखे दुधारु पशुओं के समूह गाह का अधिकाधिक उपयोग होता है।

चरागाह की समय पर सिंचाई, वेका तथा कीड़ों आदि से बचाव की व्यवस्था होनी बढ़ने वाली घासो के बीजो को मंगाने की व्य

राज्य की राजस्थान नहर की बाई लगभग 500 हैक्टर भूमि में चरागाह विक दिया जा रहा है जिसके अन्तर्गत पशुपालक 15 हैक्टर भूमि चरागाह विकास के लिये आ

9. चारे की फसलों का विकास— रिजका, बरसीम तथा जई जैसे उच्च कोटि खरीफ मे 300 क्विटल तथा रबी में 400 है। रबी की फसल के अन्त मे खरीफ की रबी की फसल में बिना फलीदार वाले कुछ खिलाना अच्छा नही है। इन चारे के उन्नत पंचायत समिति उपलब्ध कराती है।

10. चारे का संरक्षण— अधिक साइलेज बनाना अच्छा रहता है जिससे चा रहती है। विभिन्न फसलों की कटाई के बाद आदि को सुरक्षित रखा जावे। धान की अच्छा है। राज्य वन विभाग ने स्थान-स्थान ये हरी घासों को उगाकर, काटकर तथा रखते हैं।

11. चारे का समुचित उपयोग— प तथा संतुलित आहार का पूरा ज्ञान कराया ज उत्पादन के अनुसार दाना, हरा चारा, सूखा

चारे की कुट्टी करके गीला करके इस मिश्रण करने से इसे पशु चाव से खाते है। चा नुसार खिलाने पर बेकार कम होता है।

जीवांश खादों को प्रयोग करके घासों । घासों के 12-15 से मी. ऊँची होने करके 'हो-हैन-हिन विधि' से पशुओं हों में बाँट कर क्रमशः चराने पर चरा-

र पौधों को निकालना, चारे की कटाई । चाहिये। सरकार विदेशो से तेजी से वस्था करती है।

ओर दो स्थानों पर लिफ्ट योजना से इस कार्यक्रम की योजना को कार्य रूप ों को 30 गायों पर एक वर्ष के लिये वंटित की जावेगी।

उचित शस्यावर्तन अपनाकर जिनमे के हरे चारे बोकर वर्षभर हरा चारा, क्विटल प्रति हैक्टर, प्राप्त हो सकता शीघ्र तैयार होने वाली फसल बोयें। चारे बोयें क्योंकि बरसीम को अकेला बीज स्थानीय पशुचिकित्सालय तथा

हरे चारे उपलब्ध होने पर इनका रे की पौष्टिकता तथा सरसता बनी उपज प्राप्ति के बाद पौधो (कड़बी) भूसो के साथ दाल वाले चारे देना पर 'चारा बैंक' स्थापित किये है। सुखाकर संकट काल के लिये सुरक्षित

शुपालकों को पशु की आवश्यकता वे जिससे वे पशुओं के स्वास्थ्य तथा चारा उचित मात्रा म दे सकें।

मे दाना तथा खनिज लवणों को रे को दिन में 2-3 बार आवश्यकता-

12. पशुओं की संख्या की अपेक्षा उनके गुणों पर ध्यान दिया जावे— पशुओं से अच्छे उत्पादन के लिए इनकी थोड़ी सख्या मे द्वि-प्रयोजनी नस्लों के पशु रखे जावें। इनमे आधुनिक प्रजनन क्रियाओं को अपनाने पर गुणों मे विकास किया जा सकता है जिससे कम व्यय पर अच्छा उत्पादन प्राप्त होगा।

13. पशु पालन-पोषण का ज्ञान— ग्रामीण पशुपालको के अशिक्षित होने पर अनेकों पशुपालन सम्बन्धी नवीनतम क्रियाओं की जानकारी नहो होती हैं। अतः पशुओं के समुचित रख-रखाव की जानकारी अधिकारियों तथा पशु चिकित्सकों के द्वारा, शिविर, प्रदर्शनी, वार्ता आदि कार्यक्रमों से दी जाती है।

केन्द्रित ग्राम योजना के अंतर्गत पशुओं के अच्छे प्रजनन विधि, चारे की समस्या का समाधान, इनका प्रबन्ध तथा बीमारी की रोकथाम की व्यवस्था की जा रही है जिससे पशुधन की बहुमुखी उन्नति का प्रयास किया जा रहा है।

14. आर्थिक सहायता— राष्ट्रीयकृत बैंक तथा राज्य सहकारी बैंक पशुपालकों को पशु क्रय करने के लिए आसान किश्तो पर न्यून दरों पर अनुदान देता है। इनके उत्पादो की बिक्री के लिए सहकारी स्तर पर, डेयरी विकास बोर्ड के अन्तर्गत दुग्ध एकत्रीकरण केन्द्र, डेरी संयन्त्र आदि लगाये गये हैं।

पशुओ को सन्तुलित पशु आहार भी उपलब्ध कराया जाता है।

देश मे कृषि मे हरितक्रांति होने के साथ अब राज्य सरकार 'श्वेतक्रांति' की ओर अग्रसर है जिसके लिए विभिन्न स्तरो पर 3 करोड़ से अधिक राशि से विभिन्न अनुसंधान, पशुपालन परियोजनाएँ प्रारम्भ की जा रही हैं। राज्य में कृषि विकास सिंचाई सुविधा न होने पर सीमित है जिससे पशुधन विकास का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. देश में पशुपालन की समस्याओं पर लेख लिखिये।
2. राज्य मे पशुपालन समस्याओं के समाधान हेतु सरकार द्वारा किये गए कार्यों की विवेचना कीजिये।

अध्याय—4

गाय एवं बैल के शरीर की वाह्य रचना

(External Anatomy of Cow & Bullock)

पशु के वैज्ञानिक अध्ययन एवं उसके सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि उसके शरीर के विभिन्न अंगों की जानकारी हो और बनावट से परिचित हो क्योंकि पशुओं की उपयोगिता और उत्तमता उसके विभिन्न अंगो की बनावट पर निर्भर करती है। इन सभी अंगों का अपना-अपना कार्य एव उपयोगिता होती है।

पशु चिकित्सा विज्ञान की वह शाखा, जो पशुओं की शरीर रचना का ज्ञान कराये, शरीर रचना विज्ञान (Anatomy) कहलाती है। यह दो भागो में वर्गीकृत की जाती है—

1. पशु शरीर की बाह्य रचना (External Anatomy)—जो बाहर से दिखाई देती है।

2. पशु शरीर की आन्तरिक रचना (Internal Anatomy)—जो शरीर को चीर-फाड़कर देखी जाती है, इसकी पशु चिकित्सा विज्ञान में आवश्यकता होती है।

गाय के बाह्य अंग

(अ) सिर के भाग (Parts of Head)—

1. मुँह (Mouth)
2. ओष्ठ (Lips)
3. मुखकोण (Angle of Mouth)
4. जबड़े (Jaws)
5. जबड़े का कोण (Angle of Jaws)
6. नथुने या नासाद्वार (Nostrils)
7. प्रोथ (Muzzle)
8. अवगुण्ठ (Muffle)

9. ठुड्डी (Chin)
10. मूंछ (Vibrassac)
11. नासादण्ड (Bridge of Nose)
12. कपोल (Cheeks)
13. ललाट या अग्रसिर (Fore Head)
14. चांद (Poll)
15. पृष्ठ सिर (Back of the Head)
16. सींग (Horns)
17. कर्ण (Ears)

Parts of a cow in Hindi

चित्र—गाय के बाह्य अंग

18. कर्णहार (Auditory Meatus)
19. आँखें (Eyes)
20. भौंहे (Eye Brows)
21. पलकें (Eye Lids)
22. पक्ष्म (Eye Lasher)
23. आन्तर अपांग (Inner Canthus)
24. बाह्य अपांग (Outer Canthus)
25. आँख, काडेला (Eye Ball)
26. स्वच्छा (Corneos)
27. गला (Throat)
28. मुख का तालू (Palate)

29. मुख तालु (Floor of the Mouth)
30. दांत (Teeth)
31. जीभ (Tongue)
32. दन्तयपुर (Dental Pad)
33. दन्तात्वकाश (Diastemo)
34. ग्रसनी (Pharynx)

(ब) गर्दन के भाग (Parts of Neck)—

35. ग्रीवा शिखर (Crest)
36. ग्रीवा रीता (Nap)
37. ग्रीवा मेंगता (Throat in the Neck)
38. गलकम्बल (Dewlap)

(स) धड़ के भाग (Parts of Trunk)—

39. ढोल (Barrel)
40. कूबड (Hump)
41. पीठ (Back)
42. निचला कूबड़ (Chine)
43. कमर (Loin)
44 अधर-वक्ष (Brisket)
45. सीना (Chest)
46. पेट (Belly)
47. स्कन्धप्रदेश (Withers)
48. गलधानिक (Crop)
49. पसलियां (Ribs)
50. अग्र पार्श्व (Fore-Flank)
51. वाह्य गुहा (Armpit)
52. अर्धपार्श्व (Upper Flanks)
53. निचली पार्श्व (Lower Flanks)
54. पार्श्व पट्टा (Flap of the Flank)
55. अरु संधि (Groin)
56. नितम्ब अस्थि (Hip Bone)
57. पुट्ठे का मध्य भाग (Croup)
58. पुट्ठे (Rump)
59. अपलास्थि (Pin Bone)

60. अपलास्थि की नोंक (Point of pin bone)
61. नाभि पट्टा (Naval Flap)
62. अयन (Udder)
63. अग्र व पश्च अयन (Fore & Hind Udder)
64. थन (Teats)
65. थन नलिका (Teatcanal)
66. दुग्ध शिरा (Milk Vein)
67. दुग्ध दर्पण (Milk Mirror)
68. दुग्ध कूप (Milk Well)
69. गुदा (Anus)
70 भग (Vulva)
71. पुच्छमूल (Dock or Root of Tail)
72. पुच्छ आधार (Base of the tail)
73. पुच्छ धड़ (Body of the tail)
74. पुच्छ सिरा (Tip of the tail)
75 पुच्छ का झब्बा (Switch of the tail)

(द) वास गृह (Quarters)—

76. अगले पैर (Fore Legs)
77. पिछले पैर (Hind Legs)
78. कंधे (Shoulder)
79. नितम्ब (Hip)
80. टखना
81. नितम्ब जोड़ (Hip Joint)
82. कंधे का जोड (Shoulder Joint)
83. उत्तर बाहु (Upper Arm)
84. ऊपरी रान (UpperThigh)
85. कोहनी (Elbow)
86. रान का जोड़ (Stifile Joint)
87. कोहनी का बिन्दु (Elbow point)
88. अधर बाहु (Lower Arm)
89. अधर उरु (Lower Thigh)
90. घुटना (Knee)
91. पिछले घुटने का बिन्दु (Hock Joint)

...दु (Hock Point)

...ck Joint)

92. पिछले पाँव का विन... Claw)
93. जांघ (Thigh) ...)
94. कोख (Shank) ...)
95. टखना जोड़ (Fetl... eft)
96. बिजनखुरी (Dew
97. गुम्चो (Pastern) ...भिन्न भागों का वर्णन
98. सुमशीर्ष (Corone... गों में बांटा जा सकता है—
99. सुम या खुर (Hoo
100. खुर की विदर (Cl... (ब) ग्रीवा या गर्दन (Neck)

(द) पूंछ (Tail)

गाय के ...ibs) और पश्च पाद (Hind Limbs)

गाय के शरीर को पाँच भ...

(अ) सिर (Head) ...त या दोनों सींगों के मध्य का भाग

(स) धड़ (Trunk) ...शुओं के सींग का सिर से जुड़ा हुआ भाग आधार,

(य) अग्र पाद (Fore Lin... में उम्र अनुसार छल्ले बनते हैं।

(अ) सिर के भाग— ...ा के नीचे दोनों ओर कान होते हैं जिनमें

...p) और सिरा होता है।

1. चाँद (Poll)—का...
...)—चांद से लेकर नीचे की ओर आँखों तक का
2. सींग (Horn)—प... ...ा है।
नोक या सिरा, सींग...
...तक के दोनों ओर, दो आँखें होती हैं। प्रत्येक
3. कान (Ears)—सी... ...हुई होती है। आँखों के ऊपर बालों की एक
आधार लोलक (Fl...
4. मस्तक (Forehead...
भाग मस्तक कहला... ...आँखों की सतह से नीचे की ओर नथुनों के बीच
...कहलाता है।
5. आँखें (Eyes)—मा...
आँख पलक से ढकी... ...लाट की शिखा।
पंक्ति, भौह होती है ...of the nose)—आँखों के बीच उभरी हुई
...होती है।
6. चेहरा (Face)—...
तक का भाग चेहरा ...ऊपरी ओंठ का क्षेत्र।
7. शीर्ष (Crest)—ल...
8. नासादंड (Bridge...
हड्डी जो थूथन तक...

10. मफिल (Muffle)—ऊपरी ओठ एवं नथुनों के बीच का काला भाग ।
11. नासाद्वार (Nostrils)—नाक के दोनों ओर के छेद ।
12. कपोल (Checks)—आंख के बगल से गर्दन तक का भाग ।
13. ओष्ठ (Lips)—दो होते हैं ।
14 जबडा (Jaw)—ऊपर नीचे के दाँतों वाले भाग ।
15. ठुड्डी (Chin)—निचले जबड़े के नीचे का भाग ।
16. गर्थ (Girth)—कुदंड़ के पीछे से छाती का घेरा ।
17. मुख (Mouth)—मुख के अन्दर तालू (papate), दांत (teeth), जीभ आदि होते है ।

(ब) गर्दन के भाग—

18. ग्रीवा—गर्दन का वह ऊपरी भाग, जहां सींग लगते हैं ।
19. ग्रीवास्थल (Nabe of the neck)—गर्दन का धड़ से मिलने वाला भाग ।
20. गला (Throat)—जबड़े के प्रारम्भ से होकर गर्दन के निचले भाग की पूरी लम्बाई ।
21. गल कम्बल (Dewlap)—गर्दन के निचले भाग मे लटकती हुई ।
22. मशीली झालर—ये भैंसो में नही होती ।

(स) धड़ के भाग—

23. ककुद (Hump)—ग्रीवा-शीर्ष तथा स्कन्ध-प्रदेश के बीच उठा हुआ काफरी मसीला भाग जो भैस तथा घोड़ों मे नही होता है ।
24. स्कन्ध-प्रदेश (Withers)—यह ग्रीवा-शीर्ष से पीछे पीठ तक मिला होता है, इसे सामान्य भाषा मे कन्धा कहते हैं ।
25. पीठ (Back)—स्कन्ध प्रदेश से लेकर अन्तिम पसली तक का भाग ।
26. कमर (Loin)—पीठ से लेकर नितम्ब बिन्दु के मध्य का भाग ।
27. पिछली पीठ (Group)—कमर तथा पच्छमूल के बीच मे स्थित त्रिक कशेरुक (Sacral Vertibral) तक का भाग, इसे रम्प भी कहते हैं ।
28. नितम्ब (Bultocks)—गुदा के दोनो ओर स्थित मसीला भाग ।
29. वक्ष (Chest)—गर्दन का निचला भाग जो धड़ से मिलकर अगली टांगों के सामने रहता है ।
30. अधर-वक्ष (Brisket)—वक्ष के पीछे अगले पैरों के मध्य का भाग ।

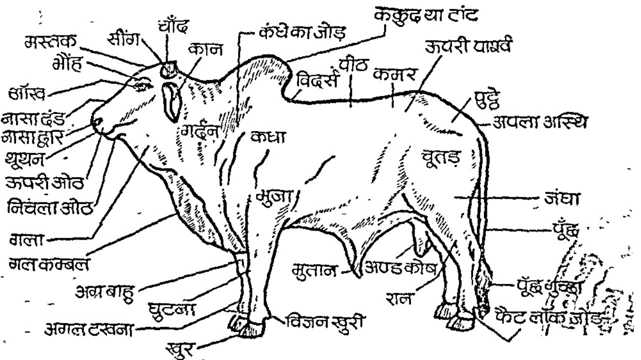
31. पेट (Belly)—कोख के आगे, उदर का निचला भाग।
32. ढोल (Barrel)—पेट तथा पार्श्व वाले भाग मिलकर ढोल कहलाता है।
33. पसलियां (Rips)—
34. घेरा (Heart Girth)—सीने के चारों ओर की परिधि का घेरा।
35. नितम्ब अस्थि (Pinbwo)—इसे हुक बोन (Hook bone) भी कहते हैं।
36. नाभि पट्टा (Naval Flap)
37. गुदा (Anus)

अंग जो मादाओं (Female) में होते हैं—

38. अयन (Udder)—पिछली टांगों के बीच उदर मे नीचे की ओर लटकता हुआ लचीला भाग।
39. थन (Teats)—ये चार होते हैं—इसके तीन भाग—आधार, शिरा, थन छिद्र होते हैं।
40. दुग्ध शिरायें (Milkveins)—अयन के ऊपर टेढ़ी-मेढ़ी उभरी रक्त नलिकायें।
41. दुग्ध कूप (Milk well)
42. भग (Vulva)—जननांग शरीर के अन्दर होते हैं।

अंग जो नरों (Males) में पाये जाते हैं—

43. वृषण कोश (Scrotum)—इसमें अण्ड कोष, नर लिंग, मुतान आदि भाग होते है जो बाहर से दिखाई देते हैं। खाल की थैली अण्ड कोष लटकते है इन्हें वृषण-कोष भी कहते हैं।
44. नर लिंग (Penis)—वह मसीला भाग जिससे वीर्य तथा मूत्र शरीर से बाहर आता है।
45. मुतान (Sheath)—लिंग का बाहरी खोल, मुतान कहलाता है।
46. आद्यरूप थन (Rudimentary Teats)—निष्क्रिय थन जो संख्या मे चार होते हैं।


मस्तक
सींग
चौंद
काल
भौंह
आँख
नासा दंड
नासा द्वार
थूथन
ऊपरी ओठ
निचला ओठ
गला
गल कम्बल
अग्र बाहु
घुटना
अगला टखना
खुर
गर्दन
कंधे का जोड़
ककुद या टांट
कधा
भुजा
विदर्स
पीठ
कमर
ऊपरी पार्श्व
पुट्ठे
अपला अस्थि
चूतड़
जंघा
पूँछ
मुतान
अण्ड कोष
राल
विजन खुरी
पूँछ गुच्छा
फैट लॉक जोड़

चित्र--बैल के अंग

(द) पूंछ—

47. पुच्छमूल (Root of the tail)
48. पुच्छाधार (Base of the tail)
49. पुच्छ धड़ (Body of the tail)
50. पुच्छ सिरा (Tip of the tail)
51. पूंछ का झब्बा (Switch of the tail)— सिरे पर लटकता सफेद या काले बालों का गुच्छा।

(ध) पिछले पैर (Hind legs)—

52. नितम्ब (Hip)
53. नितम्ब संधि (Hip Joint)— फीमर के सिर तथा मेखला (Pelvic girdle) के बीच उलूखल संधि (Ball and Socket Joint).
54. जांघ (Thigh)— स्टेपिल संधि से पीछे तथा नीचे की ओर पिछले घुटने तक का मसीला भाग।
55. पिछला घुटना (Hock Joint)—टिबिया, टार्सस और मेटाटार्सस, हड्डियों से बना जोड़ तथा पीछे की ओर निकला नुकीला भाग पिछले घुटने का बिंदु कहलाता है।
56. पिंडली—पिछले घुटने और टखने तक का मेटाटार्सस भाग।
57. विजन खुरी (Dew Claws)—टखने के पीछे प्रत्येक पैर में दो छोटी-छोटी सींगवत रचनाएं।
58. गुमची (Pastern)—टखने के नीचे, सुमशीर्ष (Coronet) के ऊपर वाला भाग।
59. सुमशीर्ष (Coronet)—यह सुम के चारों ओर द्वितीय पर्लक के निचले सिरे के तथा तृतीय पर्लक के बीच वाला जोड़ सुमशीर्ष सन्धि वाला भाग कहलाता है।
60. खुर (Hoof)— सींग की रचना वाला काला भाग खुर कहलाता है।
61. सुम की वीदर (Cleft of the hoof)—गाय के खुर दो भागों मे बँटे होते हैं। दो टुकड़ों के बीच का खाली स्थान विदर (Cleft) कहलाता है।

(र) अगले पैर (Fore Legs)—

62. स्कन्ध (Shoulder)—स्कैपुला हड्डी (Scapula) के ऊपर का मसीला भाग।

63. स्कन्ध बिंदु (Shoulder point)—यह ह्यूमरस हड्डी का उठा हुआ नुकीला भाग।

64. भुजा (Arm) ह्यूमरस हड्डी के ऊपर का मसीला भाग भुजा कहलाता है।

65. अग्रबाहु (Fore-Arm)—कोहनी और घुटने के ऊपर का रेडियस-अलना के ऊपर का भाग।

66. कोहनी (Elbow)—ह्यूमरस और रेडियस अल्ना के बीच का भाग।

67. घुटना (Knee Joint)—रेडियस, कार्पस तथा मैटाकार्पस हड्डियों का जोड़।

विजन खुरी, दुमची, शीर्ष, सुमशीर्ष और सुमखुर पिछले पैर की तरह होते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. गाय का स्वच्छ चित्र बनाकर उसके विभिन्न अंगों के नामों को दर्शाओ ?

2. गाय के शरीर को कितने भागों में बाँटा जा सकता है, मादा के धड़ के प्रमुख भागों के नाम लिखिये ?

3. गाय का चित्र बनाकर निम्न अंगों को अंकित करो—

(i) स्कन्ध बिन्दु	(iv) गलकम्बल
(ii) चाँद	(v) दुग्ध-कूप
(iii) थूथन	(vi) नासादण्ड

अध्याय—5

पशुओं का चुनाव
(Selection of Animals)

पशुओं का चुनाव कर लेना सरल कार्य नही है। जिस प्रकार यह कहा जाता है कि 'सभी लोग गायक नही बन सकते' उसी प्रकार यह भी सत्य है कि सभी लोग अच्छे पशु पारखी नही बन सकते हैं'। अच्छा पशु-पारखी प्रकृति-प्रदत्त गुण है जो सभी मे नहीं आ सकता परन्तु सच्ची लगन, परिश्रम, व्यवस्थित अध्ययन तथा अनुभव से सामान्य व्यक्ति अच्छा पशु-पारखी बन सकता है। अच्छे पशुओं को चुनाव के लिये उनके आदर्श रूप के ज्ञान के साथ उद्देश्यो का स्पष्ट होना अत्यन्त आवश्यक है।

पशुओं का चयन निम्न उद्देश्य के लिये किया जाता है—

1. उत्पादन के लिये 2. शक्ति के लिये

1. उत्पादन के लिये (For Production)—इसके लिये गाय, भैंस, बकरी भेड़, मुर्गी आदि का चुनाव किया जाता है। इन जातियों मे जैसे दूध के लिये गाय-भैस का चुनाव करते हैं। गाय की अपेक्षा भैस से अपेक्षाकृत अधिक वसा वाला दूध अधिक मात्रा मे मिलता है। परन्तु गाय का दूध सभी आयु के व्यक्तियों के लिये उपयोगी होता है। पशुओ का जिस प्रकार भरण-पोषण किया जाता है उसी के अनुरूप दूध मिलता है।

2. शक्ति के लिये (For Power)—कृषि-कार्य और इनसे सम्बन्धित अन्य कार्यों के लिये भैसा, बैल, ऊँट, घोडा, खच्चर आदि पशु काम मे लाये जाते है। भैंसे की अपेक्षा बैल अधिक चुस्त व फुर्तीले होते हैं जबकि भैंसा अधिक भार खीच सकता है। रेगिस्तान में ऊँट ही काम मे आते हैं। पर्वतीय भागो मे घोड़े व खच्चर काम मे लाये जाते हैं परन्तु मैदानी भाग मे घोड़े सवारी और खच्चर बोझा ढोने के काम आते हैं।

सर्वप्रथम पशुपालक पशुओं के चयन के लिये उद्देश्यो का निर्धारण करेगा तथा इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उपयुक्त पशुओं का चयन करेगा। पशुओं के चयन करने की निम्न प्रमुख विधियाँ हैं—

1. पशुओं के पूर्वजों के लेखों का अध्ययन
2. संतती के लेखों का अध्ययन
3. पशुओं तथा उसके निकट सबंधियों के उत्पादनों का अध्ययन
4. पशुओ की रूप रेखा का अध्ययन

1. पशुओं के पूर्वजों के लेखों का अध्ययन (Study of record of ancestry) सरकारी और बडे डेयरी फार्मों पर पशु, उनके माता-पिता और उनके पूर्वजों के उत्पादन के विस्तृत लेखे-जोखे रखे जाते है जिनको देखकर उनकी उत्पादकता तथा कार्यशीलता का अनुमान लगाया जाता है परन्तु बंशावली पर आधारित चुनाव सही नही बैठता है।

2. संतति के लेखे का अध्ययन (Study of record of progency)—पशुओं के बछिया-बछड़ों के उत्पादन तथा उनकी सतानो की कार्यशीलता के रिकार्ड को देखकर इनकी उपयोगिता का अनुमान लगाया जाता है।

3 पशु तथा उसके सम्बन्धियों के उत्पादनों के लेखे का अध्यन (Study of milk record of the animals and its near relatives)—पशु तथा उसके निकट वाले पशुओं के दूध उत्पादन तथा कार्य क्षमता के लेखे का अध्ययन किया जाता है कि अच्छी दूध देने वाली गाय तथा उसकी संताति भी उचित देख-रेख करने पर अच्छा उत्पादन देगी।

4. पशुओं की बाह्य रूपरेखा का अध्ययन (Study of Appearance of animal)—पशुओ की जाति के अनुरूप रंग, शरीर के अंगो तथा उनका समायोजन का अध्ययन किया जाता है। उनके स्वास्थ्य, आयु और उनकी किस्म को देखकर पशु की श्रेष्ठता का अनुमान लगा लेते हैं।

पशु को देखकर उसकी परख करने का सर्वोतम समय उसके ब्याने के लगभग 1 25 माह के बाद का होता है इस समय पशु अपने ब्यांत मे दुग्ध उत्पादन की अधिकतम सीमा (Reak point of production) पर होती है। पशु को सामान्य दाना-चारा खिलाकर 2–3 बार दूध निकाल कर उसके उत्पादन की पुष्टि कर लेते हैं।

5. गुणांकन तालिका (Score Card Method)—पशुओ की वंशावली एवं अन्य लेखे उपलब्ध न होने पर इस विधि से पशुओ के विभिन्न अगो को देख कर उनकी श्रेष्ठता का निर्धारण करते हैं तथा श्रेष्ठ पशु को झुण्ड में से चुन लेते हैं।

पशुपालक के अपने उद्देश्यों को नियत करने के बाद डेयरी फार्म रखे जाने वाले पशुओं की संख्या का निधारण निर्धारिण करता हैं। कुल पशु संख्या के 1/3 पशुओं को क्रय करके डेयरी फार्म चालू करता है। यही पशुपालक का

'बुनियादी झुण्ड' होगा, शेष पशुओं को दो-तीन बार में क्रय करेगा जिससे उसे पूरे वर्ष पर नियमित उत्पादन मिलता रहे।

पशुपालक को पशुओं में चयन करते समय उनके विभिन्न अंगो का पूर्ण ज्ञान हो तथा उसके मस्तिष्क में एक आदर्श गाय का मानसिक चित्र हो जिसके अनुसार ही वह पशु को चुनेगा। मेले तथा झुण्ड मे पशुओ के चयन करते समय किसी अनुभवी व्यक्ति अथवा पशु चिकित्सक को साथ रखना आवश्यक है।

(अ) अच्छी गाय का चुनाव—अच्छी गाय की पहिचान के लिये निम्न बातों को ध्यान में रखा जाता है—

1. गाय के बाह्य अंगों की बनावट का दैनिक क्रियाओ से सीधा सबंध होता है। चमकीली आंखें, खड़े कान, चुस्त शरीर इस बात का द्योतक है कि गाय के शरीर मे रक्त परिभ्रमण अच्छा हो रहा है और ऐसी गाय से अधिक दूध मिलता है क्योकि दुग्ध-स्रवण का कार्य निरंतर चलता रहता है।

2. चौड़ा थूथन, सुदृढ़ जबड़ा होने से पशु चारे को चबाकर खाता है और अच्छा दूध देती है।

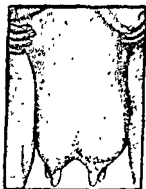
3. बड़े-खुले नथुने गाय के अच्छे स्वास्थ्य का प्रतीक है क्योंकि इससे श्वसन अच्छा होता है।

4. चौड़ा और गहरा सीना, दूर-दूर तक फैले कन्धे हृदय और फेफड़े के विकास को प्रदर्शित करते हैं जिससे रक्त संचार अच्छा होता है और पशु अधिक दूध देगा।

5. चौड़ा और उभरा पेट, बाहर की ओर फैली दूर-दूर पसलियां, पशु के विकसित पाचन-संस्थान को प्रदर्शित करती हैं।

6. बड़ा, मुलायम, लचीला, काफी दूर तक फैला हुआ अयन, चारों बड़े तथा समान आकार और एक दूरी पर स्थित थन, उभरी तथा फैली दुग्ध शिरायें





चित्र—अयन

अधिक दुग्ध उत्पादन क्षमता को प्रदर्शित करती हैं। अयन गांठ रहित, मांसल तथा लटकता हुआ न हो। दूध दुहने बाद अयन लचीला और मुलायम होकर सिकुड़ जाय।

7. पतली, मुलायम त्वचा अच्छे रक्त संचार को प्रदर्शित करती है।

8. अच्छी गाय के शरीर पर तीन प्रकार के पच्चड़ (Wedges) बननी चाहिये। ये पच्चड क्रमशः बगल के ऊपर और सामने के पच्चड़ कहे जाते हैं।

(अ) बगल का पच्चड़—पिछले पैरों के निकट सर्वाधिक चौड़ा तथा गले के समीप सबसे पतला भाग होता है।

(ब) ऊपर का पच्चड़—पुट्ठों के बीच सब से अधिक चौड़ा तथा कुकुद पास कम चौड़ा होता है।

(स) सामने का पच्चड़—दोनों अगले पैरों के बीच सब से अधिक चौड़ा और कुकुद के पास कम चौड़ा होता है।

गाय में ये पच्चड जितने ही अधिक स्पष्ट होते हैं गाय के हृदय तथा फुफ का अच्छा विकास होता है। ऐसी गाय अधिक दूध देती है।

9. गाय का शरीर लम्बा, सुगठित हो।

10. गाय की त्वचा मुलायम, पतली, चमकीली और चर्बी रहित हो।

11. गाय का स्वभाव सरल और शान्त प्रिय हो।

12. जिस नस्ल की गाय क्रय कर रहें है उसमें अधिकांश लक्षण उसी नस्ल के हों।

13. गाय की आयु दांतों को देखकर निर्धारित कर लें। दो बार की ब्याई गाय दूध मे अच्छी होती है।

14 गाय 8–10 माह के ब्यांत मे कम से कम 1600 लीटर दूध देने वाली हो।

15. पशु चिकित्सक या अनुभवी व्यक्ति से गाय के स्वास्थ्य की जांच करा कर नीरोगता का निश्चय करना अच्छा रहता है।

गुणांकन तालिका से गाय की जांच
(Judging of cow by score card)

इससे गाय अथवा भैंस को परखा जाता है। इसमें पशुओं के प्रत्येक अंग पर वांछित गुणों के अनुसार पृथक-पृथक अंक दिये जाते हैं। ये अंक पूर्णांक 100 में से विभिन्न शीर्षकों पर दिये जाते हैं।

गाय या भैंस की परख के समय पशुपालक पशु को दूर से देखकर उसके स्वभाव को जाने। इसके बाद निर्भय होकर पशु के बांई ओर खड़ा होकर सहला

और थपथपाकर आश्वस्त हो जावें। पशु को हरी घास खिलायें और पुचकारते रहे। पशु से हेल-मेल होने के बाद उसके विभिन्न अंगों का निरीक्षण करें। पहले-पहल भूल से सींग और थनों पर हाथ न लगायें।

पशु से हेल-मेल होने पर उसके विभिन्न अंगों का अच्छी तरह निरीक्षण करें। निरीक्षण करते समय आदर्श पशु का चित्र पारखी के मस्तिष्क में हो। पशु पारखी जितने ही उत्तम पशुओं को देखेगा उतनी ही परख सही होगी।

पशु के विभिन्न अंगो के दिये अंकों के योग के आधार पर ही पशु की श्रेष्ठता निश्चित की जाती है।

गाय व भैंस की गुणांकन तालिका

क्रमांक	अंक देने वाले अंग	पूर्णांक	पशुओ की संख्या			
			1	2	3	4
1.	साधारण दशा— (General oppearance) —अंक 20					
	(अ) नस्ल (Breed)—निश्चित नस्ल और रंग रूप मे ठीक हो।	4				
	(ब) आकार (Build)—उम्र के अनुसार वृद्धि और विकास हो।	2				
	(स) दिखावट (Appearance)—गाय की बनावट नर पशु जैसी नही होनी चाहिए। शरीर पर चर्बी लाने वाले लक्षण भी नही हों।	3				
	(द) शक्ल (Form)—गाय का शरीर ठीक त्रिकोण में हो ब्यांत के काल पर भी विचार करें।	5				
	(य) गुण (Quality)—त्वचा पतली मुलायम साफ, चमकीली, पतले बाल और हड्डियां साफ उभरी हुई।	4				

क्रमांक	अंक देने वाले अंग	पूर्णांक	पशुओं की संख्या			
			1	2	3	4
	(र) स्वभाव (Temprament)—गाय स्वभाव में सीधी और फुर्तीली हो।	2				
2.	सिर और गर्दन (Head & Neck)—अंक 10					
	(अ) सिर (Head)—सीधा सुन्दर और साफ।	1				
	(ब) माथा (Fore Head)—आंखों के बीच में चौड़ा हो।	1				
	(स) चेहरा (Face)—साफ सुन्दर तथा मध्यम लम्बाई।	1				
	(द) थूथन (Muzzle)—थूथन चौड़ा, मजबूत जबड़ा तथा होंठ नथुने चौड़े और खुले हुए।	2				
	(य) कान (Ear)—कानों की बनावट नस्ल के अनुसार।	1				
	(र) आंखें (Eyes)—चमकीली और बड़ी।	1				
	(ल) सींग (Horns)—अच्छे नस्ल के अनुसार।	1				
	(व) गर्दन (Neck)—लम्बी साफ और पतली।	2				
3.	आगे के अंग (Fore Quarter)—अंक 6					
	(अ) ठांटा (Hump)—मध्यम आकार।	1				
	(ब) कन्धा (Shoulders)—गर्दन से सटा हुआ आधार चौड़ा और ऊपर की ओर कोणीय।	3				

क्रमांक	अंक देने वाले अंग	पूर्णांक	पशुओं की संख्या			
			1	2	3	4
	(स) टांगें (Legs)--हड्डियाँ सुदृढ़ सीधी, साफ पैर।	2				
4.	शरीर (Body) अंक 15					
	(अ) सीना (Chest)--अगली साखाओं के बीच में लम्बा और मजबूत।	4				
	(ब) पीठ (Back)—सीधी और चौड़ा।	2				
	(स) कूल्हा (Loib)--चौड़ा मजबूत, और मास रहित तथा वटिवी अच्छी।	3				
	(द) पसलिया (Riss)-गहरी लम्बी, इरट और लचीली।	4				
	(य) कोख (Flanks)--गहरी और पूर्ण।	1				
	(र) नाभि (Navel Flap)—नस्ल के अनुसार।	1				
5.	पीछे के अंग (Hind Quarter)— अंक 14					
	(अ) पृष्ठास्थि (Hip Bones)—चौड़ा दूर-दूर तथा चौरस।	2				
	(ब) पुट्ठे (Rump)—नस्ल के अनुसार लम्बे चौड़े परन्तु अधिक ढालू नहीं।	3				
	(स) पिन बोन (Pin Bone)—एक दूसरे से दूर।	2				
	(द) पूँछ (Tail)—लम्बी, संकरी पुछाग्र।	2				

क्रमांक	अंक देने वाले अंग	पूर्णांक	पशुओं की संख्या			
			1	2	3	4
	(य) जांघ (Thigh)—पतली लम्बी कुछ अन्दर की ओर झुकी हुई।	3				
	(र) पिछली टांगें (Hind Legs)—सीधी, द्वार स्थिति सुदृढ़ भारी साफ हड्डियां।	2				
6.	दुग्धांग (Mammary Development) अंक 35					
	(अ) अयन (Udder)-(i) (Shape) आकार लटकता हुआ नहीं होना चाहिए। टांगों के बीच में आगे तथा पीछे की ओर फैला हुआ होना चाहिए।	7				
	(ii) परिमाण (Capacity)—अयन आकार में बड़ा हो।	7				
	(iii) गुण (Quality)—लचीला मांस रहित हो।	7				
	(ब) दुग्ध शिरा (Milk Veins)—यह बड़ी लम्बी, टेढ़ी-मेढ़ी और शाखाओं युक्त हो।	4				
	(स) थन (Teats)—बड़े बराबर और एक फ़ासले पर हों।	5				
	(द) अयन पर शिरायें (Veins on the udder)—उभरी हुई शाखाओं में हों।	3				
	(य) दुग्ध कूप (Milk Wells)—बड़े और संख्या में अधिक हो।	2				

(ब) बैल का चुनाव (Selection of Bullocks)--कृषि में बैलों का महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि वे कृषि के अनेक कार्य--हल चलाने, गाड़ी खींचने, सिंचाई, मड़ाई आदि में काम आते हैं। भारतीय कृषको की खेत तथा आर्थिक स्थिति अच्छी न होने से मशीनों का उपयोग नहीं होता है। अतः अच्छे बैलों का होना अत्यन्त आवश्यक है।

उत्तम बैलों की पहिचान के लिये कुछ घाघ की कहावतें प्रचलित हैं जो *पशुपालकों के बहुत समय के अनुभव पर आधारित है। कुछ कहावतें निम्न है—*

1. छोटे सींग छोटी पूँछ।
   ऐसे को ले लो वे पूछ॥

2. पूँछ झपा और छोटे कान, ऐसे बैल मिहनती जान।

3. सींग मुड़े, माथा उठा, मुँह का होवे गोल।
   रोम नरम, चंचल करन, तेज बैल अनमोल॥

4. पतली पिंडली मोटी रान, पूँछ होय भुइ मे तरियान।
   जाके होवें ऐसी गोई, ताकी दाकत है सब कोई॥

5. *एक बात तुम सुनो हमारी।*
   बूढे बैल से भली कुदाली।

अच्छे बैल के लक्षण—पशुपालक अपने घर पर ही अच्छे बछड़ों को पालकर उन्हें बधिया करा कर कृषि कार्यों मे उपयोग लाते हैं। हाट, मेलो मे जाकर बैलो को खरीदता है। राज्य मे पुष्कर (अजमेर), कोटा, परबतसर (नागौर), बालोतरा (जोधपुर), खेड़ली (अलवर) तथा समीपस्थ बटेसर (आगरा) जहाजगढ़, रोहतक आदि पशु मेलों से बैलों को खरीदते है। अच्छे बैलो को मेले मे चुनने मे अधिक समय नही मिलता है। इससे अच्छे बैलो के लक्षणो का ज्ञान होना आवश्यक है।

1. शरीर की बनावट—पशु-शरीर के सभी अंग सुडौल, सुगठित एवं सुव्यवस्थित हों। उसे एक स्थान पर खडा करके सामने से देखा जावे तो सिर पीठ से ऊँचा हो। गर्दन मोटी, सामान्य लम्बाई की मजबूत मांसपेशियो से ढकी हो। माथा चौड़ा, आँखें बड़ी, चमकीली हों। सीना चौड़ा, पीठ सीधी और चौड़ी हो। अगले पैरों के बीच का फासला समान हो और चलते समय आपस में न टकराते हों। पूँछ लम्बी, ऊपर से नीचे की ओर पतली, काले गुच्छे वाली हो। त्वचा मुलायम, चमकीली एवं चर्बी रहित हों, ऐसा बैल स्वस्थ एवं शक्तिशाली होता है।

2. ऊँचाई—बैलों की ऊँचाई कार्य के अनुसार होना अच्छा रहता है। अधिक तेज चलने के लिये बैलों की टाँगें लम्बी, मजबूत हों। कृषि कार्य के लिये मध्यम आकार के तथा बोझा ढोने के लिये टाँगें छोटी, मजबूत, कद सामान्य हो। जोड़ी के दोनों बैलों की ऊँचाई समान होना अच्छा है।

3. भार—बैल का भार उसके कार्य के अनुरूप हो। तेज चलने, कृषि कार्य के लिये सामान्य भार तथा भार खींचने के लिये अधिक भार के बैल हों।

4. दम, साहस और शक्ति—जिस बैल का सीना चौड़ा, अधिक गहराई का, रीढ की हड्डी सीधी, फसलियाँ दूर-दूर तक फैली होती हैं उसका हृदय और फेफड़ अधिक विकसित होते है। चौड़ कधे, छोटी गर्दन वाले बैल साहसी होते हैं; बीच में बाधा आन पर दम लगाकर साहस से पार कर जाते हैं।

5. स्वभाव—बैल शांत स्वभाव का हो पर चारों पैरो पर खड़े होने वाले बैल फुर्तीले होते हैं। अधिक मोटे बैल सुस्त पर बोझा ढोने मे अच्छे रहते हैं।

6. आयु—बैलो की आयु दाँतो से जानी जाती है, इसकी आयु 3 से 6 वर्ष के बीच हो क्योकि इस आयु के बैल युवा और शक्तिशाली होते हैं। 8 वर्ष के बाद बैलों की शक्ति एवं कार्य क्षमता का ह्रास होने लगता है। अच्छी देख-रेख और व्यवस्था करने पर बैल 15 वर्ष की आयु तक कार्य करते रहते हैं।

7 शरीर की दशा—बैल देखने मे सुन्दर और शानदार हों। उनका रंग शरीर का आकार, अंगों का सामजस्य नस्ल के अनुरूप हो। बैल की शक्ति-परीक्षण क्रय करने से पूर्व करना उत्तम रहता है।

दौड़ के लिये नागौरी, गगातीरी तथा कृषि कार्य के लिये हरियाना, हिसार, गिर, कांकरेज जाति के बैल अच्छे रहते हैं।

बैल की श्रेष्ठता का गुणांकन तालिका
(Score card for Bullocks)

बैल की भली प्रकार जाच के लिये निम्न तालिका प्रयोग करनी चाहिए—

क्रमांक	अक देने वाले अग	पूर्णांक	बैलो की सख्या			
			1	2	3	4
1.	सामान्य रूप (General Appearance) अंक—20					
	1. वजन—नस्ल के अनुसार हो।	10				
	2. रंग—नस्ल के अनुसार हो।	2				

Contd.

क्रमांक	अंक देने वाले अंग	पूर्णांक	बैलों की संख्या			
			1	2	3	4
	3. चमड़ा एवं बाल—पतला चमड़ा व बाल मुलायम।	3				
	4. हड्डियाँ—मोटी और मजबूत।	2				
	5. स्वभाव—सीधा।	3				
2.	सिर व गर्दन (Head & Neck)— अंक—21					
	1. सिर—छोटा व सीधा	4				
	2. सींग—औसत दर्जे के।	2				
	3. थूथन—बडा सुन्दर, नथने बड़े तथा होठ पतले।	2				
	4. आँखें—बड़ी-बड़ी और चमकीली।	3				
	5. कान—बड़े और सुन्दर।	2				
	6. गला—औसत दर्जे का।					
	7. गर्दन—पतली।	8				
3.	अगले अंग (Fore Limbs)— अंक—17					
	1. कन्धा—लम्बा, चौड़ा और पीठ तक पहुंचा हो।	6				
	2. अगले पैर—मजबूत छोटे और मांश पेशियों से ढके हुए।	4				
	3. पिंडली—छोटी और मजबूत।	3				
	4. घुट्टी—छोटी और सीधी।	2				
	5. खुर—मजबूत और काले।	2				
4.	पिछले अंग (Hind Limbs)— अंक—22					
	1. पिछाड़ी—चौड़ी और ढकी हुई।	3				
	2. पूंछ—लम्बी ऊपर से नीचे की ओर पतली तथा काले बालों के गुच्छे वाली।	4				

क्रमांक	अंक देने वाले अंग	पूर्णांक	बैलों की संख्या			
			1	2	3	4
	3. जांघें—छोटी और मोटी।	2				
	4. चूतड़—बड़े और मांस से ढके हुए।	4				
	5. पिंडली—छोटी और सीधी।	2				
	6. घुट्टी—छोटी और मजबूती से लगी हुई।	2				
	7. खुर—काले मजबूत।	2				
	8. पैर—मांसल और बड़े।	3				
5.	मध्य अंग (Middle Limbs) अंक—20					
	1. छाती—लम्बी चौड़ी।	8				
	2. हृदय अंग—चौड़ा एवं मांस पेशियों से ढंका हुआ।	5				
	3. पंसलियां—लम्बी-लम्बी दूर-दूर और खूब झुकी हुई।	3				
	4. पीठ—सीधी और मोटी।	4				
	योग	100				

(स) सांड का चुनाव (Selection of Bull)—दुग्ध-उत्पादन की दृष्टि
वही सांड उत्तम है जिसकी बछिया सर्वोत्तम गाय बने। अतः सांड की जा
साथ उसकी संतति के लेखे का अवलोकन आवश्यक है। संततियों में अच्छे गुणों
प्रेरित करने वाला सांड अपेक्षाकृत उत्तम रहता है।

सामान्यतया डेयरी के पशुओं के लेखे न रखे जाने से सांड के स्वय
लक्षण, उसकी मां और बहिन के दुग्ध उत्पादन को देखकर किसी भी सांड के
में निर्णय लिया जा सकता है।

'अकेला सांड आधे झुण्ड के सदस्य होता है'। अतः सांड के चुनाव में अत्यंत सतर्कता और सावधानी रखने की आवश्यकता है। इसके लिये अच्छे गुणों का होना आवश्यक है।

अच्छे सांड के लक्षण—1. सांड शुद्ध नस्ल का हो और किसी अच्छे फार्म से उनके पूर्वजों के लेखे-जोखे (Record) को जांच कर क्रय किया जावे।

2. चयनित सांड की बनावट, कद और किस्म नस्ल के अनुरूप अच्छे लक्षणों का हो।

3. सांड की ग्रीवा मध्यम लम्बाई की और ग्रीवा किरीट स्पष्ट हो।

4. सांड का मुतान चुस्त तथा अण्डकोष बराबर तथा एक सतह पर बिना किसी सख्ती और सूजन के अच्छे और सुडौल हों।

5. सांड के पैरों की अच्छी तरह जांच कर लें। किसी भी प्रकार का लंगड़ापन प्रजनन शक्ति में बाधक होता है।

6. सांड की उम्र 3–4 वर्ष के मध्य हो जिससे वह काफी समय तक काम दे सके।

7. सांड को छांटने से पूर्व पशु-चिकित्सक से परीक्षा करालें, वह सभी प्रकार की छूत की बीमारियों से मुक्त हो।

पुरानी कहावत के अनुसार, 'सांड का कभी विश्वास मत करो' अर्थात सांड के पास जाने से पूर्व उसे भली भांति वश में करने पर चोट आदि का भय नहीं रहता है। वश करने के लिये नकेल (Bullholder), बोया रस्सी (Bull rope) बोया लाठी (Bull stuff), मुख पट (Bull mask) या बुल लीडर (Bulleader) आदि उपयोग में लाते हैं।

सांड के अंग-प्रत्यंगों की जांच करने गुणांकन पत्र में अंक देकर अच्छे सांड का चुनाव करते हैं।

सांड की जांच का गुणांकन पत्र
(Score card for judging Dairy Bull)

1. साधारण दशा—24 अंक

(अ) नस्ल—नस्ल का सत्य प्रतिरूप हो	6
(ब) आकार—आयु के अनुरूप	4
(स) देखने में—नर लक्षण वाला, अगला शरीर खिंचा तथा पिछला भाग हल्का हो	3
(द) स्वभाव—नम्र, चर्बी रहित	5
(य) गुण—अंग समानुपाती, त्वचा मुलायम व सामान्य मोटाई की हो	4
(र) प्रकृति—चंचल, क्रियाशील और क्षमता वाली	2

2. सिर ग्रोर गर्दन—17 ग्रंक

(ग्र) सिर - सुन्दर	2
(ब) माथा—दोनों ग्राँखों के बीच मे चौड़ा	1
(स) चेहरा—ग्रौसत ग्राकार का सुन्दर	3
(द) थूथन चौड़ा, मजबूत, नथुने बड़े, खुले हुये ग्रौर जबड़ा मजबूत	4
(य) कान—नस्ल के ग्रनुसार	2
(र) ग्राँख—बड़ी ग्रौर चमकीली	1
(ल) सींग—छोटे-छोटे नस्ल के ग्रनुसार	1
(व) गर्दन उचित लम्बाई की, नर के ग्रनुसार भली भांति कंधों से जुड़ी हुई	3

3. शरीर का ग्रगला भाग—10 ग्रंक

(ग्र) ककुद या ढांठ—ग्रच्छा विकसित	2
(ब) कंधे ग्रौसत ऊँचाई के, चौड़े, पूर्ण	5
(स) टाँगें—ग्रौसत लम्बाई की, सीधी, एक दूसरे से दूर	3

4. धड़—18 ग्रंक

(ग्र) सीना—गहरा ग्रौर चौड़ा	4
(ब) पीठ—सीधी, मजबूत, लचीली	2
(स) कूल्हे—मजबूत ग्रौर चौड़े	4
(द) पेट—लम्बा, चौड़ा, मजबूत, लोचदार पसली वाला	8

5. शरीर का पिछला भाग—21 ग्रंक

(ग्र) पुट्ठे—शरीर की लम्बाई में, ग्रच्छी लम्बाई वाला, उत्तम ढलान का।	4
(ब) गर्दन की हड्डियां-उभरी, चौड़ी, दूर तक फैली हो	2
(स) जांघ-सीधी, बगल से देखने पर गोल तथा सटी न हों	6
(द) पूँछ—ग्रच्छी जुड़ी, पूर्ण गुच्छे युक्त हो	3
(य) पिछली टांगे—चौड़ी, वर्गाकार, सुन्दर लचीली, मजबूत	4
(र) पैर—देखने मे छोटी ऐडी, गहरी तली समतल हो	2

6. दुग्ध चिन्ह—4 ग्रंक

चिन्ह-एक दूसरे से दूर, वर्गाकार स्थिति में हों	4

7. ग्रण्डकोष या बीजाण्ड—6 ग्रंक

दोनों सामान्य, समानाकार के, ग्रण्डकोष मजबूत ग्रौर ठीक प्रकार से जुड़े हों।

पूर्णांक— 100

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. निम्न का चुनाव कैसे करोगे–
   (i) दूध देने वाली गाय
   (ii) सांड
   (iii) बैल
2. पशुधन का चुनाव कितने प्रकार से कर सकते है, विस्तार से लिखो ?
3. गाय के चुनाव के क्या कारक हैं ?
4. दुधारु गाय के चुनाव हेतु एक गुणांकन तालिका प्रस्तुत कीजिये तथा इसके विभिन्न बिन्दुओ पर 100 अंकों का वितरण कीजिये ?
5. एक बैल की क्या पहिचान है ? एक अच्छे बैल का चुनाव गुणांकन तालिका द्वारा कैसे करोगे ?
6. एक अच्छे साड की क्या पहिचान है ?
7. एक अच्छे बैल की क्या पहचान है ? बैल खरीदते समय आप किन बातों को ध्यान में रखेंगे ।
8. गायो में श्रेष्ठता का चयन गुणाकन तालिका (Score card) द्वारा किस प्रकार किया जाता है ?

पशुओं की आयु का निर्धारण
(Age Judging of the Animals)

भारतीय पशुपालक पशुओं को आँकने में प्रवीण होते है। वे पशुओं की शरीर-बनावट, खुरो को देखकर, सींग में छल्लों को गिनकर अथवा दाँतो द्वारा आयु का अनुमान लगा लेते हैं। पशु को खरीदते समय आयु का अनुमान लगाना अत्यन्त आवश्यक है। पशु की आयु के आधार पर उसकी कीमत लगती है। कम आयु वाले पशु अधिक समय तक उत्पादन देते हैं और कार्य करते हैं।

गाय, बैल आदि पशुओ की आयु ज्ञात करने की निम्न विधियाँ है—

1. पशुओं की सामान्य दशा को देखकर,
2. पशुओ के खुरो को देखकर,
3. सींग के छल्ले गिनकर,
4. दाँतों को देखकर।

1. पशुओं की सामान्य दशा को देखकर (By General Appearance)—युवा पशुओं की त्वचा मुलायम, पतली, चमकीली होती है जो शरीर से अच्छी तरह चिपकी होती है। रीढ़ की हड्डी सीधी, आँखें चमकीली, थूथन गीला और पशु देखने में चुस्त दिखाई देता है। जैसे-जैसे पशु की आयु बढ़ती जाती है इन लक्षणों में अन्तर दिखाई देने लगता है। उसकी त्वचा ढीली-ढाली, लटकती हुई, बाल मटमैले छितरे हुए, रीढ की हड्डी झुकी हुई तथा आँखें भद्दी हो जाती हैं।

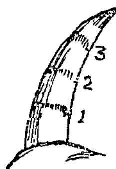
जिन पशुओं को प्रारम्भ से ही अच्छी देखभाल और सन्तुलित आहार दिया गया हो उनकी आयु अधिक होने के साथ सामान्य शारीरिक परिवर्तन विशेष नही होता है। इस प्रकार इससे आयु का सही अनुमान नही लगाया जा सकता है।

2. पशु के खुरों को देखकर (By Hoof)—युवा एवं कम आयु के बछड़ों के खुर छोटे, चमकील, काले रंग के सुडौल होते हैं। जैसे-जैसे ही आयु बढ़ती जाती है खुर फैलकर, चौड़े, भद्दे और मटमैले हो जाते हैं। खुरो की दशा पर स्थान का भी प्रभाव पड़ता है। पर्वतीय और पथरीले क्षेत्रों के पशुओ के खुर

मैदानी भागों की अपेक्षा अधिक घिसते हैं। इस प्रकार खुरों द्वारा आयु का सही अनुमान नहीं लगा सकते हैं।

3. सींग के छल्ले गिनकर (By Counting therings of Horn) युवा पशु को तीन वर्ष की आयु में प्रथम छल्ला बनता है। इसके बाद प्रतिवर्ष एक छल्ला बनता जाता है। इस विधि मे निम्न सूत्र से आयु ज्ञात करते हैं—

पशु की आयु = 2 + छ (छ = छल्लों की संख्या)



चित्र—भैंस के सींग पर छल्ले

बैल के सींग में 5 छल्ले होने पर उसकी आयु = 2 + 5 = 7 वर्ष

परन्तु चतुर पशुपालक पशु के सींगो को रेती से रेत या छील कर रंग लगा देते है। जिन पशुओं के प्रारम्भ से ही सींगरोधन कर दिया है, उनकी आयु इस विधि से ज्ञात नहीं की जा सकती है।

4. **दांतों को देखकर (By Teeth)** - पशुओं की आयु ज्ञात करने की अन्य विधियों से यह सर्वोतम एवं विश्वसनीय विधि है। इसमे पशुओ के निचले जबड़े (Jaw) के सामने के दाँत, जिन्हें कृन्तन दांत (Incisors) कहते है, को देखकर आयु ज्ञात करते हैं। गाय-बैल के ऊपरी जबड़े मे दांतो के स्थान पर कठोर पैड होते हैं। मनुष्यों की भाँति पशुओ के जीवनकाल मे दांत दो बार निकलते है। पहली बार अस्थाई दूध के दांत तथा दूसरी बार के स्थाई दात होते है।

(1) अस्थाई दांत (Temporary Incisors)—बच्चे के जन्म के समय निचले जबड़े मे बीच के दो दांतो के अतिरिक्त एक सफेद धारी दिखाई देती है। कभी-कभी एक सप्ताह की उम्र मे पहिली निकलती है इसी प्रकार दूसरे, तीसरे और चौथे सप्ताह मे क्रमशः चार, छः तथा आठ या चार जोड़ी अस्थाई दांत निकल आते है। ये दांत छोटे तेज और सफेद चमकीले होते हैं।



① (जन्म पर)



② (दूसरे सप्ताह में)



③ (तीसरे सप्ताह मे)



④ (चौथे सप्ताह में)



⑤ (आठ माह में)



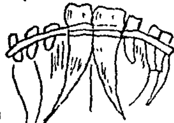
⑥ (एक वर्ष में)



⑦ (15 माह में)



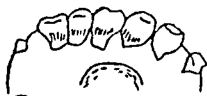
⑧ (18 माह में)



⑨ (दो वर्ष में)



⑩ (तीन वर्ष में)









चित्र---जन्म से 10 वर्ष की आयु के दांत

अस्थाई दांतों का घिसना—जैसे-जैसे बछड़े की आयु बढ़ती जाती है वैसे ही जबड़े का आकार बढ़ता जाता है। ये दूध के दांत विकसित होकर घिसने शुरू हो जावे हैं। दांतों मे घिसाव निम्न समय मे शुरू होता है—

(i) पहली जोडी—मे 10 माह की आयु मे घिसावट प्रारम्भ होती है।

(ii) दूसरी जोड़ी—में बच्चे की आयु 15 माह की होने पर घिसावट शुरू होती है।

(iii) तीसरी जोड़ी में—बच्चे की आयु 18 माह की होने पर घिसावट शुरू हो जाती है।

(iv) चौथी जोड़ी मे बच्चे की आयु 21 माह की होने पर घिसावट शुरू होती है।

(2) **स्थाई दांत (Permanent Teeth)**—पशु की आयु $1\frac{3}{4}$ से 2 वर्ष की होने पर इसके सभी अस्थाई दूध के दांत घिस जाते है और गिर जाते है। इनके स्थान पर स्थाई दांत निकलते हैं।

(i) केन्द्रीय कृन्तन दंत (Central Incisors) – ये 2 से $2\frac{1}{2}$ वर्ष की आयु मे निकल आते हैं।

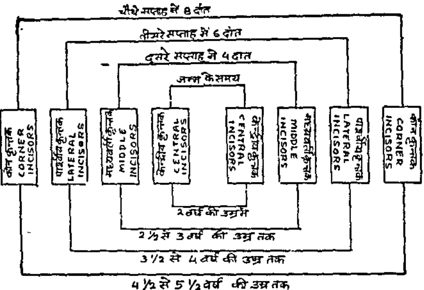
(ii) मध्यवर्ती कृन्तन दंत (Middle Incisors)—ये 3 से $3\frac{1}{2}$ वर्ष की आयु में निकल आते है।

(iii) पार्श्वीय कृन्तन दंत (Laternal Incisors)—ये 4 से $4\frac{1}{2}$ वर्ष की आयु मे निकल आते है।

(iv) कोन कृन्तन दंत (Corner Incisors)— चौथी अन्तिम जोड़ी 5 से $5\frac{1}{2}$ वर्ष की आयु मे निकल आती है।

उम्र जिसमें अस्थायी कृन्तक दन्त निकलते हैं।

उम्र जिसमें अस्थायी कृन्तक दन्त घिस जाते हैं।



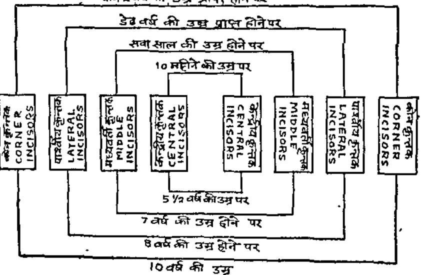
छः महीने की उम्र होने तक ये अस्थायी कृन्तक दन्त पूर्ण विकसित हो जाते हैं।

छः वर्ष की उम्र तक पशुओं के सारे स्थायी कृन्तक दन्त पूर्ण विकसित अवस्था मे होते हैं उनका आकार एक सा होता है और उनके सिरे गोल होते हैं।

पशुओं के दांत घिसने की उम्र

उम्र जिसमे अस्थायी कृन्तक दन्त घिसना प्रारम्भ करते हैं।

उम्र जिसमे स्थायी कृन्तक दन्त घिसना प्रारम्भ करते है।



पौने दो वर्ष की उम्र प्राप्त होने पर केन्द्रीय कृन्तक दांत गिराऊ हो जाते हैं।

दस वर्ष की उम्र होने पर सारे स्थायी कृन्तक दन्त घिस जाते है।

1. ग्यारह वर्ष की उम्र प्राप्त होने पर कृन्तक दन्त घिस कर छोटे हो जाते हैं।
2. बारह वर्ष की उम्र होने पर दातों के बीच मे जगह हो जाती है और दांतों के सिरे चौकोर हो जाते है।
3. बारह वर्ष की उम्र के बाद पशुओं की उम्र का ठीक-ठीक अनुमान करना कठिन होता है।

6 वर्ष की आयु होने पर पशु के सभी स्थाई दांत निकल आते हैं। इस समय पशु पूर्ण युवा हो जाता है और इसे पूर्ण दांत वाला (Full Mouth) कहते हैं। पशु का जबड़ा गोल और दांत देखने में बड़े सुन्दर लगते हैं।

जैसे-जैसे पशु की आयु बढ़ने लगती है तो उसके दांतों की दूरी बढ़ने लगती है और उनमें घिसाव प्रारंभ होने लगता है। पहिली जोड़ी में 5 वर्ष की आयु में घिसावट प्रारंभ हो जाती है जो 7 वर्ष की आयु में काफी घिस जाती है। 7 वर्ष की आयु में मध्यवर्ती कृन्तन दन्त, 8 वर्ष की आयु में पार्श्वीय कृन्तन दन्त और 9 वर्ष की आयु में कोन कृन्तन दन्त घिसने प्रारम्भ हो जाते है और 12 वर्ष की आयु में ये दांत घिसकर चौकोर और जड़ तक पहुँच जाते हैं। पशु की आयु अधिक होने पर इनकी सही आयु का पता नहीं लगा पाते हैं। पशु की अच्छी व्यवस्था और पोषण होने पर अधिकतम 15 वर्ष की आयु तक कार्य कर सकता है।

दांतों द्वारा आयु की पहिचान के लिये निम्न तालिकायें काफी सुविधाजनक हैं

1. अस्थाई कृन्तक दन्त (Temporary Incisors)

क. नं.	दांतों के नाम	दांत निकलने की आयु	दांतों में घिसावट प्रारम्भ होने की आयु
1.	केन्द्रीय कृन्तक दन्त	जन्म के समय	10 माह
2.	मध्यवर्ती कृन्तक दन्त	दो सप्ताह	15 माह
3.	पार्श्वीय कृन्तक दन्त	तीन सप्ताह	18 माह
4.	कोन कृन्तक दन्त	एक माह	21 माह

छः माह की आयु तक अस्थाई सभी कृन्तक दन्त पूर्ण विकसित अवस्था में आ जाते हैं। $1\frac{3}{4}$ वर्ष की आयु में केन्द्रीय कृन्तक दांत गिराऊ हो जाते हैं।

2. स्थाई कृन्तक दन्त (Permanent Incisors)

क्र. सं.	दाँतों के नाम	दाँत निकलने की आयु	दाँतों में घिसावट प्रारम्भ होने की आयु
1.	केन्द्रीय कृन्तक दन्त	2 वर्ष	5—5½ वर्ष
2	मध्यवर्ती कृन्तक दन्त	2.5 से 3 वर्ष	7 वर्ष
3.	पार्श्वीय कृन्तक दन्त	3.5 से 4 वर्ष	8 वर्ष
4.	कोन कृन्तक दन्त	4.5 से 5 वर्ष	9 वर्ष

छः वर्ष की आयु मे सभी स्थाई दाँत पूर्ण विकसित अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं। ये सभी 10 वर्ष की आयु मे घिसे दिखाई देते हैं।

प्रश्न

1. पशु की उम्र कैसे ज्ञात करोगे ? किसी एक विधि का वर्णन विस्तार पूर्वक कीजिये। (राज. बोर्ड, 1974)
2. पशु की आयु कैसे ज्ञात करोगे ? (राज. बोर्ड, 1977)
3. पशुओं की आयु किस प्रकार ज्ञात की जा सकती है ? प्रत्येक विधि चित्र सहित समझाकर लिखिये।
4. पशुओं की आयु ज्ञात करने की विभिन्न विधियों का वर्णन करो। इनमे से सबसे उत्तम विधि का सचित्र वर्णन करो।
5. शिशु एवं प्रौढ़ पशुओं की आयु-निर्धारण विधि का उल्लेख कीजिए। (राज. बोर्ड, 1984)

अध्याय—7

पशुओं का देह-भार निर्धारण
(Determination of the Body Weight)

पशुओं के देह भार का ज्ञान होना अत्यंत आवश्यक है क्योंकि इससे उनके आहार तथा चिकित्सा में सहायता मिलती है।

आवश्यकता—1. पशुओं के स्वास्थ्य का ज्ञान होता है।

2. पशुओं के देह भार के आधार पर उनके आहार की मात्रा नियत की जाती है।
3. पशुओं की औषधि की मात्रा को निर्धारित करते है।
4. पशुओं में गोश्त की मात्रा का अनुमान लगाते है। पशुओं मे उनके देह भार का $\frac{3}{5}$ भाग गोश्त, $\frac{1}{15}$ भाग रक्त, $\frac{1}{5}$ भाग चमड़ा तथा $\frac{1}{12}$ भाग चर्बी मिलती है। साधारण तौर पर पशु को भार का $\frac{1}{10}$ भाग आहार दिया जाता है।

भार ज्ञात करने की विधियां—दो विधियां हैं—

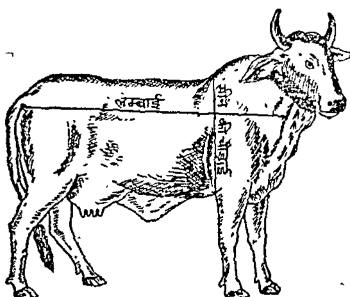
(1) कैटिल वे ब्रिज द्वारा (2) सूत्र द्वारा

(1) कैटिल वे ब्रिज द्वारा (By Cattle weigh Bridge)—स्टेशन या धर्म कांटा पर भार तौलने की तुला की भांति यह एक प्रकार की भार तौलने की ही तुला है जो बड़े डेयरी फार्मों पर होता है जिस पर पशु को खड़ा करके मापक की सहायता से उसका भार मालूम कर लेते हैं।

(2) सूत्र द्वारा (By Formula)—पशुओं के भार ज्ञात करने के लिये कई प्रकार के सूत्र हैं जिनके लिये 'पशु की लम्बाई' और 'छाती का घेरा' की मापें आवश्यक हैं। जिस सूत्र से पशु के देह भार को ज्ञात कर लिया है उसी से सदाही भार ज्ञात करते रहते हैं।

पशु की लम्बाई (Length of Animal)—स्कन्ध बिन्दु (Shoulder point) से उपलास्थि (Pinbone) तक की लम्बाई, पशु की लम्बाई होती है।

छाती का घेरा (Heart Girth)—कुब्बड (Hump) के पीछे से लेकर सीने के चारों ओर का माप 'घेरा' कहलाता है।



चित्र—(पशु की लम्बाई चौड़ाई ज्ञात करना)

निम्न सूत्र देह भार ज्ञात करने मे उपयोग आते हैं—

1. पशु का भार (कि० ग्रा०) = $\frac{\text{पशु की लम्बाई}'' \times (\text{घेरा}'')^2}{300 \times 2{\cdot}2}$

2. पशु का भार (कि० ग्रा०) = $\frac{\text{लम्बाई से०मी०} \times \text{छाती का घेरा से०मी}}{\text{क}}$

'क' का मान —क = 60, जब घेरा 163 से. मी. तक हो;
= 57, जब घेरा 164–200 से.मी. तक हं
= 54, जब घेरा 200 से.मी. से अधिक हो

उदाहरण— एक बैल जिसकी लम्बाई 4 फीट 6 इंच तथा छाती का घेर 5 फीट 8 है तो उसका भार मालूम करो ?

हल—छाती का घेरा (इंचो मे) = 5 × 12 + 8 = 68 इंच
लम्बाई (इंचों में) = 4 × 12 + 6 = 54 इंच

बैल का भार (कि. ग्रा.) = $\frac{(\text{लम्बाई इंचों मे}) \times (\text{घेरा इंचो में})^2}{300 \times 2.2}$

$= \frac{54 \times (68)^2}{300 \times 2.2}$

$$= \frac{54 \times 68 \times 68 \times 10}{300 \times 2 \cdot 2}$$

$$= \frac{20808}{55}$$

= 378 कि.ग्रा.

उदाहरण—एक गाय जिसकी लम्बाई 147 से.मी. तथा घेरा 184 से.मी. है, तो इसका भार ज्ञात करो ।

$$\text{गाय का भार (कि.ग्रा.)} = \frac{\text{लम्बाई (से.मी.)} \times \text{घेरा (से.मी.)}}{\text{क}}$$

$$= \frac{147 \times 184}{57}$$ (क = 57 क्योंकि घेरा 184 से.मी. है)]

$$= \frac{9016}{19} = 527.11$$ कि. ग्रा.

गाय का भार = 527 कि. ग्रा.

प्र

1. निम्न समस्या को कैसे सुलझाओगे ?
   बिना मशीन के पशु का भार ज्ञात करना ।
2. पशुओं का भार निर्धारण का क्या महत्व है ? पशुओं में किन-किन विधियों द्वारा भार निर्धारण किया जाता है ? वर्णन कीजिये ।
3. एक पशु जिसकी छाती का घेरा 168 से.मी. और लम्बाई 130 से.मी. है तो उसका भार कि.ग्रा. में ज्ञात करो ?

अध्याय—8

पशुओं की महत्वपूर्ण नस्लें
(Important Breeds of Live Stocks)

(अ) गाय की नस्लें
(Breeds of Cow)

राज्य की पशुओं की कुल संख्या 1987 की जनगणना के अनुसार 4·95 करोड़ है जो देश की पशुओं की जनसंख्या का लगभग 100% है। देश प्रति दो व्यक्ति लगभग 1·5 पशु का औसत है अर्थात् 100 व्यक्तियों के पीछे 76 पशु हैं। इतनी बड़ी संख्या के बावजूद प्रति व्यक्ति दूध का उत्पादन 135 ग्राम है जबकि भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद ने 300 ग्राम दूध की संस्तुति की है।

भारतीय गाय वर्ष मे औसतन 200 लीटर तथा भैंस 550 लीटर दूध देती है जबकि विदेशी गायों से वर्ष मे 3000–4000 लीटर दूध प्राप्त होता है। अत्यंत तीन दशा होने के बावजूद भी देश की अर्थ व्यवस्था मे पशुओं से लगभग 10 अरब रुपये की वार्षिक आय प्राप्त होती है।

भारतीय पशुओं के अध्ययन से यह पता चलता है कि शुष्क क्षेत्रों मे अच्छे पशु पाये जाते हैं। उत्तर प्रदेश, पंजाब, राजस्थान, गुजरात, तमिलनाडु, आंध्र-प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र राज्यो मे अन्य राज्यों से अच्छे पशु मिलते हैं। अधिक वर्षा और ऊंचे पर्वतीय क्षेत्रों आसाम, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा, केरल, हिमाचल प्रदेश, जम्मू तथा कश्मीर मे अपेक्षाकृत घटिया किस्म के पशु मिलते है। देश के अन्य भागो मे मध्यम नस्ल के पशु मिलते हैं।

देश में गायों की 27 नस्लें पाई जाती हैं जिनमे से राजस्थान मे 10 नस्लें पाई जाती है। जिनकी संख्या 1·33 करोड़ है। विभिन्न नस्लो को उनके गुण, आकार एवं उपयोगिता के आधार पर तीन वर्गों में बांटा जा सकता है—

I. दुधारु नस्लें (Milk Breeds)—ये नस्लें अधिक दूध देने वाली है, परन्तु इनके बैल कृषि कार्य में सुस्त होते हैं। पशु बड़े आकार के होते हैं जिनके गलकम्बल (Dewlop) और मुतान (Sheath) ढीले-ढाले और भूलते से होते हैं

(1) भारतीय नस्लें—इस वर्ग की साहीवाल, सिंधी, गिर और देवनी नस्लें हैं।
(2) विदेशी नस्लें-जर्सी, होलस्टीन, गर्नसी फ्रीजियन, रेडडेन।

II. द्वि प्रयोजनी नस्लें (Duallpurpose Breeds)—ये नस्लें अधिक दूध देती हैं और बैल औसत पशुओं की अपेक्षा कृषि-कार्य तथा बोझा ढोने मे अच्छा काम करते हैं। इस वर्ग मे हरियाणा, थारपार, कांकरेज, कृष्णाघाटी नस्लें प्रमुख हैं।

III. भारवाही नस्लें (Draft Breeds)—ये नस्लें बहुत कम दूध देती हैं किन्तु बैल कृषि-कार्य और बोझा ढोने मे उत्तम हैं। नागौरी, कांकरेज, मालवी, अमृत महल नस्लें प्रमुख हैं।

I. दुधारू नस्लें

1. गिर गाय (Gir Cow)-इसे काठियावाड़ी नाम से भी पुकारते हैं।

प्राप्य स्थान इस नस्ल का मूल स्थान काठियावाड़ के गिर जंगल है। शुद्ध रूप मे पशु कम संख्या मे हैं। फिर भी पशु गुजरात के जूनागढ़ क्षेत्र, बम्बई, दक्षिणी राजस्थान में पाये जाते हैं।

देश विभाजन के बाद यह भारत की प्राचीन अच्छी नस्लों में से प्रमुख हैं। निम्न फार्मों पर प्रजनन एवं वंश वृद्धि का कार्य किया जा रहा है—

1. राजकीय पशु प्रजनन एवं डेयरी फार्म, जूनागढ़ (गुजरात)
2. आदर्श दुग्ध शाला, बम्बई (महाराष्ट्र)
3. आश्रम गौशाला, साबरमती, अहमदाबाद
4. राजकीय पशु प्रजनन एवं डेयरी फार्म, जामनगर
5. बाम्बे ह्यूमेनिटेरियन लीग गौशाला, काडीवल्ली, बम्बई

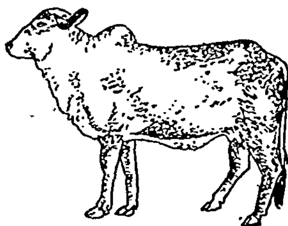
सामान्य विवरण—पशु का शरीर भारी सुव्यवस्थित और गठीला होता है इसका रंग धब्बे युक्त लाल से लेकर चितकबरा होता है जिस पर सफेद, गहरे लाल धब्बे पाये जाते हैं परन्तु सफेद जिस पर गहरे या कत्थई रंग के धब्बे वाला रंग अधिक पसंद किया जाता है।

पशु का सिर विशाल, आगे की ओर उभरा हुआ चौड़ा, कान मुड़ी पत्ती के समान लटके हुये, सींग मोटे, लम्बे जो माथे पर से पीछे की ओर मुड़े हुये होते हैं। आंख की हड्डी उभरी होने से पशु आंख बन्द किये हुये मालूम होता है जो इस पशु की मुख्य विशेषता है।

यह भारी, लम्बा, उचित अनुपात में होता है। कूबड़ अत्यधिक विकसित किन्तु मध्यम आकार का होता है। पूंछ काले गुच्छे वाली लम्बी लटकती हुई होती है।

अयन मध्यम आकार का काफी विस्तृत, मुलायम, सुडौल और स्पष्ट चार भागों में विभक्त होता है। दुग्ध शिरायें अधिक संख्या मे उभरी हुई होती हैं। थन वड़ 10–11 से० मी० लम्बे होते हैं।

गाय का भार 400 कि०ग्रा० तथा नर का 530 कि०ग्रा० तक होता है।



चित्र (गिर गाय)

प्रयोजन—गायें दूध देने में अच्छी हैं। 325 दिन के दुग्ध स्रवण काल में अधिकतम 3182 लीटर दूध दिया है। दूध का अधिकतम दैनिक उत्पादन 26.8 कि० ग्रा० हुआ है। प्रथम ब्यात के समय गाय की 51 मास आयु होती है और 14-16 महीने के अन्तर पर ब्याती है।

इसके बैल भारी और शक्तिशाली भारवाही पशु हैं और वे मन्द गति से कार्य करते हैं।

2. जर्सी गाय (Jersey Cow)

प्राप्ति स्थान—इंगलिश चैनल में फ्रांस तथा इंगलैण्ड के बीच मे स्थित गर्नसी द्वीप के दक्षिण-पूर्व में 22 मील दूर जर्सी द्वीप में मूल रूप से पाई जाती है। जर्सी के बुनियादी जनक गो पशुओं का आयात ब्रिटेनी तथा नार्मण्डी से किया गया। पूर्व मे आयात के प्रतिबन्ध होने से इसके विकास के लिये पर्याप्त समय मिल गया।

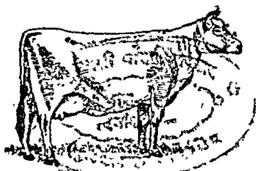
सामान्य लक्षण—गाय चुस्त, विशाल गठे शरीर वाली हल्के बादामी रंग जिस पर सफेद चित्तीदार होती है। पशु का सिर शरीर की तुलना मे काफी छोटा होता है। इसके सींग अन्दर की ओर मुड़े, सुथरे मध्यम लम्बाई के होते है।

पीठ पर कुन्दड़ (Hump) नही होता है जिससे पीठ सीधी दिखती है। पशु का पिछला भाग अगले भाग की अपेक्षा काफी भारी होता है। पुट्ठों, कंधो

तथा सिर का रंग अपेक्षाकृत गहरा होता है। अयन काफी विकसित, काफी उभरी दुग्ध शिराओं वाला होता है। थन समान दूरी पर होते है।

यह अन्य विदेशी नस्लों की अपेक्षा काफी गर्मी सहन कर सकती है जिससे भारतीय जलवायु मे अनुकूल है।

मादा का भार 450 कि.ग्रा. तथा नर का भार 700 कि.ग्रा. होता है। इसकी बछिया अन्य नस्लों की तुलना में शीघ्र परिपक्व हो जाती है और 24 माह में या पूर्व में ही बच्चा दे देती है।



चित्र—जर्सी गाय

प्रयोजन—गाय अधिक दूध देने के लिए लोकप्रिय है जिसमे अन्य नस्लों की अपेक्षा सर्वाधिक वसा लगभग 5.3% मिलती है। अधिक दुधारू होने से दिन में दो-तीन बार दुही जाती है। गाय एक ब्यांत में 4500 लीटर दूध देती है।

दुधारू नस्ल होने से इनके नर पशु को विकासशील देशों की गायों की नस्ल सुधार के लिए निर्यात किए जाते हैं। साथ ही हिमी शीतित शुक्र (Frozen Semen) अन्य देशों में भेजा जाता है जिसका उपयोग देशी नस्लों के वंश सुधार में किया जा रहा है।

3. रेड डेन (Red Dane)—

प्राप्य स्थान—यह शुद्ध विदेशी नस्ल है जो दूध उत्पादन के लिए प्रसिद्ध है। यह नस्ल मूलतः डेनमार्क में पाई जाती है जहां से नस्ल-सुधार कार्यक्रम के अन्तर्गत अन्य देशों में निर्यात की गई है।

राज्य में लालसिन्धी तथा गिर नस्ल के क्रास से प्राप्त संकर पशु पाये जाते हैं जो अजमेर क्षेत्र के लिए उपयुक्त है।

विशेषतायें—जैसा नाम से प्रकट होता है कि इसके पशुओं का रंग लाल होता है। कुछ पशु गहरे भूरे रंग से लेकर गहरे कत्थई रंग के होते है। इसका शरीर जर्सी की अपेक्षा अधिक भारी-भरकम डील वाले होते हैं। चेहरा अण्डाकार होता है। पशु सींग रहित (Poled Animal) होते हैं। अयन सामान्य से बड़ा, काफी फैला हुआ होता है। पूंछ काले गुच्छे वाली टखनों के नीचे तक होती है।

भारी भरकम शरीर होने के कारण अन्य गायों में आसानी से पहिचानी जा सकती है। इसके शरीर का भार 600-650 किग्रा तथा नर का भार 1000 किग्रा तक होता है।

उपयोगिता – गाय अपने ब्यांत में 6000-7000 लिटर दूध दे देती है। प्रतिदिन का उत्पादन 20–25 लिटर होता है जिसमें 4.2–4.5% वसा होती है।

II. द्वि प्रयोजनी नस्लें

4. हरियाना गाय (Hariyana Cow)—

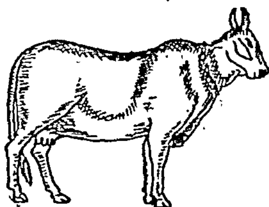
प्राप्य स्थान—इस नस्ल का मूल आवास क्षेत्र हरियाणा से रोहतक, हिसार, गुडगांव जिले तथा करनाल का कुछ भाग तथा केन्द्रशासित दिल्ली है। इस जाति के पशु दिल्ली के समीप उत्तर प्रदेश का पश्चिमी भाग, जींद, लोहारु (हरियाणा), नाभा और पटियाला (पंजाब) और जयपुर, जोधपुर, अलवर, भरतपुर (राजस्थान) शुद्ध रूप में पाये जाते हैं।

इस नस्ल पर प्रजनन एवं वंशवृद्धि कार्य निम्न फार्म पर किया जा रहा है–

1. राजकीय पशुपालन फार्म, हिसार
2. डेयरी डिमान्स्ट्रेशन फार्म, मथुरा
3. राजकीय पशुपालन एवं प्रजनन केन्द्र, हरिन घाट (प. बंगाल)
4. राजकीय पशुपालन एवं कृषि फार्म, माधुरीकुण्ड (मथुरा)
5. ,, ,, ,, बाबूगढ़ (गाजियाबाद)
6. सतगुरू प्रतापसिंह फार्म, भैणी, सिरसा (हिसार)

सामान्य विवरण—पशु सुडौल, मध्यम आकार के होते हैं। इनका रंग सामान्यतया सफेद या भूरे रंग का होता है। नर के सिर, गर्दन, धड़ तथा धड़ गहरे भूरे रंग के होते हैं। पशु का चेहरा लम्बा, कम चौड़ा, ललाट चपटा होता है और स्वाद (Poll) के बीच की उभरी हड्डी नस्ल की शुद्धता का लक्षण है। सिर हल्का, सुडौल सुगठित तथा उठा हुआ इसकी छवि में शालीनता ला देता है।

सींग छोटे, मोटे ऊपर और अन्दर की ओर मुड़े हुये होते हैं। गर्दन लम्बी पतली और सुन्दर होती है। गलकम्बल छोटा, पतला और मांसल सलवटों रहित होता है।



चित्र (हरियाणा गाय)

अयन काफी बड़ा आगे की ओर अच्छी तरह तरह फैला होता है। थन मध्यम आकार के सुडौल होते हैं। अगले थन पिछले थनों की अपेक्षा लम्बे होते हैं।

गाय का भार 265 कि० ग्रा० तथा नर का 350 कि० ग्रा० होता है।

प्रयोजन—यह उत्तर भारत की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण द्विकाजी नस्ल है। गायें अधिक दूध देती हैं। 300 दिन के ब्यात म 1800 लीटर दूध दिया है। गायें पहिली बार प्रायः 40–58 महीने की आयु मे और इसके बाद 15–20 माह के अन्तर मे ब्याती हैं।

यह नस्ल अच्छे बैलो के लिये प्रसिद्ध है। बैल कार्य की दृष्टि से विशेष तेजी से हल चलाने तथा परिवहन के लिये अच्छे हैं। पूरे देश में इस नस्ल की विशेष मांग है।

5. थारपारकर गाय (Thar Parkar Cow)—

इसे 'थारी' नाम से भी पुकारते हैं।

प्राप्य स्थान—यह रेगिस्तानी क्षेत्र की मुख्य नस्ल है। इसका मूल आवास क्षेत्र दक्षिणी पूर्वी सिंध (पाकिस्तान) का अनुपजाऊ, अर्ध रेगिस्तानी भू-भाग है। यह विशुद्ध रूप में अमरकोट, नाऊकोट, घोरो नारो और छोर नामक स्थानों में मिलती है। पशु दक्षिण में कच्छ के रन (गुजरात) से पूर्व और उत्तर-पूर्व मे जैसलमेर, जोधपुर (राजस्थान), तथा बनासकांठा जिले में मिलते हैं।

इस नस्ल पर प्रजनन एवं अनुसंधान कार्य निम्न फार्मों पर किया जा रहा है—

1. राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)
2. राजकीय पशु चिकित्सा महा विद्यालय, पटना (बिहार)

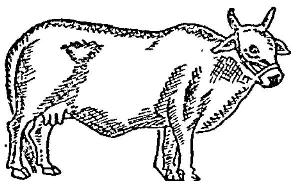
3. राजकीय पशुपालन फार्म कानपुर (उ० प्र०)
4 राजकीय पशुपालन फार्म भरारी (झांसी)
5. राजकीय डेयरी फार्म, अधरतल (जबलपुर)

सामान्य विवरण—पशु भारी, मध्यम आकार के हृष्ट-पुष्ट, सुडौल होते हैं। पशुओं का रंग भूरा या सफेद होता है। कुछ पशुओं मे रीढ के साथ हल्की-भूरी पट्टी होती है। चेहरे तथा सिर शरीर की अपेक्षा अधिक गहरे रंग का होता है।

पशु का मुंह लम्बा तथा माथा कुछ उभरा होता है। सींग मोटे मध्यम आकार के होते हैं। कान कुछ लम्बे, चौड़े और लटके हुये होते हैं। कान के अन्दर पीले रंग की त्वचा को अच्छा माना जाता है।

गलकम्बल ढीला-लचीला भारी भरकम नहीं होता है। पूंछ लम्बी काले गुच्छे वाली होती है। अयन बड़ा और विकसित होता है। थन 8-10 से० मी० लम्बे, समान मोटाई के, बराबर दूरियों पर स्थित होते हैं।

गाय का भार 380 कि० ग्रा० तथा नर का 540 कि० ग्रा० होता है।



चित्र (थारपारकर गाय)

प्रयोजन—रेगिस्तानी भाग की नस्ल होने से पशु प्रतिकूल दशा में अच्छी उत्पादन देती है। थोड़े से चारे पर रखा जा सकता है। 305 दिन के ब्यांत में अधिकतम 4390 लीटर दूध प्राप्त हुआ है। औसतन 1977 लीटर दूध देती हैं। गाय 43-49 माह की आयु में पहली बार और इसके बाद 15-16 माह के अन्तर पर ब्याती है। पशुओं को कुंओं से पानी निकालने में भी उपयोग किया जाता है।

बैल मध्यम देह-भार वाले और हल व गाडी चलाने मे अच्छे हैं।

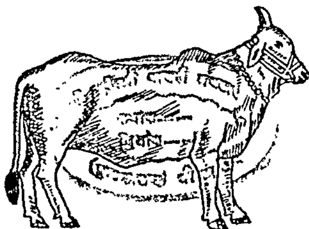
III. भारवाही नस्लें

6. मेवाती गाय (Mewati Cow)—

इसे 'कोसी' नाम से भी पुकारते हैं।

प्राप्त स्थान--उत्तर प्रदेश के मथुरा जिले का कोसी स्थान इसका मूल स्थान है। यह राजस्थान के अलवर, भरतपुर तथा समीपवर्ती गुड़गांव जिले के मेवात क्षेत्र में मिलती हैं।

इस नस्ल पर प्रजनन कार्य राजकीय पशु प्रजनन फार्म, अलवर मे किया जा रहा है।



चित्र (मेवाती गाय)

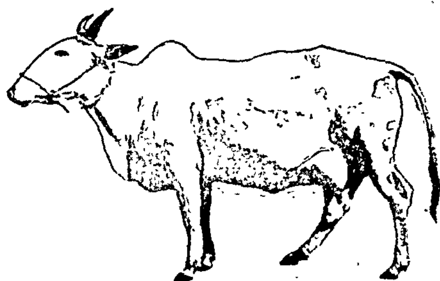
सामान्य विवरण—यह आकार में हरियाणा से कुछ छोटे होते हैं। इस नस्ल के पशुओं मे गिर का मिश्रण मिलता है। पशुओं का रंग सफेद होता है परन्तु सिर, गला, कंधे गहरे रंग के होते हैं। पशु का माथा उभरा हुआ, सींग मध्यम आकार के पीछे की ओर झुके होते हैं।

पूंछ लम्बी नीचे काली मध्यम आकार की होती है। गाय का भार 360 किग्रा. तथा नर का 500 किग्रा. होता है।

प्रयोजन—गाय ने 280 दिन के ब्यांत में 1500 लिटर दूध दिया है। बैल हरियाणा से कुछ बड़े होते हैं जो शक्तिशाली, भारी हल तथा गाड़ी खींचने के लिये अच्छे होते हैं।

7. राठी गाय (Rathi Cow)--

प्राप्य स्थान—इस नस्ल के पशु पुराने अलवर राज्य के उत्तरी-पश्चिमी भाग तथा राजपूताने के दक्षिण क्षेत्र मे पाये जाते हैं। इन क्षेत्रों के अतिरिक्त यह नस्ल हरियाणा, नागौर तथा मेवाती क्षेत्र में भी मिलती है।



चित्र (राठी गाय)

सामान्य विवरण—पशु हरियाणा से मिलते हैं परन्तु आकार में अपेक्षाकृत छोटे होते हैं। इनके पुट्ठे मजबूत और पूँछ कुछ छोटी होती है।

गाय का भार 225 कि.ग्रा. तथा नर का 315 कि.ग्रा. होता है।

प्रयोजन—गायें प्रतिदिन औसतन 4.5 लिटर दूध देती है। बैल शक्तिशाली और अच्छे काम करने वाले होते हैं परन्तु ये जुताई करने तथा बोझा ढोने आदि भारी कामों के लिये अनुपयुक्त होते हैं।

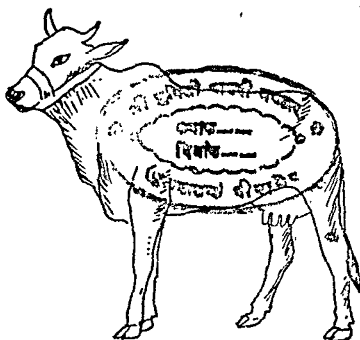
8. नागौरी गाय (*Nagauri Cow*)—

प्राप्य स्थान—इस नस्ल का मूल स्थान पूर्व जोधपुर रियासत का उत्तरी-पूर्वी भाग है। शुद्ध रूप में पशु नागौर, परवतसर, पुष्कर, हिसार तथा हांसी के पशु मेले में मिलते है।

नस्ल पर वंश सुधार कार्य राजकीय पशु प्रजनन फार्म, नागौर में किया जा रहा है।

सामान्य विवरण—पशु भारी आकार के काफी डीलडौल वाले सुगठित शरीर के होते है। इनका रंग सफेद-भूरा होता है। मजबूत गर्दन, सामान्य चौड़ी छाती, पीठ सीधी, चौडा मस्तक तथा लम्बा चेहरा होता है। सींग मध्यम आकार के जो फैलकर घेरा बना लेते हैं। पूँछ काले रंग की गुच्छे वाली टखने तक होती है।

गाय का भार 400 किग्रा. तथा नर का 540 किग्रा. होता है।



चित्र (नागौरी गाय)

प्रयोजन—भारत की प्रमुख भारवाही नस्लें हैं जो पंजाब, हरियाणा, उ.प्र., मध्य प्रदेश तथा राजस्थान राज्य मे प्रसिद्ध है। बैलों के तेज चलने मे कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है। कृषि-कार्यों, सवारी गाड़ी तथा रथ मे काम मे लाये जाते हैं। गायें औसतन 3·5 लिटर दूध देती हैं।

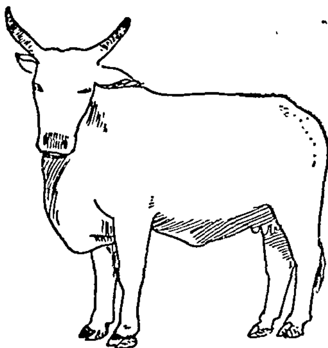
9. मालवी गाय (Malvi Cow)—

प्राप्य स्थान—इस नस्ल का मूल स्थान मध्य प्रदेश के मालवा का शुष्क प्रदेश है। पशु हैदराबाद, मध्य प्रदेश के कुछ भाग, दक्षिणी-पूर्वी राजस्थान के कोटा, बूँदी, झालावाड़ तथा बाँसवाड़ा जिलों मे काफी संख्या मे मिलते है।

इस नस्ल पर वंश सुधार कार्यक्रम निम्न फर्मों पर किया जा रहा है—

1. राजकीय पशु प्रजनन फार्म, सिमरोल, इन्दौर
2. राजकीय पशु प्रजनन फार्म, देवल सागर

सामान्य विवरण—पशु का शरीर ठिगना गठीला तथा ठोस होता है। इनका रंग प्रायः भूरा होता है पर आयु की वृद्धि के साथ नर गहरे रंग के हो जाते हैं गर्दन व कुकुद पर काले धब्बे मिलते हैं।



चित्र (मालवी गाय)

कमर सीधी, छोटा और चौड़ा सिर, माथा धंसा हुआ होता है। छोटे नुकीले कान, सींग मजबूत, नुकीले जो माथे के बाहरी भाग से निकल कर आगे की ओर बढ़ जाते हैं। टखने तक लम्बी काली गुच्छे वाली पूंछ होती है।

गाय का भार 340 कि.ग्रा तथा नर का 400 कि.ग्रा. होता है।

प्रयोजन—पशु सरल स्वभाव के सीधे होते हैं। अल्पाहारी और विभिन्न परिस्थितियों को सहन कर सकते हैं। गाय कम दूध देती है। बैल सड़कों पर हल्का बोझा ढोने तथा खेतों में हल चलाने के लिये लोकप्रिय है।

(ब) भैंस की नस्लें
(Breeds of Buffaloes)

देश के अधिकांश भागों में दूध का स्रोत भैंस हैं क्योंकि गाय की अपेक्षा भैंस का दूध उत्पादन अधिक है तथा दूध में अपेक्षाकृत वसा भी अधिक होती है। इसी से गाँवों में गायों की अपेक्षा भैंसों को पालना अधिक पसंद करते हैं। गाय की अपेक्षा भैंस प्रतिकूल दशाओं को सहन कर सकती है। इसके नर खेती और बोझा ढोने के अधिक काम आते हैं।

देश में भैंसों की तीन नस्लें पाई जाती हैं जिनमें राज्य में मुर्रा, जाफरावादी तथा नागपुरी विशेष प्रमुख हैं। राज्य में इनकी संख्या लगभग 60·34 लाख है।

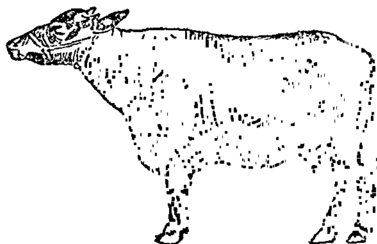
1. मुर्रा भैंस (Murrah)—

इसे दिल्ली, खुण्डी, कुन्नी आदि नामों से पुकारते है।

प्राप्ति स्थान--इस नस्ल का मूल आवास केन्द्रशासित दिल्ली तथा हरियाणा राज्य है। हरियाणा के रोहतक, करनाल, हिसार, गुड़गांव जिलों, दिल्ली राज्य, पश्चिमी उ. प्र., पंजाब के जिन्द, नाभा, पटियाला, राजस्थान के गंगानगर, अलवर जिलों में मुख्य रूप में पाई जाती हैं।

इस नस्ल के वंश प्रजनन एवं सुधार कार्य निम्न फार्मों पर किया जा रहा है—

1. भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जत नगर, बरेली (उ.प्र.)
2. गो.व. पंत विश्वविद्यालय डेयरी फार्म, पंतनगर, नैनीताल
3. पशुपालन तथा कृषि फार्म, माधुरी कुण्ड (मथुरा)
4. पशुपालन तथा कृषि फार्म, बाबूगढ़, मेरठ
5. टिस्को फार्म, जमशेदपुर
6. आदर्श दुग्धशाला, बम्बई



चित्र (मुर्रा भैंस)

सामान्य विवरण—भैंस का आकार अत्यधिक स्थूल शरीर आगे की ओर हल्का, पतला, पीछे की ओर भारी वेज रूप (Wedge Shaped) होता है, कुकुद (Hump) तथा झालर नहीं होती है। इसका रंग काला स्याह रंग होता है लेकिन मुंह, पैर और पूंछ पर सुनहरे रंग के बाल होते हैं।

मादा पशुओं में सिर छोटा, सुगठित सुडौल तथा माथा सुविस्तृत तथा उभरा होता है। कान छोटे, पतले और लटके होते हैं। सींग छोटे, पीछे और ऊपर की ओर मुड़े, अन्दर की ओर सर्पिल रूप में घुमावदार तथा कुछ भाग मे चपटे होते है। पूँछ लम्बी, पतली, सफेद गुच्छे वाली टखने तक लटकती हुई होती है।

अयन पूर्ण विकसित, काफी फैला हुआ, विकसित दुग्ध शिराओ युक्त होता है। थन लम्बे दूरी पर स्थित होते हैं। पिछले थन अगले थनो की अपेक्षा लम्बे होते है। मादा का भार 430 कि.ग्रा. तथा नर का भार 550 कि.ग्रा. होता है।

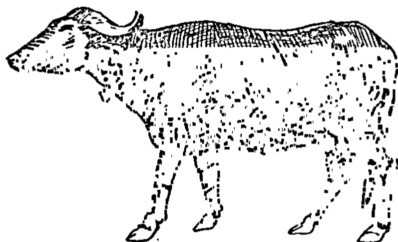
प्रयोजन—भैंस भारत मे दूध, मक्खन तथा वसा के सर्वाधिक उत्पादकों मे मुख्य है। इसी से उत्तर-पश्चिम मे प्रायः सभी बड़े शहरो तथा ग्रामीण क्षेत्रो मे पाली जाती है। एक ब्यांत मे 4530 लिटर तक दूध दिया है। पशु का दैनिक अधिकतम दूध उत्पादन 25·8 लिटर तक पाया गया है। दध मे औसत वसा 7 प्रतिशत तक है।

नर पशु भारी वजन खींचने के लिये अच्छे हैं।

2. भदावरी भैंस (Bhadawari Buffaloes)—

प्राप्ति स्थान—इस नस्ल के पशु आगरा (उ.प्र.) जनपद की बाह् तहसील की भदावर स्टेट मे शुद्ध रूप में मिलते है। पशु जमुना एव चम्बल नदियो की घाटी इटावा-ग्वालियर के कुछ क्षेत्र मे बड़ी संख्या मे पाये जाते हैं।

विशेषतायें—पशु मध्यम आकार के तांबे के रग के होते है। शरीर पर कम बाल होते है। शरीर के बाल जड़ो मे काले तथा शेप तांबे जैसे रग के होते है। गर्दन



चित्र (भदावरी भैंस)

कुछ लम्बी एवं पतली होती है। सिर छोटे आकार का होता है। सींग लम्बे दरांतीनुमा पीछे की ओर, फिर ऊपर की ओर मुड़ जाते है जिनके सिरे नुकीले होते हैं।

पशु का चेहरा चौड़ा परन्तु मध्य में धंसा होता है। आँखें सुस्पष्ट, चौकसी तथा चमकीली होती है। कान मध्यम आकार के होते है। पिछली टाँगें अगली टाँगों की अपेक्षा भारी और ऊँची होती है।

अयन विकसित तथा अधिक दुग्ध शिराओं से युक्त होता है जिस पर मध्यम आकार के थन होते हैं। पशु की पूँछ काले-सफेद गुच्छे वाली घुटनो (Hocks) तक लम्बी होती है।

मादा पशु का भार 360 किग्रा. तथा नर का भार 460 किग्रा. होता है।

प्रयोजन—पशु से अपेक्षाकृत दूध कम मात्रा मे (3·0–5·0 लिटर) मिलता है परन्तु वसा की मात्रा 12–14% तक होती है। इसका कारण पशु को घी बनाने के उद्देश्य मे पाला जाता है। नर पशु कृषि कार्यो के लिए अधिक उपयोगी है क्योंकि इनमे अन्य भैंसो से गर्मी सहने की शक्ति अपेक्षाकृत अधिक होती है।

3. सूरती भैंस (Surti Buffaloes)—

प्राप्ति स्थान—इस पशु का मूल स्थान गुजरात प्रदेश का काचरोत्तर, कैरा, एवं बड़ौदा का निकटवर्ती क्षेत्र है। पशु साबरमती तथा माही नदियों के मध्य के क्षेत्र मे प्रचुरता से मिलते हैं। एक विशेष जाति वर्ग 'वधारी' के लोग इसे प्रजनन के लिए पालते हैं। नस्ल सुधार कार्य कृषि महाविद्यालय, किरकी मे किया जा रहा है।

विशेषतायें—पशु मध्यम आकार के काले या भूरे रंग के होते है। मादा का धड़ सामने कम चौड़ा जबकि पीछे की ओर अधिक चौड़ा होता है। पशु की टाँगें अन्य पशुओ से कम छोटी होती हैं। आँखें गोल उभरी होती है। पशु का सिर लम्बा, चौड़ा, एवं सीगों के बीच गोलाकार होता है। कान छोटे जिनके अन्दर की त्वचा लाल होती है। कान के किनारों पर प्रायः सफेद बालों की धारी होती है। सीग आकार मे दरांतीनुमा होते है।

सींग पहले नीचे एवं पीछे की ओर बाद मे ऊपर को मुड़े होते हैं।

पशु के कुब्बड़ (Hump) नही होता है। अयन मध्यम आकार का विकसित एवं लचीला होता है। दुग्ध शिरायें स्पष्ट उभरी हुई होती है। थन मध्यम आकार के समान दूरी पर स्थित होते हैं।

मादा का भार 475 कि.ग्रा. तथा नर का भार 500 कि.ग्रा. होता है।

प्रयोजन—अच्छी देखरेख करने पर पशु 300 दिन के ब्यात मे 2270-2500 लिटर तक दूध देते हैं। अधिकतम दूध का उत्पादन 421 दिन के ब्यात मे 3360 लिटर तक रिकार्ड किया गया है। पशु का सूखा काल (Dry Period) 4 से 6 माह तक होता है। दूध में वसा की मात्रा 7·5% तक होती है। दुधारू

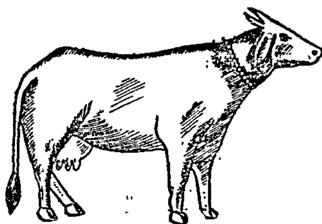
नस्ल होने से बम्बई नगर मे अधिकता से भेजे जाते हैं। पशु प्रथम बार 2·25 व
से ~·5 वर्ष मे ब्याते है।

4. नीली भैंस (Nili Buffaloes)—

प्राप्ति स्थान—इस नस्ल का मूल स्थान माण्टगुमरी, मुल्तान (पाकिस्तान)
एवं फिरोजपुर (पजाब) है। पशु रावी एवं सतलज नदियो के क्षेत्र में सर्वाधिक
मिलते हैं। सतलज नदी का पानी नीला होने से इसे 'नीली' नाम से पुकारते हैं।

पशु पंजाब, उ. प्र. के पश्चिमी भाग तथा राज्य के गंगानगर जिले मे पाले
जाते हैं।

विशेषतायें – पशु भारी शरीर के काले रंग वाले होते हैं। माथे के बीच,
टाँगों के निचले हिस्सो और पूँछ के गुच्छे का रंग सफेद होता है। चेहरा लम्बा,
ऊपर से एक तिहाई उभरा हुआ परन्तु आँखों की जगह धँसा होता है। गर्दन लम्बी
एवं पतली होती है।



चित्र (नीली भैंस)

टाँगें सीधी, छोटी एवं विकसित हड्डियों वाली होती है। मादा का पिछला
धड़ भारी, चौड़ा तथा टंकाकार (Wedge Shaped) होता है। आँखें स्पष्ट चम-
कीली होती है। कान मध्यम लम्बाई के नुकीले सिरे वाले होते हैं। सींग छोटे नीचे से
मोटे और घुमावदार होते हैं। अधिक घुमाव के सींग पशु की शुद्धता का प्रतीक है।
पशु की पूँछ जमीन को छूती हुई लम्बी सफेद बालों के गुच्छेदार होती है।

पशु का अयन पूर्ण विकसित, काफी दूरी तक फैला, स्पष्ट, लम्बी, टेढ़ी-
मेढ़ी दुग्ध शिरायें वाली होती है। थन समान दूरी पर स्थित होते हैं।

मादा का भार 520 किग्रा. तथा नर का भार 620 किग्रा. होता है।

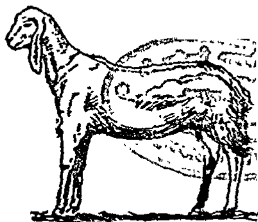
प्रयोजन—यह भैंस दूध वाली नस्लों में मुख्य है जिससे शहरी क्षेत्रों में प्रचुरता से पाली जाती है। भैंस 250 दिन के ब्यांत में लगभग 1700 लिटर दूध देती है।

(स) बकरी की नस्लें
(Breeds of Goat)

ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में बकरियों का प्रमुख स्थान है। ये कम व्यय तथा थोड़ी सी देख-रेख में पाली जा सकती हैं। एक गाय के व्यय पर 7 बकरियां पाली जा सकती हैं जिनसे दूध तथा बच्चों का उत्पादन भी प्राप्त होता है। इसी से बकरियों को 'निर्धनों की कामधेनु' कहते हैं। राज्य में इनकी संख्या 1·54 करोड़ हैं।

1. जमनापारी बकरी (Jamnapari Goat)

प्राप्ति स्थान—इस नस्ल की बकरियां शुद्ध रूप में यमुना और चम्बल नदियों के मध्य स्थित इटावा जिले के सहसो और चकरनगर क्षेत्र में बहुतायत से मिलती है।



चित्र (जमुनापारी बकरी)

इस नस्ल पर वंश सुधार कार्य नैनी एग्री० इन्स्टीट्यूट, इलाहाबाद में किया जा रहा है।

सामान्य विवरण—सभी बकरियों में यह बड़े आकार की हैं। इसका रंग सफेद जिस पर काले भूरे धब्बे और सिर काला और सफेद शरीर अथवा सिर और कान भूरे पर शरीर सफेद होता है। पिछली टांगों पर घने तथा लम्बे बाल होते हैं। सींग छोटे-छोटे तथा चपटे होते हैं। कान 25–30 से. मी. लम्बे पीछे की ओर लटके होते हैं।

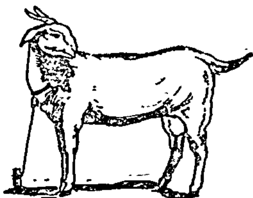
अयन पूर्ण विकसित, थन काफी लम्बे और मोटे होते हैं। मादा बकरी का पिछला भाग तथा नर का अगला भाग भारी होता है। मादा का भार 50 कि. ग्रा. तथा नर का भार 75 कि. ग्रा. होता है।

प्रयोजन—यह दो-काजी नस्ल होने से दूध तथा मांस दोनों के लिये अच्छी है जिससे ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों के लिये महत्वपूर्ण आय का स्रोत है। बकरी चरना पसन्द करती है। एक ब्यात में लगभग 550 लिटर तथा प्रतिदिन 4–5 लिटर दूध देती है।

2. बरबरी बकरी (Barbari Goat)—

प्राप्ति स्थान—इस नस्ल की पैदाइश अफ्रीकन नस्ल 'बरबेज' मानते हैं ये बड़ी संख्या में दिल्ली राज्य, हरियाणा के गुडगाव व करनाल जिले तथा उ. प्र. के एटा, आगरा, मथुरा आदि जिलों में मिलते हैं।

इस नस्ल पर वंश सुधार कार्य आर. बी. एम. कालेज के फार्म, बिचपुरी (आगरा) में किया जा रहा है।



चित्र (बरबरी बकरी)

सामान्य विवरण—बकरियां नाटे छोटे कद की होती हैं, शरीर की अपेक्षा पैर छोटे होते है। इनका कोई विशेष रंग नहीं होता है परन्तु अधिकतर सफेद, भूरी या सफेद रंग मे लाल व काले धब्बे वाली होती हैं। इनके कान छोटे छेददार तथा सींग छोटे, सीधे होते हैं।

बकरियों का पिछला भाग अपेक्षाकृत भारी होता है। अयन पूर्ण विकसित तथा थन लम्बे होते हैं। मादा का भार 32 कि. ग्रा. तथा नर का भार 40 कि. ग्रा. होता है।

प्रयोजन—इसे घर पर आसानी से रखे जाने के कारण शहरी क्षेत्र के लिये उपयुक्त है। इनका नाटा कद होने के कारण ये मांस की अपेक्षा दूध के लिये पाली जाती हैं। 227 दिन के ब्यांत में 450 लिटर दूध तथा प्रतिदिन 2.5 लिटर दूध देती हैं। वर्ष में दो बार ब्याती हैं तथा प्रत्येक बार 2–3 बच्चे देती है।

3. टोकनवर्ग बकरी (Tokenburg Goat)—

प्राप्ति स्थान—यह स्विटजरलैण्ड की पहाड़ी क्षेत्र मे मूल रूप से पाई जाती है। दुधारू नस्ल होने से इसे वंश सुधार हेतु विदेशो में निर्यात किया गया है। इस पर प्रारम्भ मे बकरी अनुसंधान फार्म, रामसर (अजमेर) मे कार्य किया गया परन्तु क्षेत्र में सफल न होने पर अलवर फार्म पर कार्य किया जा रहा है।

विशेषतायें—इसकी शुद्ध नस्ल का रंग सफेद होता है परन्तु क्रास कराने के बाद बकरी के शरीर का रंग भूरा-सफेद या हल्का लाल-भूरा होता है। सींग बड़े-बड़े ऐंठे हुए तथा नीचे-पीछे की ओर मुड़े होते हैं। मादा का अयन तथा थन पूर्ण विकसित होते हैं। नर के दाढ़ी होती है।

प्रयोजन—बकरी को अच्छे दुग्ध उत्पादन के लिए पाला जाता है जो ग्राम बकरियों की अपेक्षा डेढ़ गुना, औसतन 4–5 लिटर दूध प्रतिदिन देती है।

(अ) भेड़ की नस्लें
(Breeds of Sheep)

भेड़ पालन भारत का प्राचीन व्यवसाय है। ग्रामीण क्षेत्रो मे भेड़ पालक (Shepherd) भेड़ों को पालते हैं। ये वर्षारंभ होते ही रेगिस्तानी और पर्वतीय भागों पर तथा वर्षा समाप्ति पर मैदानी भागों में आ जाते है।

देश मे भेडों की 27 नस्लें पाई जाती हैं जिनमें राज्य में 8 नस्लें पाली जाती है जिनकी संख्या 1 33 करोड़ है। प्रति भेड़ ऊन उत्पादन काफी होने से इनके विदेशी नस्लों में प्रजनन तथा वंश सुधार कार्य अविका नगर (जयपुर), मालपुरा (टोंक) तथा जिला स्तरो पर केन्द्रों पर किया जा रहा है।

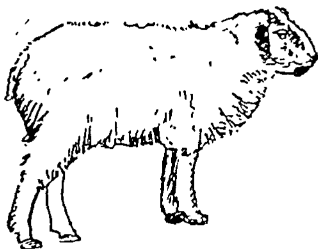
1. चोकला (Chokla)—

इसे 'राजस्थान की मेरिनो' नाम से पुकारते हैं।

प्राप्ति स्थान—यह भेड़ राज्य के चूरू, झुन्झुनूं, सीकर जिले में पाई जाती है। इसे बीकानेर, जोधपुर तथा नागौर जिले के सीमांत भागों में भी पाला जाता है।

सामान्य विवरण—इसका आकार हल्का होता है। इनका रंग भूरा, चेहरे पर काले या भूरे धब्बे मिलते हैं। कान व पूंछ मध्यम आकार के होते हैं।

मादा का भार 22–32 कि० ग्रा० तथा नर का भार 30–40 कि० ग्रा० होता है।

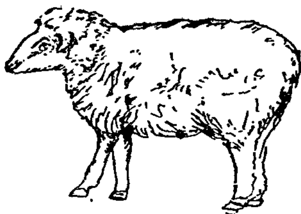


चित्र (चोकला भेड़)

प्रयोजन—वर्ष में दो बार ऊन काटी जाती है। इससे प्रति भेड़ 1·5 2·5 कि० ग्रा० ऊन प्राप्त होती है। ऊन महीन, मध्यम श्रेणी की होती है। ज प्रायः गलीचे, कम्बल, लोई तथा जरसी बनाने के काम आती है। वर्षा के बा काटी जाने वाली ऊन पीली होती है।

2. मगरा (Magra)—

प्राप्ति स्थान—यह भेड़ बीकानेर जिले के कोलायत क्षेत्र में मिलती है, इसके अलावा नागौर, जैसलमेर क्षेत्र से लगे बीकानेर के मगरा क्षेत्र में पाली जाती है।



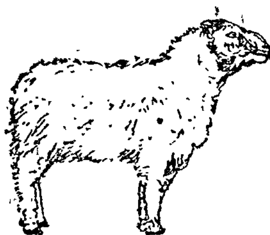
चित्र (मगरा भेड़)

सामान्य विवरण—शरीर सुगठित तथा मजबूत होता है। इनका रंग सफेद होता है। भेड़ की आंख के चारों ओर हल्के भूरे रंग की चकरी होती है। कान मध्यम लम्बाई के मुड़े हुये होते हैं। मादा का भार 25 से 25 कि० ग्रा० तथा नर का भार 35 से 37 कि० ग्रा० होता है।

प्रयोजन—मध्यम व मोटी किस्म की 1.5 से 2.5 कि० ग्रा० ऊन प्राप्त होती है जो वर्ष में तीन बार काटी जाती है। ऊन गलीचे निर्माण में विश्वविख्यात है जिससे इसकी विदेशों में विशेषकर लिवरपूल बाजार में अधिक माग है। वर्षा के बाद काटी ऊन पीली होती है, ऊन को बीकानेरी ऊन भी कहते हैं।

3. पुग्गल (Puggal)—

प्राप्ति स्थान—यह नस्ल बीकानेर के पश्चिमी भाग के पुग्गल क्षेत्र (पश्चिमी पाकिस्तान सीमा से लगा भाग) एवं जैसलमेर के उत्तरी भाग मे पाई जाती हैं। यह रेगिस्तानी क्षेत्र की नस्ल है तथा मगरा और जैसलमेरी के वर्णसंकरण से बनी है।



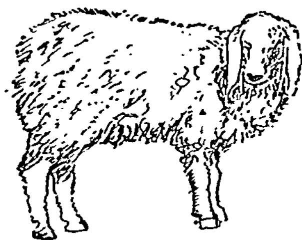
चित्र (पुग्गल भेड़)

सामान्य विवरण—शरीर मध्यम आकार का सुगठित होता है। इसका रंग सफेद या भूरा, चेहरा काला परन्तु नाक की ओर और आंखों पर भूरी धारियां होती हैं। निचले जबड़े का रंग भूरा या सफेद होता है। कान छोटे व दुम मध्यम लम्बाई की होती हैं। मादा का भार 25 से 30 कि० ग्रा० तथा नर का भार 30 से 34 कि० ग्रा० होता है।

प्रयोजन—रोग प्रतिरोधी शक्ति अधिक होने से भेड़ें कम मरती हैं। प्रति वर्ष 1.5 से 2.5 कि० ग्रा० ऊन प्राप्त होती है। जो वर्ष में 3 बार काटी जाती है।

4. नाली (Nali)

प्राप्ति स्थान—इस नस्ल की भेड़ें गंगानगर, चुरू व झुंझुनूं जिले के उत्तरी-पूर्वी भाग जो हरियाणा तक फैला है, में पाई जाती हैं। इस क्षेत्र का धरातल अपेक्षाकृत नीचा होने से 'नाली' कहलाता है। नस्ल रेगिस्तानी होने के बावजूद नहरी क्षेत्र में बहुलता से पाली जाती है।



चित्र (नाली भेड़)

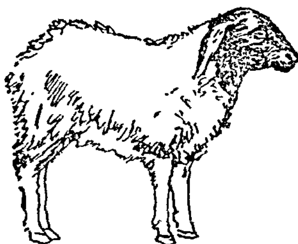
सामान्य विवरण—इसका शरीर स्वस्थ एवं मजबूत, कद मध्यम होता है। चेहरा हल्के भूरे रंग का तथा शरीर ऊन से ढका होता है। कान लम्बे पत्तीनुमा जिन पर विशेष चिकने बाल होते हैं। दुम छोटी होती है। मादा का भार 27 से 32 किग्रा. तथा नर का भार 30 से 36 किग्रा. होता है।

प्रयोजन—भेड़ से 1·0 से 2·5 कि ग्रा. मध्यम किस्म की ऊन मिलती है जो दो बार काटी जाती है। दोनों कतरनों की ऊन पीली होने से 'केनेरी' रंग की जानी जाती है तथा चिकनाहट होने से मूल्य भी कम मिलता है। ऊन 'टॉप्स' बनाने के उपयोग में आती है।

5. जैसलमेरी (Jaisalmeri)—

प्राप्ति स्थान—मूल प्राप्ति स्थान जैसलमेर होने से 'जैसलमेरी' नाम से जानी जाती है। यह जैसलमेर के अलावा जोधपुर, बाड़मेर जिले के सीमावर्ती क्षेत्रों में भी पाई जाती है। यह पूर्णतः रेगिस्तानी क्षेत्रों मे पाई जाती है।

सामान्य विवरण—यह नस्ल सुदृढ, हृष्ट-पुष्ट शरीर की पूरे आकार की होती है। रंग सफेद या भूरा तथा चेहरे का रंग काला या गहरा भूरा होता है। कान काले रंग के लम्बे और बड़े होते हैं। पशु की नाक रोमन प्रकृति की तथा



चित्र (जैसलमेरी भेड़)

दुम भी लम्बी होती है। मादा का भार 30 से 36 किग्रा. तथा नर का भार 32 से 45 किग्रा. होता है।

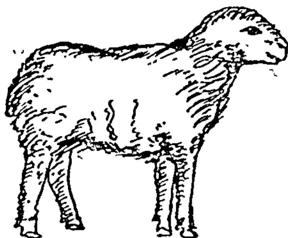
प्रयोजन—रेगिस्तानी नस्ल होने से कम चारे एवं जल मे जीवन-यापन कर लेती हैं। शरीर आकार बड़ा होने से इनसे मांस भी प्राप्त किया जाता है। इनसे मध्यम किस्म की 3 किग्रा. तक ऊन प्राप्त होती है जो वर्ष मे दो बार काटी जाती है। ऊन का अधिकतर उपयोग गृह उद्योगों एवं खादी संस्थानों द्वारा कम्बल, नम्दे तथा गलीचों में किया जाता है।

6. मारवाड़ी (Marwari)—

प्राप्ति स्थान—नस्ल मारवाड़ क्षेत्र में पाई जाने के कारण 'मारवाड़ी' नाम से जानी जाती है। यह भेड़ें जोधपुर, पाली, नागौर, सिरोही, जिलों तथा इनसे लगे उदयपुर, अजमेर, भीलवाड़ा तथा जयपुर जिलो के सीमान्त भागों में पाई जाती है। यह राज्य के सर्वाधिक क्षेत्र मे मिलती है।

सामान्य विवरण—शरीर मध्यम आकार का सुगठित होता है जिसका रंग भूरा होता है। चेहरे का रंग काला, कान व दुम छोटे होते हैं। मादा का भार 22 से 30 किग्रा. तथा नर का भार 27 से 36 किग्रा. होता है।

प्रयोजन—प्रदेश की अन्य भेड़ों से अधिक सहिष्णु, स्वस्थ एवं लम्बा सफर करने वाली फुर्तीली होती है। अत्यधिक गर्मी-सर्दी तथा चारे के अभाव के दिनों मे समीपवर्ती राज्यों में निष्क्रमण पर ले जाई जाती है। वर्ष मे 1·0 से 1·5 किग्रा.

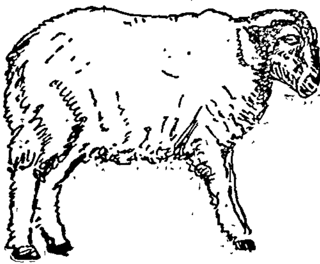


चित्र (मारवाडी भेड़)

मध्यम तथा निम्न किस्म की ऊन मिलती है जो दो बार में काटी जाती है जिसे गलीचे बनाने मे काम लाते हैं।

7. मालपुरी (Malpuri)—

प्राप्ति स्थान—इस नस्ल की भेड़ें जयपुर, टोंक, सवाई माधोपुर जिलों एवं इनसे लगे भीलवाड़ा, अजमेर एवं बूंदी जिले के सीमावर्ती भागों में पाई जाती है।



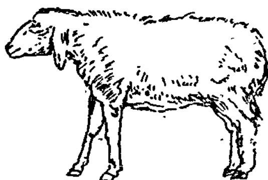
चित्र (मालपुरी भेड़)

सामान्य विवरण—भेड़ का शरीर मध्यम कद का सुगठित होता है जिसका रंग भूरा-सफेद होता है। कान छोटे तथा दुम मध्यम लम्बाई की होती है। मादा का भार 25 से 30 किग्रा. तथा नर का भार 30 से 35 किग्रा. होता है।

प्रयोजन—भेड़ें शरीर में गठीली होने से मांस के लिये सर्वोत्तम है। इनसे खुरदरी मोटी किस्म की 1·0 से 1·5 किग्रा. ऊन मिलती है जो वर्ष में दो बार काटी जाती है जिसका मोटे किस्म के गलीचे व नम्दे बनाने मे उपयोग होता है।

8. सोनाडी (Sonadi)–

प्राप्ति स्थान—यह भेड़ उदयपुर खण्ड के सम्पूर्ण क्षेत्र तथा इससे लगे गुजरात राज्य मे पाई जाती है। भेड़ पूर्णतया पर्वतीय क्षेत्र में मिलती है।



चित्र (सोनाडी भेड़)

सामान्य विवरण—भेड़ लम्बी एव ऊँचे कद की होती है जिसका रंग भूरा-सफेद होता है। ऊन रहित लम्बी टांगें, दुम व कान लम्बे होते हैं जो चरने पर भूमि को छूते रहते है। मादा का भार 25 से 30 किग्रा. तथा नर का भार 30-40 किग्रा. होता है।

प्रयोजन—भेड़ से प्रतिवर्ष निम्न—मोटी किस्म की 1·0 से 1·5 किग्रा ऊन प्राप्त होती है जो वर्ष में 2 बार काटी जाती है। अन्य नस्लों की अपेक्षा अधिक दूध 1-5 लीटर मिलता है जिससे इसके मेमनों की शारीरिक वृद्धि तीव्र होती है। इसकी टांगें लम्बी होने से ये दल-दली भूमि एवं झाड़ियों मे आसानी से चल लेती है।

(ब) विदेशी एवं संकर भेड़

9. मेरिनो भेड़ (Merino Sheep)—

प्राप्ति स्थान—विदेशी नस्लों में मेरिनो मुख्य नस्ल है। इस नस्ल के मेढों से भारतीय नस्लें-मारवाड़ी, बीकानेरी भेडों के संकरण से नई नस्ल विकसित की गई मेरिनो तथा बीकानेरी के संकरण से हिसार डेल नस्ल प्राप्त हुई। रसियन मेरिनो भेड़ प्रमुखता से इस उद्देश्य के काम आती है।

विशेषतायें--इन भेड़ों का शरीर मध्यम आकार का गठा हुआ होता है। भेड़ों के पैर, गर्दन और कान शरीर की अपेक्षा छोटे होते हैं। शरीर पर सघन ऊन होती है। इनका रंग प्राय: सफेद होता है।

नर का भार 68-79 किग्रा. तथा मादा का भार 55-59 किग्रा. होता है।

प्रयोजन--आर्थिक दृष्टि से ऊन, मांस तथा फर की विश्वव्यापी मांग होने से भेड़ का आयात-निर्यात विभिन्न राष्ट्रों मे होने लगा है। इसी से देश में शीतोष्ण समूह की रूसी मेरिनो का आयात किया गया था। भेड़ से प्रति वर्ष 7 से 9 किग्रा. ऊन तथा मेढ़ा से 13 कि.ग्रा. ऊन प्राप्त होती है।

10. काराकुल भेड़ (Karakul Sheep)--

प्राप्ति स्थान--यह आस्ट्रेलिया की मुख्य नस्ल है जो देश मे संकरण हेतु आयात की गई है। मरुस्थलीय समूह की नस्ल होने से राज्य के रेगिस्तानी क्षेत्रों में उपयुक्त पाई गई है।

विशेषतायें--यह मध्यम शरीर की काले रंग की नस्ल है जिसकी लम्बी तथा मोटी पूंछ मुख्य पहिचान है। इसकी पूंछ मे भोज्य पदार्थ संचित होने से रेगिस्तानों में भोज्य तत्व उपलब्ध हो जाता है। इसका भार लगभग 100 कि.ग्रा. तक होता है।

प्रयोजन--भेड़ से वर्ष मे 2·5 से 3·0 कि.ग्रा. ऊन प्राप्त होती है। बच्चों की खाल मे फर प्राप्त किया जाता है।

11. अवि वस्त्र (Avivastra Sheep)--

प्राप्ति स्थान--यह राज्य के मालपुरा स्थित केन्द्रीय भेड अनुसंधान केन्द्र, अविकानगर पर रेम्बूले नस्ल के मेरिनो मेढ़ों एवं राज्य की चोकला नस्ल की भेड़ के वर्ण संकरण से प्राप्त नस्ल है।

विशेषतायें--भेड मध्यम आकार की होती है। जिसका 6 माह के मेढ़े का भार 12 किलो तथा 1 वर्ष की आयु मे भार 23 किग्रा तक हो जाता है।

प्रयोजन--भेड़ से प्रति उत्तम किस्म की प्रतिवर्ष 2 से 4 कि. ग्रा. ऊन प्राप्त होती है। ऊन के गुच्छे की लम्बाई 3 से.मी. होती है।

12. अविकालीन (Avikalin Sheep)--

प्राप्ति स्थान--यह भेड़ मालपुरा (टोंक) के केन्द्रीय भेड़ अनुसंधान केन्द्र पर रेम्बूले नस्ल मेरिनो मेढों से स्थानीय मालपुरा नस्ल के वर्ण संकरण से प्राप्त नस्ल है। यह राज्य की परिस्थितियों मे अच्छी सिद्ध हुई है।

विशेषतायें--भेड़ अच्छे शरीर वाली होती है जिसका एक वर्ष की आयु मे 25 किग्रा. भार हो जाता है।

प्रयोजन--इनसे अति उत्तम किस्म की ऊन मिलती है। वर्ष मे 2 से 3 किग्रा ऊन प्राप्त होती है जिसके गुच्छे की लम्बाई 2·98 से.मी. होती है।

(द) कुक्कुट की नस्लें (Breeds of Poltry)

देश में उत्पादित की जाने वाली 200 से अधिक कुक्कुटो की नस्लें पाई जाती हैं, जिनको निम्न वर्गों में विभाजित करते हैं—

(अ) उपलब्धता के आधार पर—

1. अमरीकी वर्ग—रोड़ आइलैण्ड रेड़, रोड आइलैण्ड ह्वाइट, प्लाइमॉथ रोक, न्यू हैम्पशायर, वायडोण्ड।
2. एशियाटिक वर्ग—ब्रह्मा, कोचीन, लांगशन।
3. इंग्लिश वर्ग—ससेक्स, आस्ट्रालार्प, ओरपिंगटन।
4. मैडिटेरियन वर्ग—लैंग हार्न, मिनारका।
5. इण्डियन वर्ग—असील, चटगाँव या मलय, गेगस।

(ब) उपयोगिता के आधार पर

1. अण्डा उत्पादन के लिये—इनसे वर्ष में 225 से अधिक अण्डे मिलते हैं। अण्डे का भार 50-55 ग्राम होता है। ह्वाइट लेनहार्न सर्वोत्तम नस्ल है। संकर नस्लें अपेक्षाकृत अधिक लाभप्रद रहती है।

2. मांस उत्पादन के लिये—इन मुर्गियो का भार अधिक होने से माँस अधिक मिलता है। अण्डे उत्पादन की कम क्षमता होती है। इसके लिये चूजो का मांस के लिये शीघ्र तैयार होना, कम दाना उपयोग तथा 8-10 सप्ताह मे अधिक भार ग्रहण करने वाले हो तथा माँस स्वादिष्ट, मुलायम हो। कार्निश, प्लाइमाउथ, रॉक, न्यू हैम्पशायर।

3. द्वि-काजी नस्लें—ये अधिक अण्डे देने के अलावा मांस के लिये पाली जाती हैं। रोड आइलैण्ड रेड।

व्यापारिक दृष्टि से एकल कलंगी सफेद लेगहार्न, रोड आइलैंड रेड, सफेद प्लाइ-माउथ रोक नस्ले हैं जिनकी संख्या कुल संख्या का 80% है। अण्डे उत्पादन के लिये सफेद लेन हार्न और रोड आइलैंड रेड तथा मास के लिये सफेद प्लाइ माउथ रॉक नस्लें प्रसिद्ध हैं।

1. सफेद लेगहार्न (White Leghorn)—

परिचय—इसका मूल स्थान इटली है। भूमध्यसागरीय नस्लों में यह सर्वाधिक लोकप्रिय है जो विश्व की सर्वाधिक अण्डे उत्पादन नस्ल है। भारत में

अध्याय—9

पशुओं का आवास एवं उनके प्रबन्ध
(Cattle Shed & Managerial Practices)

पशुशाला
(Cattle Sheds)

पशुओं के आवास के लिये सुनियोजित और पर्याप्त व्यवस्थित प्रबन्ध करना अत्यन्त आवश्यक है जहां वे अपने को मौसम के कुप्रभाव से रक्षा कर सकें तथा वहां जीवन-यापन की सभी आवश्यक सुविधायें उपलब्ध हों, पशुशाला कहते है ।

आवश्यकता—(1) भवन पशुओं की गर्मी, वर्षा और सर्दी से रक्षा करती हैं ।

(2) पशुओं को आराम पहुँचाते हैं और इनके रख-रखाव में सुविधा होते है ।

(3) पशुओं की उत्पादन क्षमता को पूर्णतया उपयोग करने में सहायक होती हैं ।

(4) पशुओं की देख-रेख निकट से की जाती है जिससे उनकी बीमारी आदि की जानकारी तुरन्त ही मिल जाती है ।

(5) पशुओं के वैज्ञानिक तरीके से पालन में प्रोत्साहन मिलता है जिससे उनका समुचित विकास होता है ।

पशुशाला भवन का निर्माण — निम्नलिखित बातों का ध्यान रखते हैं—

1. स्थान का चुनाव—(i) पशुशाला यथासंभव फार्म के मध्य में हो जिससे पूर्ण सुरक्षित रह सके ।

(ii) यथासंभव पशुशाला का निर्माण बेकार बंजर भूमि पर करना चाहिए ।

(iii) भवन का निर्माण ऐसे स्थान पर होना चाहिये जहां से मार्ग गुजरता हो जिससे चारा आदि की व्यवस्था, दुग्ध वितरण मे सुविधा रहे ।

(iv) पानी की अच्छी व्यवस्था होनी चाहिये जिससे पीने, नहलाने, सफाई आदि कार्यों के लिये पर्याप्त पानी मिल सके ।

(v) स्थान ऊँचा हो जहां पर पानी नहीं भरता हो ।

(vi) वायु तथा सूर्य प्रकाश का समुचित प्रबन्ध हो।

2. *भवनों का समूहन*—(*i*) *पशुशाला की विभिन्न इमारतों का निर्माण* इस प्रकार किया जावे कि सभी एक ही स्थान पर हो जिससे कम से कम समय में तथा आसानी से अधिक कार्य किये जा सके।

(ii) सम्बन्धित सभी भवन एक साथ बनाये जावें।

(*iii*) *भवन बाहर से देखने में सादा, सुन्दर तथा स्वास्थ्यप्रद हो।*

(iv) इनकी मरम्मत तथा देख-रेख आसानी से की जा सके तथा भविष्य में आवश्यकतानुसार इसका विस्तार किया जा सके।

3. पशुशाला की बनावट—पशुशाला भवन निर्माण मे उपर्युक्त विन्दुओं के अलावा निम्न का ध्यान रखना अति आवश्यक है—

(1) जल निकास का उचित प्रबन्ध—पशुशाला भवन का निर्माण ऐसी भूमि पर करना चाहिये जहाँ पानी एकत्रित नहीं होता हो। पशुशाला, दुग्धशाला आदि भवनों के फर्श मे 2·5 से.मी. ढाल नांद से नाली की ओर हो। यह नाली लम्बाई में प्रति मीटर पर ·5 से. मी. ढाल दार हो तथा चौड़ाई 45-60 से.मी. हो जिससे द्रव मल बिना रुकावट बह सके। इस नाली का सम्बन्ध बाहर की उस नाली से हो जो खाद के गढ्ढे मे खुलती हो।

(2) दीवालें, दरवाजे एवं खिड़कियां—दीवालें नींव से 1 मीटर की ऊँचाई तक गारे से चुनकर पक्का सीमेंट या चूने का प्लास्टर करा देना चाहिये।

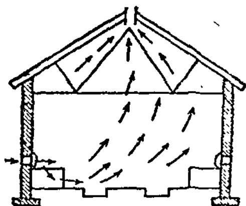
दरवाजे एक पंक्ति वाली पशुशाला मे 2·5–2·75 मीटर चौड़े मजबूत किवाड़ युक्त हों जिन पर बाहर की ओर जालीदार दरवाजा होना अच्छा रहता है। दरवाजे खुलने पर दीवाल से पूरे सट जाने चाहिये।

दीवालों मे आवश्यकतानुसार खिड़कियाँ होनी चाहिये जो कुछ स्थाई तथा कुछ खुलने-बन्द होने योग्य हों इनमें अन्दर की ओर शीशे के किवाड़ लगावें तथा बाहर की ओर मजबूत जाली लगा देनी चाहिये जिससे पर्याप्त वायु तथा प्रकाश आवे और वे सुरक्षित रहें।

खिडकियों तथा दरवाजों के ऊपर दीवाल चुनकर प्लास्टर करा देना चाहिये।

(3) रोशन दान (Vantilation)—अनुमान है कि गाय भोजन के बिना 6 सप्ताह, बिना जल के 6 दिन जीवित रह सकती है परन्तु बिना वायु के 6 मिनट भी जीवित नहीं रह सकती है। प्रति पशु 50 लीटर वायु साँस में ली जाती है, जिसमे जीवन रक्षक आक्सीजन होती है। श्वसन के फलस्वरूप फेफड़ों से निकली

विषैली हानिकारक CO_2 होती है जिसकी मात्रा एक दिन में औसत 300 लिट होती है जिसको बाहर निकालना आवश्यक है।



चित्र (पशुशाला में हवा की गति)

इसके अलावा पशुशाला की नमी तथा पशु शरीर के वाष्प तथा गैस को बाहर निकालना आवश्यक है। इसके लिये दिवालों की छत के पास उचित आकार के पर्याप्त संख्या में रोशनदान बनाये जाने चाहिये जिसमें मोटी जाली लगाई जा सकती है जिससे सुरक्षा भी रहेगी।

(4) छत—छतें ऐसे पदार्थ से बनाई जावें जो पशु की धूप, लू, वर्षा, शीत आदि से रक्षा कर सकें तथा मजबूत टिकाऊ हों और आग से सुरक्षित हों। इसके लिये ईंट सीमेंट, पट्टी की छत तथा सीमेंट की बनी एस्बेस्टस चद्दरें अच्छी रहती हैं।

(5) बाह्य रूप-रेखा—पशुशाला के निर्माण यह ध्यान रखा जावे कि वह देखने में सुन्दर हो परन्तु निर्माण में अधिक व्यय नहीं किया जावे।

पशुशाला के प्रकार—इनको गाय घर, गौशाला नामों से पुकारते हैं। पशुशालायें दो प्रकार की होती हैं—

(अ) कच्ची पशुशाला

(ब) पक्की पशुशाला

(अ) **कच्ची पशुशाला**—इस प्रकार की पशुशाला का निर्माण कच्ची ईंटें, चिकनी मिट्टी से किया जाता है, दीवालों पर गोबर और मिट्टी का लेप कर देते हैं। छत पर छप्पर, खपरैल, टिन (चद्दर) डाल देते हैं। फर्श प्रायः कच्चा होता है, सर्दी के दिनों में घास, भूसा, पुआल आदि डाल देते हैं जिसको 10–15 दिन बाद उठाकर खाद के गढ्ढे में डाल दिया जाता है।

(ब) पक्की पशुशाला—इनका निर्माण चूना, सीमेंट, ईंटों तथा पत्थरों आदि सामग्री से किया जाता है। ये दो प्रकार से बनाई जाती हैं—

(i) चारों तरफ दीवाल वाली—इसके चारों ओर दीवाल होती है जिसमें आवश्यकतानुसार दरवाजे, खिड़कियाँ, रोशनदान आदि बनाये जाते है। फर्श पक्का होता है। इसकी सफाई के लिये नाली होती है। पशु चारे के लिये नाँदें दीवाल की ओर होती हैं। इस प्रकार की पशुशाला पशुओं को रात में बाँधने के काम आती हैं।

(ii) खुली हुई पशुशाला—इस प्रकार की पशुशाला मे एक ओर दीवाल होती है जिसके सामने सीमेंट, लोहे के खम्भे बना देते है। जिन पर लोहे या एस्वेस्टस की चद्दरें डाल दी जाती हैं। एस्वेस्टस की चद्दरें हर मौसम मे अच्छी रहती है। ये पशुशालायें दूध दोहन के लिए काफी अच्छी रहती हैं क्योंकि इनमे दूषित एवं बदबूदार वायु एकत्रित नहीं रहती है।

प्राय: पशुओं को बाँधने के अनुसार पशुशाला मे निम्न प्रकार व्यवस्था की जाती है—

(ii) एक पंक्ति वाली गौशाला (Single Row Shed)—पशुओं की संख्या 10 या इससे कम होने पर यह विधि काम मे लाते है। इसमे दीवाल के एक सहारे पशुओं को चारा खिलाने की नाँदें होती है। नांदो के सहारे बांधने के खूंटे या कड़े लगे होते हैं।

= पशुओ को चारा डालने का रास्ता =	150 सेमी०
चारा डालने की नाँद	60 सेमी०
= पशु खड़े होने का स्थान =	150 सेमी०
नाली	60 सेमी०
= दूध निकालने एवं सफाई करने का रास्ता =	150 सेमी०

(ii) दो पंक्ति वाली गौशाल (Double Row Shed)—पशुओं की संख्या अधिक होने पर यह विधि काम मे लाई जाती है। इसमें पशुओ को अग्रलिखित दो विधियों से बाँधा जाता है—

(क) अभिमुखी या चेहरे से चेहरे वाली प्रणाली (Face to Face)—

पशु एक दूसरे की ओर मुँह करके बाँधे जाते हैं। दोनों पंक्तियों के मध्य एक रास्ता होता है, रास्ते के दोनों ओर नांदें होती हैं तथा नांदों के दोनों ओर खड़े होने का 1·25-1·50 मीटर लम्बा स्थान छोड़ा जाता है चौड़ाई के लिये प्रति पशु 1·25 मीटर स्थान होना चाहिये। इस ठोर के दोनों ओर 2·5–[illegible]·5 सेमी. ढालदार नालियाँ होती हैं।

गुण— (i) एक ही ग्वाला दोनों पंक्तियों की नांदों में एक साथ चारा डाल सकता है जिससे समय व श्रम की बचत होती है।

(ii) पशुओं के सिर एक ओर होने से दर्शकों को अच्छी तरह से दिखाई देती है।

(iii) सफाई कम समय में की जा सकती है।

(iv) पशुओं से दूध दुहने में आसानी रहती है।

= सफाई के लिए एवं दूध निकालने का रास्ता =	150 सेमी॰
नाली	60 सेमी॰
= पशु बांधने का रास्ता =	150 सेमी॰
नांद	60 सेमी॰
= चारा डालने का रास्ता =	150 सेमी॰
नांद	60 सेमी॰
= पशु बांधने का रास्ता =	150 सेमी॰
नाली	60 सेमी॰
= सफाई एवं दूध निकालने का रास्ता =	150 सेमी॰

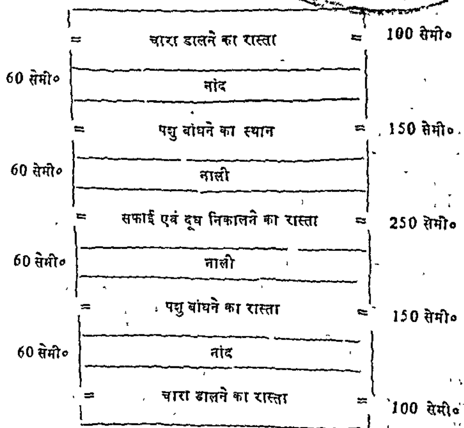
चित्र (मुँह से मुँह का नक्शा)

(v) पशुओं को बाहर तथा अन्दर ले जाने में सुविधा रहती है क्योंकि दोनों ओर दरवाजे होते हैं।

दोष पशुओं के मुँह आमने-सामने होने से उनकी साँसें एक दूसरे की ओर चली जाती हैं जिससे छूत की बीमारी फैलने का भय रहता है।

(ख) अभिपुच्छी या पूँछ से पूँछ वाली विधि (Tail to Tail System)–

इस विधि में पशुओं के मुँह एक दूसरे के विपरीत दिशा में होते हैं, उनकी पूँछ एक ओर होती है। बीच में एक रास्ता होता है जिससे नाली व पशुओं के खड़े होने का स्थान साफ किया जाता है। रास्ते की ओर नाली होती है, नाली के ऊपर पशुओं के खड़े होने का स्थान जिसके किनारे चारा खाने की नांद बनी होती है।



चित्र (पूँछ से पूँछ विधि का नक्शा)

गुण— (i) पशुओं के मुँह एक दूसरे से विपरीत दिशा में होने से छूत की बीमारी फैलने का भय कम रहता है।

(ii) एक ही समय में एक ही व्यक्ति सफाई कर सकता है।

(iii) पशुओं के लिये पर्याप्त स्थान मिलता है।

(iv) एक ही बार में बीच में खड़े होकर सारे झुण्ड को भली-भांति देखा जा सकता है।

दोष— पशु को चारा डालने में काफी समय लगता है।

नांदें—इन पशुशालाओं मे नांदों के निर्माण मे विशेष ध्यान रखा जाता है। सीमेंट, कंकरीट की बनी नांदें मजबूत तथा सफाई की दृष्टि से अच्छी रहती हैं। नांदो को लम्बाई में बनाकर बीच में हटाये जाने वाले विभाजक लगा दिये जाते हैं। ऊँचे सामने की नांदें 40 से.मी. ऊँची तथा नीचे सामने की नांदें 15–22·5 से. मी. ऊँची अच्छी रहती हैं। नांदो के पीछे की ऊँचाई ·45–1·00 मी. तथा चौडाई ·75–1·00 मीटर पर्याप्त है। ऊँची सामने वाली नांदों मे चारा बरबाद नही होता है जबकि नीचे सामने वाली नांदें अधिक आरामदायक हैं।

इन इमारतों के अतिरिक्त निम्न इमारतों का भी होना अत्यन्त आवश्यक है।

दुग्ध अभिलेख कक्ष—दुग्ध शाला के समीप यह कक्ष होना चाहिये जिसका आकार दूध की मात्रा पर निर्भर करता है। 10 वर्ग मीटर आकार का कक्ष 200 लिटर दूध की मात्रा के लिये पर्याप्त है। दरवाजे और खिड़कियो पर महीन जाली होनी चाहिये। जिससे मक्खियाँ, कीड़े-मकोड़े आदि अन्दर न जा सकें। बर्तनों की सफाई आदि के लिये अलग व्यवस्था होनी चाहिये।

बछड़ों का बाड़ा—प्रत्येक वर्ग के बछड़े-बछियों को खुले घूमने के लिये चारों ओर से सुरक्षित स्थान की व्यवस्था की जाती है जिसमे बच्चे खुले घूमते रहते हैं, जिसे बाड़ा कहते हैं। बछड़ों के प्रत्येक समूह के लिये उनकी अलग व्यवस्था की जाती है। 2 वर्ग मीटर ढंका स्थान प्रत्येक बछड़े के लिये हो तथा इससे 5 गुना स्थान खुले बाड़े के रूप में होना चाहिये।

सांड का बाड़ा—सांड के लिये लगभग 10 मीटर आकार का कक्ष, जिसमे 1.25 मीटर चौडा दरवाजा हो, की आवश्यकता होती है जिसमे चारे की नांदें तथा पानी की व्यवस्था होती है। इसके अलावा ढके स्थान से तिगुना खुला स्थान चाहिये। बाड़े मे दरवाजे के पास फुटबाथ होना चाहिये जिससे चर कर बाहर से आने के बाद पैर स्वतः धुल जावे और रोग न फैले।

जच्चा-गृह—मादा पशुओं को पशुशाला में ब्याने देना सर्वथा अवांछनीय है क्योंकि. इससे छूत के रोग फैलने का भय रहता है। इसके लिये 5 वर्ग मीटर आकार का चारों ओर से सुरक्षित हवादार अलग कमरा होना अच्छी पशुशाला के लिये आवश्यक है जहाँ मादा को बच्चा देने से कुछ दिन पूर्व स्थानान्तरित कर देना चाहिये।

पृथक्करण गृह—अच्छी डरियों में संक्रामक रोगों से ग्रसित पशुओं के लिये झुण्ड से दूर 5 वर्गमीटर आकार का एक कमरा होना चाहिये जिसमे सभी आवश्यक व्यवस्थायें होनी चाहियें।

भण्डार घर—चारा, दाना अन्य वस्तुओ को संग्रह करने के लिये पर्याप्त आकार के पक्के स्थाई भण्डार घर होने चाहिये। इनमे चूहों से बचाव का प्रवन्ध हो। फर्श यथासंभव ईंटो के या पक्के होने चाहिये।

भण्डार घर के समीप चारा काटने तथा दाना दलने के लिये मशीन की व्यवस्था होनी चाहिये।

कार्यालय तथा प्रयोगशाला—फार्म के मुख्य द्वार के समीप उचित आकार का कार्यालय होना चाहिये। कार्यालय के एक ओर पशु निरीक्षण तथा वीर्य संकलन के लिये अरगड़ा होना चाहिये।

दूध के कोई उपचार (Processing) करने पर उचित आकार की प्रयोगशाला होना चाहिये, अन्यथा नही।

निवास गृह—फार्म के पशुओं की देख-रेख तथा सेवा के लिये 15–18 मीटर की दूरी पर कर्मचारियों के मकान होने चाहिये।

खाद के गढ्ढे—पशुओं के गोवर, मूत्र, पशुशाला की सफाई का पानी आदि डालने के पर्याप्त आकार के गढ्ढे होने चाहिये। ये गढ्ढे पशुशाला से दूर, वायु की विपरीत दिशा में बनाने चाहिये। पशुशाला के धोवन तथा पेशाब आदि को इकट्ठा करने के लिये ढक्कनदार (Covered) गढ्ढे अच्छे रहते है।

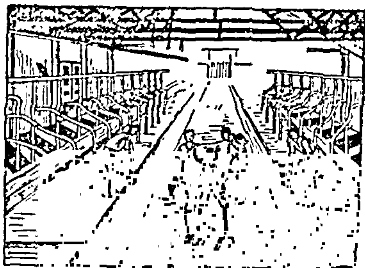
पशुशाला की सफाई एवं निःसंक्रमण
(Cleaning and Disinfection of Cattlesheds)

पशुओं के आवास के लिये अच्छी पशुशालाओं के निर्माण के साथ इनका रखरखाव तथा पशुओं के अच्छे स्वास्थ्य एवं उत्पादन के लिये इनकी साफ-सफाई अत्यन्त आवश्यक है। सफाई न करने पर मल-मूत्र, बचे चारे मे रोगाणु उत्पन्न होकर पशुओ मे अनेक बीमारियों को फैलाते है तथा दूध को अस्वच्छ बना देते है।

पशुशाला का फर्श, एक मीटर की ऊँचाई तक दीवालें गन्दी हो जाती हैं। कच्ची पशुशाला मे पहले गोबर को इकट्ठा करके बर्तन मे भरकर गढ्ढे में डाल देते हैं, मूत्र को सुखाने के लिये राख, मिट्टी, रेत का बिछावन प्रयोग करते हैं। फर्श को झाड़ू से साफ कर देते हैं। कभी-कभी 1-2% फिनायल का घोल या चूना छिडक देते हैं।

पक्की पशुशालाओं मे बीच के रास्ते पर पहिये वाली गाड़ी गुजारते है जिससे बचा हुआ चारा, गोवर आदि भरकर गढ्ढे मे पहुँचा दिया जाता है। पशु के खड़े

होने के स्थान, चरही (नांदें) पर भाडू लगाकर सफाई करते हैं। अब फर्श पर पानी डाल कर भाडू या ब्रुश से रगड़कर पुन पानी डालकर सफाई करते हैं। इसी समय दीवालों आदि की सफाई करते जाते हैं। अन्त में फिनायल का घोल से धोना अच्छा रहता है जिससे बदबू दूर हो जाती है तथा मक्खियां आदि नहीं आती हैं। फर्श को किसी टाट से रगड़ कर भलीभाँति सुखा देना अच्छा रहता है।



चित्र—गोशाला की सफाई

गोशाला की सफाई के बाद नालियों को भी अच्छी तरह साफ कर देना चाहिये। दिन में पशु के गोबर या मूत्र त्यागने पर, तुरन्त ही गोबर के गढ्ढे मे डालने का प्रबन्ध हो तथा मूत्र के स्थान को धोकर सुखा देना चाहिये। इस कार्य के लिये हर समय गोशाला मे एक ग्वाला रखना चाहिए।

कभी-कभी बांस में कपड़ा, भाडू या ब्रुश लगाकर दीवालों और छतों पर लगे मकडी के जाले आदि साफ करना चाहिये। वर्ष मे दो बार चूने से पुतवा देना चाहिये तथा आवश्यकतानुसार 2-3 बार डी. डी. टी. का घोल छिड़कवा देना चाहिए जिससे मक्खी-मच्छर आदि नष्ट हो जावें। सायकाल नीम या पुआल का धुआं भी किया जा सकता है।

संक्रामक रोग से पशु की मृत्यु हो जाने पर 3% कास्टिक सोडा के घोल से फर्श धोकर चूने मे 1% कार्बोलिक अम्ल मिला कर पुताई करा देना चाहिये। दूषित वस्तुओं को जला देना चाहिये तथा बर्तनों को गर्म पानी से साफ करना चाहिये।

पशुओं के पीने के पानी में, नांद को साफ करके, पोटेशियम परमेंगनेट डालना अच्छा रहता है।

सावधानियाँ · (i) पशुशाला की सफाई प्रतिदिन करनी चाहिये। इसके लिये पशुओं के बाहर या चरागाह मे चले जाने का समय अच्छा रहता है।

(ii) फर्श और नांदों को अच्छी तरह साफ करना चाहिये और फर्श के सूखने पर ही पशुओं को अन्दर आने देवें।

(iii) पशुशाला मे पशुओं के मल-मूत्र करने पर इनकी तुरन्त ही सफाई की व्यवस्था होना अच्छा रहता है।

लाभ—(1) पशुओं को स्वस्थ वातावरण मिलता है जिससे पशु स्वस्थ रहकर अच्छा उत्पादन देते हैं।

(2) रोग फैलने की आशंका कम रहती है।

(3) स्वच्छ एवं शुद्ध दूध प्राप्त होता है।

(4) मल-मूत्र से अच्छे किस्म की खाद मिलती है।

(5) दर्शकों तथा आगन्तुकों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है जिससे खरीददारो से अच्छा मूल्य मिलता है।

(6) पशुपालकों को अपने पशुओं से अधिक लगाव हो जाता है जिससे व्यवसाय को प्रोत्साहन मिलता है।

प्रश्न

1. पशुशाला के स्थान के चुनाव व स्थिति का विस्तार से वर्णन कीजिये।
2. एक 'सांड गृह का भूनियोजन का चित्र बनाइये तथा उसमें विभिन्न दूरियां भी दिखाइये।
3. पशुओं के निवास स्थान से जिन कारकों को ध्यान मे रखा जाता है। उनका वर्णन कीजिये।
4. एक आदर्श पशुशाला के लिए स्थान का चुनाव करते समय किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए? 10 गायों के लिए पशुशाला का चित्र बनाइये।
5. एक आदर्श पशुशाला बनाते समय किन-किन बातों को ध्यान में रखेंगे?
6. पशुशाला की नियमित सफाई से आप क्या समझते हैं? सफाई करते समय किन-किन बातो को ध्यान में रखेंगे?

अध्याय—10

गाय का प्रबन्ध
(Care of Cow)

मदकाल का अवलोकन
(Signs of Cows in heat)

प्रकृति का नियम है कि मादा ऋतुमती होने पर संभोग की इच्छा लेकर नर पशु की तलाश करती है। मादा पशु एक निश्चित समय पर गर्म या पाली (Oestrus Period) पर आती हैं तो निम्न लक्षणो को प्रकट करती हैं—

1. गाय बेचैन रहती है तथा रस्सी तुड़ाने का प्रयास करती है।

2. भोजन कम या बिल्कुल नही लेती है परन्तु प्यास बढ़ जाती है।

3. बार-बार पेशाब करती है तथा पीछे की ओर देखती है।

4. जननांग फूल कर लाल हो जाते हैं उनसे सफेद रंग का लसदार (म्यूकस) श्लेष्मा निकलता है तथा इसमे संकोचन-विमोचन होता है।

5. पशुओं के साथ छोड़ने पर उन पर सांड की भांति चढ़ने का प्रयास करती है।

6. बेचैनी के कारण 2-3 दिन के लिये दूध कम देती है तथा कभी-कभी बछड़ों को दूध नही पिलाती है।

7. नर पशु के ले जाने पर चुपचाप खड़ी रहती है।

कुछ गायें ऐसी भी होती हैं जिनसे उपर्युक्त लक्षण प्रकट नही होते हैं, इनको निर्बल या मूक गर्मी वाले पशु कहते हैं। ये पशु गर्मी पर तो आते हैं पर लक्षणों को प्रकट नही करते है। इनको ऋतुमती जानने के लिये पता लगाने वाले सांड (Teaser Bull) के पास ले जाते हैं। ये वे सांड हैं जिनकी अण्डकोष में स्थित वसा डिफरेन्स को काट देते हैं जिससे ये शुक्राणुसहित वीर्य नही छोड़ पाते हैं। ये सांड ऐसे पशु पर बार-बार चढकर गर्म होना प्रदर्शित करते है। विजाइनल स्पैकुलम से योनि को देखने पर गर्भाशय द्वार खुला दिखाई देता है।

जैसे ही ये लक्षण पशु मे दिखाई देवें तो गाय या भैंस ऋतुमती है और उसे उन्नतशील सांड या कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र पर ले जाकर गर्भित कराना

चाहिये। ये लक्षण 18–36 घण्टे तक रहते हैं। मिलाने का सर्वोत्तम समय मध्यकाल है।

साधारणतौर पर गाय बयाने के 80-90 दिन के अन्दर गर्भ धारण कर लेना चाहिये जिससे दो ब्यांतों के बीच जितना कम समय होगा दूध उत्पादन की दृष्टि से वह पशु अच्छा होगा। बछिया की अच्छी देखरेख करने पर वह 2-3 वर्ष में ऋतुमती होकर गर्भ धारण के योग्य हो जाती है, यदि ऐसा न हो तो निम्न उपाय करने चाहियें—

1. मादा को नर पशु के साथ रखना चाहिये, इससे लाभ न होने पर उसकी खुराक कम कर देनी चाहिये।

2. 2 कि ग्रा गेहूँ व चने के अंकुरित दाने, 50 ग्राम मेथी के साथ 3-4 दिन तक खिलाना चाहिये।

3. सनई व ग्वार के 2 कि.ग्रा. बीज उबालकर 2-3 बार देना चाहिये।

4. ग्रामीण भागों मे भिलाव का बीज रोटी या आटे की लोई में खिलाते है।

5. पशुचिकित्सक से पशु की जाँच कराकर उसकी सलाह पर डिम्ब मालिश या पी. एम. एस., स्टिलवैस्ट्रोल, जैस्टाइल आदि दवा के इंजेक्शन से ऋतुमती हो जाती है।

पशुचिकित्सक से पशु की जांच से निश्चित होने पर गर्भधारण के अयोग्य पशु को झुण्ड मे से हटा देना चाहिये, ऐसे पशुओ में एक विशेष प्रकार के हार्मोन के इंजेक्शन लगाने पर वे एक बार दूध तो दे देते हैं।

पशु को मिलान के बाद 2-3 दिन तक कम खाना देना अच्छा रहता है।

गाय के गर्भवती होने के लक्षण

नर पशु के मिलान के बाद यदि गाय गाभिन हो गई है तो उसके शरीर से निम्न लक्षण प्रकट होते हैं—

1. पशु पुनः 20-21 दिन के बाद गर्म नहीं होता है।
2. साँड के पास जाना पसन्द नही करती है।
3. पशु का बेचैन, चिड़चिड़ाहट स्वभाव शांत हो जाता है।
4. चाल धीमी हो जाती है।
5. पशु के पेट का आकार बड़ा हो जाता है तथा अयन विकसित होने लगते हैं।
6. पशु-शरीर पर चर्बी इकट्ठी होने लगती है।
7. पेट-अयन तथा थनों को छूने पर बच्चे का भार मालूम होता है।

8. गाय के गाभिन होने की शंका होने पर 2-2½-माह के अन्दर पशु चिकित्सक से जांच करा लेनी चाहिये।

9. 3-4 माह की गर्भवती गाय को कुछ समय तक भूखा रखने पर ठंडा पानी के पिलाने के बाद बच्चे का हिलना-डुलना स्पष्ट महसूस किया जा सकता है।

10. 5-6 माह के गर्भ का हिलना-डुलना दिखाई पड़ता है।

विभिन्न पशुओं के ऋतुकाल एवं गर्भावधि

पशु	ऋतुकाल (घण्टे)	गर्भाधान का उपयुक्त समय	पुनः ऋतुकाल का समय (दिन)	गर्भावधि (दिनों मे)
1. गाय	24–36	मध्यकाल	18–21	280
2. भैंस	24–36	"	21–23	310
3. भेड़	30–36	अन्तिमकाल	16	150
4. बकरी	36	"	19	150
5. सुअर	6–11	"	16	63
6. घोड़ी	4–7 दिन	5–7 दिन	21	370

गर्भवती गाय की देखभाल
(Care of Pregnant Cow)

गाय के गर्भाशय मे बच्चे का जीवन प्रारम्भ होता है। सांड के वीर्य के शुक्राणु (Sperm) तथा गाय के बीजाणु (Ovum) के संयोजन से एक पिण्ड 'भ्रूण' (Empryo) का निर्माण होता है जो गर्भाशय मे वृद्धि करता है। इसकी वृद्धि गाय के अन्दर होती है। पिण्ड का एक नाल (Placenta) द्वारा गाय से सम्बन्ध होता है। अतः अन्दर वृद्धि कर रहे बच्चे के उचित विकास तथा गाय के स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिये उसकी उचित देखभाल करना अत्यन्त आवश्यक है।

आवास—जहां तक सम्भव हो सके, गर्भवती गाय को झुण्ड से अलग रखना चाहिये जिससे वे आपस में लड़कर हानि न पहुंचा सकें। यह स्थान पूर्णतया हवादार, आरामदायक तथा प्रकाशयुक्त हो।

भोजन—भ्रूण वृद्धि व पशु के स्वास्थ्य बनाये रखने के लिये उसे संतुलित आहार दिया जाना चाहिये, इसमें प्रोटीन की पर्याप्त मात्रा होनी चाहिये। गायों को सूखे और हरे चारे के साथ प्रतिदिन दाना, खनिज लवणों का मिश्रण देना चाहिये। उसे हरी दाल वाली घासें, रिजका, बरसीम, लोबिया, मक्का, ज्वार, बाजरा की हरी फसल तथा साइलेज देना चाहिये जिससे प्रोटीन, विटामिन्स तथा खनिज तत्व पर्याप्त मात्रा में मिल सकें। भोजन पौष्टिक होने के साथ हल्का, नरम, पचनशील होना चाहिये। मौसम के अनुसार दिन में 2-3 बार शुद्ध एवं ताजा पानी पिलाना चाहिये।

व्यायाम—गाभिन गाय को कभी दौड़ाना या धमकाना नहीं चाहिये। चरागाह में छोड़ना सबसे अच्छा व्यायाम है। इससे गाय को खनिज पदार्थयुक्त हरी घास मिलेगी एवं भोजन पाचन में सहायता मिलेगी।

बीमारी से रक्षा—गाय को तेज गर्मी, लू, वर्षा एवं सर्दी आदि से बचाना चाहिये। बीमार पशुओं से गाय को अलग रखना चाहिये। गर्भपात वाले पशुओं से इसे दूर रखें। समय-समय पर पशु चिकित्सक से स्वास्थ्य जांच तथा सलाह अनुसार व्यवस्था करते रहने चाहिये।

गायों का दूध सुखाना—इसे 'लताना' भी कहते हैं। प्रायः गाय गाभिन होने के बाद ब्याने तक दूध देती रहती है। अगर हम लगातार दूध प्राप्त करते रहें तो इसके अगले ब्यांत के लिए कम समय मिलेगा और दूध की मात्रा भी कम होगी। इसके अतिरिक्त गाय के अन्दर पल रहे बच्चे की वृद्धि के लिये पौष्टिक तत्वों की आवश्यकता होती है जिसका गाय के स्वास्थ्य तथा बच्चे की वृद्धि पर बुरा प्रभाव होगा क्योंकि इन सभी का पोषण गाय को दिये जा रहे आहार से होता है। अतः आवश्यक है कि बच्चा पैदा होने के 2–2½ माह पूर्व गाय के दूध को सुखा देना (Drying off) चाहिये, कुछ पशु स्वतः ही दूध देना बन्द कर देते हैं।

दूध सुखाने के लिये गाय के आहार में हरे चारे की मात्रा कम कर देते हैं, खलियों की मात्रा कम करके चूनी और चोकर की मात्रा बढ़ा देते हैं। दूध सुखाने के लिये दूध को नियमित रूप से न दुहकर दुहने के समय में अन्तर कर देते हैं। दूध को दो बार दुहने के स्थान पर एक बार, दो दिन में एक बार, 3 दिन में एक बार इस प्रकार अन्तर बढ़ाते रहने से दूध बनाने वाली कोशिकाओं की क्रियाशीलता धीरे-धीरे कम हो जाती है और गाय दूध देना बन्द कर देती है।

गाय के बच्चा देने के समय की देखभाल

गाय के बच्चा देने के लक्षण (Symptoms of approaching Parturition Cow)

गाय के गर्भधारण के समय से लेकर बच्चा देने (Calving) तक के समय को गर्भकाल (Gestation Period) कहते हैं। गाय के सांड से मिलान की तारीख नोट कर लेना चाहिये जिससे बच्चा देने का समय मालूम पड़ सके। प्रायः गाय 280 दिन में बच्चा देती है। बच्चा देने से पूर्व गाय के शरीर से निम्न लक्षण दिखाई देते हैं—

1. गाय की पूँछ की जड़ के दोनों ओर गड्ढे पड़ जाते हैं।
2. गाय का अयन बड़ा हो जाता है क्योंकि दूध की नसों में चेतना और हरकत आ जाती है तथा थनों मे दूध भी आने लगता है।
3. बाह्य जननांग फूल कर मोटे हो जाते हैं तथा उनसे पीले रंग का द्रव जैसा पदार्थ निकलने लगता है।
4. पट्ठों की मांसपेशिया ढीली हो जाती हैं।
5. चारा-दाना लेना बंद कर देती है तथा एकान्त पसन्द करती है।
6. ब्याने के दिन पेट में दर्द महसूस करती है जिससे वह बेचैन रहती है और वह बार-बार स्थान बदलती है।

जैसे ही ये लक्षण गाय मे दिखाई दें तो समझ लेना चाहिये कि गाय एकाध दिन मे बच्चा दे देगी। अतः उसकी निम्न व्यवस्थायें कर देनी चाहिये—

आवास—पशुशाला में बने जच्चा गृह या अन्य साफ-सुथरे एकान्त स्थान मे गाय को बाँध देना चाहिये। यह स्थान पूर्ण प्रकाशयुक्त तथा हवादार हो। फर्श की सफाई करके रोगाणुनाशक 1-2% फिनाइल का घोल छिड़ककर घास या पुआल डाल देना चाहिये। इस स्थान के आस-पास शोरगुल नही होना चाहिये। जिससे गाय के भड़कने तथा बच्चा होने में कठिनाई हो सकती हैं। गर्मी, लू और तेज सर्दी से बचाव करना चाहिये।

भोजन—गाय में बच्चा देने के लक्षण प्रतीत होते ही उसे हल्का, सुपाच्य भोजन देना चाहिये। हरा चारा और दाना दो सप्ताह पूर्व बन्द कर देना चाहिये तथा चोकर, अलसी और तेल की थोड़ी मात्रा देनी चाहिये। दो दिन पूर्व गुनगुना पानी जिसमे अजवाइन, गुड़ औटाकर पिलाने से बच्चा होने मे आसानी होती है।

बच्चा देना (Calving)—

बच्चा देना प्राकृतिक क्रिया है। इसमे किसी भी व्यक्ति को बाधा नहीं पहुँचानी चाहिये, बल्कि दूर से ही वह पशु की निगरानी करता रहे।

प्रारम्भ में गाय का प्रयन फूल. जाता है तथा बाह्य जननांग सूजकर बड़े हो जाते है। इनसे द्रव पदार्थ निकलता है। यह अवस्था कुछ घण्टे से लेकर कुछ दिन तक रह सकती है।

गाय दर्द के कारण बेचैन रहती है और बार-बार स्थान बदलती रहती है। दर्द के कारण पीछे की ओर देखती है। यह अवस्था 1/2 से 3 घण्टे तक रह सकती है।

दर्द बढ़ने के साथ गाय अधिक बेचैन होती है, उसकी पीठ कमानीदार हो जाती है। बच्चा होने से कुछ समय पूर्व योनि मे गुब्बारे जैसी पानी की थैली निकलती है जो बाद में स्वतः फूट जाती है। इससे योनि मार्ग चौड़ा हो जाता है और बच्चे को बाहर आने में आसानी रहती है। बच्चे के अगले पैर तथा उस पर रखा सिर बाहर दिखाई देता है तथा दर्द के साथ उसके कंधे और बाद मे बच्चे का पूरा शरीर बाहर आ जाता है। असामान्य स्थिति होने पर पशु चिकित्सक या अनुभवी व्यक्ति से सहायता लेनी चाहिये।

गाय की बच्चा देने के बाद की देखभाल (Care of Cow after giving birth)

गाय ब्याने के तुरन्त बाद बच्चे को चाटने लगती है। बच्चे के, मोटे साफ कपड़े से—नथुने, आँखें, कान आदि साफ करके पशु के पास ले जाना चाहिये।

बच्चा देने के बाद हल्के गर्म पानी या कीटाणुनाशक घोल से गाय के पिछले भाग, अयन आदि को धोकर सुखा देना चाहिये। पिछले भाग, पुट्ठे, कानों, सींगों आदि पर तेल लगा देना चाहिये।

गाय को हल्का, सुपाच्य, स्वास्थ्यवर्धक भोजन देवें। दला हुआ गेहूँ, बाजरा, सौंठ, नमक को औटाकर शीरा या गुड़ के साथ देना चाहिये। पीने को गर्म पानी या अरगर मिश्रण देना चाहिये जिससे जेर भी गिर जावेगी। 3-4 दिन खलियाँ तथा बाद मे सन्तुलित आहार देना प्रारम्भ कर देना चाहिये।

बच्चा होने के 2–8 घण्टे मे जेर (Placenta) स्वतः निकलकर बाहर आ जाता है इसे पशु को न खाने दें, और जमीन में गड्ढा खोदकर दबा देना चाहिये, अन्यथा दूध कम हो जाता है। जेर न गिरने पर पशु चिकित्सक की सहायता लेनी चाहिये।

बच्चे को थनों से लगाकर खीस पिलाना चाहिये तथा गाय का थोड़ा-थोड़ा दूध निकाल लेना चाहिये।

ब्याने के बाद पशुशाला को फिनायल से अच्छी तरह से धो देना चाहिये जिससे मक्खियाँ, कीड़े आदि न आ सकें।

प्रश्न

1. निम्नलिखित समस्याओं का आप कैसे समाधान करेंगे ?
   (अ) गाय का मूक मद काल
   (ब) प्रसव से पहले अयन और स्तनों पर सूजन आ जाय।
2. निम्न पर टिप्पणी लिखो—
   गाय का मद काल
3. गर्भावस्था से आप क्या समझते हैं ? गर्भावस्था एवं प्रसव के समय की देखभाल का वर्णन कीजिये।
4. गर्भवती गाय की देखभाल का सविस्तार वर्णन कीजिए।
5. एक ऋतुमयी गाय के क्या लक्षण हैं ? आप उसका मिलान सांड से कब करायेंगे और क्यों ?
6. गाय के ब्याने पर उसके बच्चे एवं गाय की क्या देखभाल करेंगे ?
7. मदकाल से आप क्या समझते हैं ? गाय में मदकाल कितने समय तक रहता है ?
8. दूध सुखाने से क्या तात्पर्य होता है ? गायो मे दूध सुखाने की कब और क्यों आवश्यकता होती है ?
9. गाय मदकाल में आ गई है, इसके लक्षण लिखिये।

———

अध्याय—11

नवजात शिशु की देखभाल
(Care of Newly Born Calf)

पशु के अपने जीवनकाल में उसके कम उत्पादन तथा कम कार्यक्षमता का मुख्य कारण प्रारम्भ में उचित देखभाल न करना है। नवजात बच्चे की प्रारम्भ से ही उचित देखभाल करने से कार्यक्षमता बढ़ाई जा सकती है, इसके लिए निम्न क्रियाएँ अपनानी चाहिये—

(1) श्वसन प्रचालन (Stimulating Respiration)—बच्चे के पैदा होते ही यह देखना चाहिए कि वह सांस ले रहा है या नही। उसके नथुने व मुँह की झिल्ली को हटा देना चाहिए जिससे वह सांस ले सके। सांस न लेने पर कृत्रिम श्वांस देते हैं इसके लिए उसकी जीभ खींचकर, अगले पैर आगे पीछे हिलाने तथा शरीर की मालिश करते हैं। साथ ही बच्चे को 30 से. मी. की ऊँचाई से धीरे उठाकर रखते हैं जिससे वह सांस लेने लगता है।

प्राय: पशु बच्चे को स्वयं चाटने लगते हैं। प्रथम ब्यांत वाली गाय शर्म से नही चाटती है तो बच्चे के शरीर को मोटे कपड़े या टाट से साफ कर नमक या शीरा छिड़कने से वह चाटने लगती है, इससे रक्त संचार अच्छा हो जाता है। यदि गाय की स्थिति ठीक नही है तो मोटे कपड़े या टाट से पूरा शरीर, कान, आंख, नाक आदि सभी अंगों को अच्छी तरह से साफ कर देना चाहिए।

(2) नाड़ा उपचार (Naval Treatment)—बछड़े में छूत नाड़े से फैलने की आशंका रहती है। अत: थोड़ी सावधानी रखकर इससे बचा जा सकता है। इसके लिए निम्न उपचार करते हैं—

(i) नाड़े की आधार से अंगुली और अँगूठे से दबाकर पानी निकाल देना चाहिये।

(ii) आधार से 2-3 से. मी. नीचे जीवाणुरहित धागे से बांधकर कीटाणुनाशक घोल मे डूबी कैंची या चाकू से काट देना चाहिए।

(iii) कटे हुए भाग पर कोलोडियाज फ्लेस्सिबिल या टिंचर आयोडीन लगाकर सील कर देते हैं; नीले थोथे का पाउडर भी प्रयोग करते है। 3-4 दिन मे नाल सूख कर गिर जाता है।

(3) पोषण (Feeding)—बच्चा पैदा होने के तुरन्त बाद स्वयं गाय के पास खड़ा होकर उसके थनों को चूमने का प्रयास करता है। अधिक दूध देने वाली या प्रथम ब्यांत वाली गाय के थन बड़े और कठोर होते हैं जिससे पशु के थनों को दबाकर दूध पिलाते हैं। कुछ बच्चे इतने कमजोर होते हैं कि वे स्वयं दूध नहीं पी पाते हैं तो उन्हें बोतल आदि से दूध पिलाना चाहिए।

इस प्रारम्भिक दूध, जिसे बच्चा पीता है, उसे 'खीस' (Colostrum) कहते है। यह सामान्य दूध से भिन्न होता है। इसके देने से निम्न लाभ हैं—

(i) दस्तावर होने से यह पेट की गंदगी को साफ करता है।

(ii) प्रोटीन, विटामिन ए व डी अधिक मात्रा मे होती है जो शरीर वृद्धि मे सहायक होते हैं।

(iii) सामान्य दूध से 13 गुणा लोहा अधिक होता है जो रक्त की लाल कणिकाओं के निर्माण में सहायक होता है।

(iv) 'एण्टीबोडीज' (Antibodies) होती हैं जो शरीर में पहुँचकर हानिकारक बीमारी के कीटाणुओं से रक्षा करती है जिससे बच्चा स्वस्थ रहता है।

जन्म के आधे घंटे के बाद बच्चे के खड़े होकर घूमने फिरने पर 225 मि. ली. खीस पिला देनी चाहिए। किन्हीं कारणों से खीस न मिलने पर 30 ग्राम अरण्डी का तेल 2-3 घंटे बाद पिला देना चाहिए जिससे बच्चे का पेट साफ हो जाता है और कब्ज नहीं रहता है।

(4) जन्म के समय भार ज्ञात करना (Weight after Birth)—बच्चे के पैदा होने के बाद उसका भार ज्ञात करके जन्म रजिस्टर मे अंकित कर लेते हैं जिससे खिलाई तथा पोषण में सुविधा रहती है। प्रारम्भ मे प्रति सप्ताह तथा बाद में प्रति माह भार ज्ञात करते रहते हैं।

बछड़े के पालन-पोषण की विधियां

प्रायः बच्चों को पालन-पोषण की दो विधियां हैं—

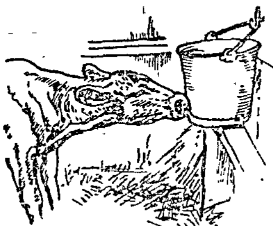
(1) प्राकृतिक पालन विधि (2) कृत्रिम पालन विधि

(1) प्राकृतिक पालन विधि (Natural Rearing Method)—यह विधि प्रायः भारतीय पशुपालकों द्वारा अपनाई जाती है। इसमे बच्चे को मां के साथ रखकर उसके थनों को दूध चुसाकर पाला जाता है। दूध बच्चे को दोहन से पूर्व तथा बाद मे पिलाते हैं। बच्चे को 1-1.5 वर्ष तक गाय के साथ पालते हैं।

(2) कृत्रिम पालन विधि (Weaning System)—इस विधि में बच्चे को जन्म के बाद से ही अलग रखते हैं। खीस भी बोतल से पिलाई जाती है।

मां से अलग किए बच्चे को दूध बनावटी थनों, बोतल, बाल्टी की सहायता से पिलाया जाता है। दूध को बाल्टी में भरकर बच्चे का मुंह डालते हैं तथा

हाथ की बीच की अंगुली की सहायता से दूध पिलाने का प्रयास करते हैं। दूध पिलाने वाली बाल्टी जिसमे, निपिल लगाकर दूध पिलाया जाता है।



चित्र—बच्चे को मां से अलग करके दूध पिलाना

लाभ—(1) दूध का सही उत्पादन मालूम हो जाता है जिसके अनुसार पशु का आहार नियत किया जाता है।

(ii) मां के दूध से लगने वाले रोगों से बच्चा मुक्त रहता है।

(iii) अचानक मां की मृत्यु हो जाने पर बच्चे को आसानी से पाला जा सकता है।

(iv) शुद्ध दूध प्राप्त होता है।

हानि—(i) अचानक बच्चे को मां से अलग कर देना अस्वाभाविक है।

(ii) बच्चे की अनुपस्थिति मे मां के थनों से दूध निकालने मे काफी मेहनत करनी होती है।

(iii) बच्चे को अलग से पालने मे काफी परिश्रम करना पड़ता है तथा अतिरिक्त बर्तन आदि की व्यवस्था करनी पडती है।

बच्चों की देखभाल (Core of Young Stock)

नये बच्चों की उचित देखभाल एवं पालन-पोषण के लिए निम्न बातों का ध्यान रखना आवश्यक है—

1. समूह में बांटना (Grouping of yong stock)—सभी बच्चों को एक साथ नहीं रखना चाहिए इससे बीमारी की छूत फैलने का भय रहता है तथा रोग फैल जाने पर नियंत्रण कठिन हो जाता है। इनको उम्र तथा खिलाने की आवश्यकतानुसार अग्रलिखित समूहों में बांटते हैं—

समूह 'अ'—जन्म से चार सप्ताह की आयु तक—सिर्फ दूध पीते हैं।

समूह 'ब'—एक माह से चार माह की आयु तक—शुद्ध दूध और मक्खनियाँ दूध पीते हैं।

समूह 'स'—चार माह से छः माह की आयु तक मक्खनियाँ दूध पीते हैं।

समूह 'द'—छः माह से एक वर्ष की आयु तक हरी घास, चारा-दाना खाने लगते हैं।

2. आवास (Accommodation)—बच्चे के रहने की जगह का प्रबन्ध उस स्थान की स्थिति एवं मौसम पर निर्भर करती है। 10 बच्चों के समूह के लिए हवादार, प्रकाशयुक्त, 100 वर्ग मीटर का ढका स्थान पर्याप्त होता है। घूमने के लिए इन गृहों के अलावा खुला, सुरक्षित बाड़ा होना चाहिये।

3. भोजन (Feeding)—बच्चों की उम्र एवं भार के अनुसार भोजन-व्यवस्था करनी चाहिए। छोटे बच्चों को केवल दूध, उनसे बड़े दूध और सेपरेटा तथा इसके बाद चारा-दाना दिया जाता है। बच्चो को भार का 1/10 भाग दूध 2.5-3 कि.ग्रा. दिन में 2-3 बार में पिलाया जाता है।

भोजन के लिए निम्न बातों का ध्यान रखना आवश्यक है—

(i) सारे बर्तन साफ और जीवाणुरहित होने चाहिए।

(ii) बच्चों को आहार समय-समय पर बराबर अवकाश में कई बार में देना चाहिए।

(iii) मौसम के अनुसार दूध को गरम कर लेना चाहिए।

(iv) बचा हुआ भोजन दुबारा नही देना चाहिए।

(v) बर्तनो को प्रयोग के बाद प्रातः और सायं साफ करना चाहिए।

बच्चों को भोजन निम्न तालिका के अनुसार देना चाहिए—

बछड़े-बछियों के लिए आहार

बछड़े की आयु	सम्पूर्ण दूध (Whole Milk) (कि. ग्रा.)	सेपरेटा (Skimmed Milk) (कि.ग्रा.)	पिसा हुआ दाना (कि.ग्रा.)	सूखी घास (Hay) (कि.ग्रा.)	हरा चारा या साइलेज (कि.ग्रा.)
1 दिन	माँ का थन पिलाना	—	—	—	—
2–4 दिन	2.27 से 2.5 खीस	—	—	—	—
5–7 दिन	2.72 खीस	—	—	—	—
7–14 दिन	3.2 खीस	—	—	—	—
15वाँ दिन	2.72 ,,	0.91	—	—	—
16वाँ दिन	2.72	0.91	—	—	—
17वाँ दिन	1.81	1.81	—	—	—
18वाँ दिन	1.81	1.81	—	—	—
19वाँ दिन	0.91	2.72	—	—	—
20वाँ दिन	0.91	3.18	—	—	—
21वाँ दिन	0.45	3.63	—	—	—
चौथा सप्ताह	—	4.54	0.11	0.23	—
पाँचवाँ सप्ताह	—	4.54	0.23	0.23	—
छठा सप्ताह	—	4.54	0.34	0.23	—
सातवाँ सप्ताह	—	5.45	0.45	0.45	—
आठवां सप्ताह	—	5.45	0.56	0.68	—
नवाँ सप्ताह	—	5.45	0.68	0.91	—
दसवाँ सप्ताह	—	6.35	0.68	0.91	—
ग्यारहवाँ सप्ताह	—	6.81	0.91	0.91	—
बारहवाँ सप्ताह	—	6.81	0.91	1.36	1.81
4–6 माह	—	5.45	1.36	1.81	3.07

प्रारम्भ में बछड़े को 12 से 16 घण्टे भूखा रखकर दूध को तसले या बाल्टी में भरकर अंगुली या निपिल की सहायता से पिलावें। जन्म के दो हफ्ते तक सम्पूर्ण दूध दिन में 3-4 बार पिलायें। इसके बाद मक्खनियाँ दूध दिया जा सकता है। दूध परिवर्तन में दस्त होने पर बछड़े को 24 घण्टे भूखा रखकर उबला पानी तथा अरण्डी का तेल 50 ग्राम देवें। दूध तथा आहार के साथ थोड़ी मात्रा में प्रति जैविक पदार्थ या खनिज मिश्रण देना इनके विकास एवं वृद्धि के लिए अच्छा रहता है।

प्रारम्भ में हरे चारे जैसे बरसीम, लोबिया, लूसर्न खिलाना चाहिए बाद में चारे में एक भाग सूखा चारा और दो भाग हरा चारा मिलाकर खिलाया जा सकता है।

दाने के मिश्रण मे एक भाग चने का दलिया, दो भाग भूसी और एक भाग खली मिलाना चाहिए।

नमक या खनिज लवण 5-10 ग्राम बच्चे के मुँह मे प्रातः सायंकाल देना चाहिए।

छोटे बच्चों को सर्दियों में 3-4 बार तथा गर्मियों मे 5-6 बार ताजा स्वच्छ पानी पिलाना चाहिए।

एक वर्ष के बच्चे को 200-500 ग्राम दाना तथा डढ़ वर्ष तक के बच्चे को 1.0-1.5 कि. ग्रा. दाना खिलाना चाहिए।

4. रोगों से सुरक्षा—बच्चों के पेट मे गर्भावस्था मे माता से आंतों में कीड़े पहुँच जाते हैं। इनसे बचाव के लिए पैदा होने के तीसरे, सातवें और पन्द्रहवें दिन इन कीड़े मारने के लिए 10 ग्राम पिपराजीन या 30 ग्राम फिनोथिश पानी मे मिलाकर पिलाना चाहिए।

शरीर पर जूँ, कलीली आदि से बचाव के लिए 0.15% मैलाथियान का घोल छिड़क कर थोड़ी देर बाद अच्छी तरह नहला देना चाहिए।

बच्चों को दूध के अच्छी तरह से पाचन न होने से दस्त हो जाते हैं। अतः इन्हें निश्चित मात्रा से अधिक दूध न पिलावें। पहिले मास मे शरीर भार का 1/10 भाग, दूसरे माम में 1/15 भाग तथा तीसरे मास मे 1/20 भाग ही दूध पिलावें। दस्तों से बचाव के लिए 1.0 ग्राम होस्टासाइक्लीन या ओरयोमाइसिन पाउडर प्रतिदिन किसी भी समय दे देना चाहिए।

उम्र के अनुसार विभिन्न रोगों के टीके वर्षा ऋतु से पूर्व लगवा देना चाहिए।

5. बछड़ों एवं बछियों को पृथक करना—6-8 माह की उम्र के बाद बछड़े और बछियों को अलग झुण्ड में रखना चाहिए और इनकी उचित देखभाल करनी चाहिए।

6. भार ज्ञात करना—सारे झुण्ड के बच्चों का भार जन्म के 8 घंटे के अन्दर, प्रति सप्ताह एक वर्ष तक तथा इसके बाद प्रति माह भार ज्ञात करके रजिस्टर में अंकित करना चाहिए।

जन्म के समय गाय के बच्चों का भार 21-25 कि. ग्रा. तथा भैंस के बच्चे का भार 32-36 कि.ग्रा. होता है।

इन क्रियाओं के अतिरिक्त बच्चों के प्रतिदिन व्यायाम, सफाई, सींगरोधन, वधियाकरण, अंकन करना आदि क्रियाएं अत्यन्त आवश्यक हैं। इनका विस्तृत वर्णन आगे अध्यायों में किया गया है।

बछियों का पालन-पोषण (Care of Hiefers)

'Child is the father of the man' इसका अर्थ यह है कि एक बालक आगे चलकर मनुष्य बनता है। अतः एक बालक मे जो गुण जन्मजात उपस्थित रहते हैं, उनके विकसित होने पर वह मनुष्य का रूप धारण कर लेता है। इसी से आज जो बछिया है वह विकसित होकर कल एक गाय बनेगी और गाय के ऊपर दूध देने की क्षमता और अच्छे बच्चे जनने की क्षमता इस बात पर निर्भर करती है कि उसको किस प्रकार देखरेख एवं पोषण किया गया है।

सामान्यतया 9 माह की उम्र से लेकर जब तक वह बच्चा नही देती है, बछिया कहलाती है। यह अवस्था $1\frac{3}{4}$ से 3 वर्ष तक की है परन्तु अच्छी देखरेख एवं पोषण से ये 1.5 वर्ष की आयु मे सांड के पास जाने योग्य हो जाती है।

आवास—6 माह की उम्र के बाद झुण्ड को बछड़े तथा बछियों मे पृथक कर देते हैं। इनको खुले, हवादार, सुरक्षित अलग-अलग बाड़े म रखते हैं। प्रत्यक बछिया के लिए 2 वर्गमीटर स्थान पर्याप्त है। पक्के फर्श पर भूसे या पुआल की बिछाली बिछा देना चाहिए। फर्श की नियमित सफाई करना आवश्यक है।

भोजन—6 माह की उम्र के बाद उनके शरीर भार के अनुसार आहार देना चाहिए जिसमें शरीर वृद्धि के लिए आवश्यक तत्व, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, खनिज तथा विटामिन्स समुचित अनुपात मे होने चाहिए।

इनको नियमित रूप से 1-1.5 कि. ग्रा. दाना देना चाहिए तथा भार के अनुसार चारे, आधा भाग सूखा तथा आधा भाग हरा चारा, देना चाहिए। प्रतिदिन 30 ग्राम नमक या 30 ग्राम अस्थि चूर्ण देना चाहिए। पीने के लिए पर्याप्त स्वच्छ जल का प्रबन्ध होना चाहिए। इनको चरागाह मे भेजना सर्वोतम है जिससे हरे चारे के अलावा व्यायाम हो जाता है।

बीमारियों से सुरक्षा—इनको बीमार पशुओ से अलग रखना चाहिए तथा प्रतिवर्ष संक्रामक रोगो से बचाव के लिए टीके लगवाने चाहिए।

गाभिन कराना—बछिया के ऋतुमती होने पर उन्नतशील सांड या कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र पर ले जाकर गाभिन करा लेना चाहिये। बछिया के बयाने तक गर्भवती गाय की भांति ही उचित देखभाल करनी चाहिये। गर्भावस्था म बछिया के शरीर की सफाई के बाद दिन मे एक बार उसके अयन तथा थनो की मालिश करनी चाहिये जिससे ये अच्छी तरह से विकसित हो जावे और ब्याने पर दूध निकालने मे बछिया को कोई कठिनाई का सामना नही करना पड़ता है।

उससे नम्र व्यवहार करना चाहिये तथा इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिये कि वह दूसरे व्यक्ति से भी संभाली जा सके।

ब्याने पर उचित देखभाल—बछिया के ब्याने के बाद गाय की भांति देखभाल करनी चाहिये। प्रारम्भ में अयन-थनों की मालिश करने से दूध निकालने में परेशानी नहीं होती है तथा बच्चे को भी दूध पिलाने में आसानी रहती है।

प्रश्न

1. बछड़ों को अंकित करना जो दूर से पढ़ा जा सके—इस समस्या का समाधान कैसे करोगे ?
2. नवजात बछड़ों को 6 माह तक खिलाने के लिये एक समुचित योजना बनाइये। उसका पालन पोषण करते समय आप कौन-कौन सी सावधानियों का ध्यान रखेंगे ?
3. माँ से अलग बच्चे की देखभाल एवं भोजन की व्यवस्था कैसे करोगे ?
4. बछड़ों को पालने की विभिन्न विधियों के नाम लिखिये। इनमें से सबसे अच्छी विधि का वर्णन कीजिये।
5. बछड़े को माँ से अलग करने के लाभ-हानियों का वर्णन कीजिए।
6. आप बछड़ों की देखभाल कैसे करेंगे ?

युवा सांड की देखभाल
(Care of Young Bull)

'Bull is the half of the herd ? अर्थात् अकेला सांड आधे झुण्ड के बराबर है।' इस कहावत से तात्पर्य है कि सांड वंशवृद्धि मे बहुत सहयोग देता है। एक गाय वर्ष मे एक ही बच्चा देती है जबकि सांड औसतन एक वर्ष में 40-50 गायों को गाभिन करता है। अतः सांड की प्रारम्भ से ही उचित देखभाल करना चाहिये। निम्न बातों पर ध्यान देना आवश्यक है—

सांड के बचपन की देखभाल—जिस बछड़े को सांड बनाना है उसे 6 माह की उम्र से ही समूह से अलग कर देना चाहिये, उसे विशेष प्रकार का आहार देना चाहिये जिससे यह शारीरिक विकास कर शक्तिशाली हो जावे। एक वर्ष की आयु मे नाक मे छल्ला पहना देते हैं।

निवास स्थान—सांड को झुण्ड से अलग सुरक्षित, आरामदायक स्थान में रखना चाहिये। इसके लिये 10 वर्गमीटर आकार का कक्ष जिसमें 4'×7' आकार का दरवाजा होना चाहिये। कक्ष मे चारे की नांद तथा पानी पीने की समुचित व्यवस्था होनी चाहिये। इससे लगा ढंके स्थान का तिगुना स्थान का खुला सुरक्षित बाड़ा होना चाहिये जिसके चारों ओर 1·20 मीटर ऊँची दीवाल या मज़बूत बाड़ होनी चाहिये। बाड़े के बीचों बीच या एक किनारे प्रवेश द्वार हो। खुले स्थान में छायादार वृक्ष अच्छा रहता है।

सांड का भोजन—4-5 माह की आयु के बाद सांड बनाने वाले बछड़े को झुण्ड से अलग करके वही भोजन दिया जाता है जो बछड़े को दिया जाता है। एक युवा सांड को 2-3 कि ग्रा. दाना देना चाहिये। आहार में सूखी घास, भूसा, फलीदार हरे चारे, दाने, नमक तथा मछली का चूर्ण शामिल करना चाहिये। अच्छे प्रजनन के लिये विटामिन 'ए' की पूर्ति के लिये हरा चारा अधिक मात्रा में देना चाहिये। इस बात का अवश्य ही ध्यान रखना चाहिये कि शरीर पर चर्बी इकट्ठी न हो जावे, इस प्रकार के सांड की कामेच्छा (Libido) कम हो जाती है।

सांड से सेवा—अच्छी तरह देखभाल करने पर एक वर्ष बाद ही प्रजनन योग्य हो जाता है परन्तु पहिले वर्ष गाभिन की दर एक प्रति सप्ताह हो

वर्ष यह दर बढाई जा सकती हैं। प्रतिवर्ष 60-70 से अधिक गायों को गाभिन नही कराना चाहिये। अधिक सेवा से सांड की आयु कम हो जाती है। अच्छी देखभाल करने पर यह 14 वर्ष की आयु तक अच्छी सेवा दे सकता है।

गाय को गाभिन कराने के लिये गाय को क्रेट या अरगड़े मे फसाकर रखना चाहिये तथा साड को दोनों ओर रस्सी से बांधकर छोड़ना चाहिये।

व्यायाम—साड को प्रतिदिन व्यायाम कराना चाहिये अन्यथा शरीर पर चर्बी एकत्रित होने से इसकी प्रजनन शक्ति कम हो जाती है तथा इसके नपुंसक होने का भय रहता है।

व्यायाम के लिये बाडे मे रेत या मिट्टी का ढेर बना देते हैं जिस पर वह चढता उतरता है। चूने की चक्की में चलाते हैं। नाक मे पड़े छल्ले मे होल्डर फसाकर 1-2 कि.मी. तेज दौड़ाना चाहिये।

सांड से व्यवहार—साड से सदैव दया, प्रेम का व्यवहार करना चाहिये प्रतिदिन प्रातः शरीर पर ब्रश (खुरहरा) करना चाहिये तथा दोपहर मे स्वच्छ जल से नहलाकर शरीर पोछकर सुखा देना चाहिये।



प्रश्न

1. एक सांड को एक दिन के भोजन में क्या-क्या व कितनी-कितनी मात्रा मे दोगे तथा व्यायाम के लिए क्या व्यवस्था करोगे ?
2. सांड की देखभाल एवं भोजन व्यवस्था पर प्रकाश डालिये।
3. साड को व्यायाम क्यों कराया जाता है ? स्पष्ट कीजिए।
4. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए—
   (i) सांड को छल्ला पहनाना।
   (ii) सांड को व्यायाम कराना।



अध्याय- 13

पशुओं की सुरक्षा एवं प्रवन्ध सम्बन्धी विभिन्न क्रियायें
(Different Management Practices)

पशु प्रवन्ध से आशय है कि वे पूर्ण स्वस्थ एव अधिक उत्पादनशील रहे। गाय की अच्छी देख-रेख से उसकी दूध देने की क्षमता बढती है। बछड़े-बछियो की अच्छी देख-रेख से कार्यशील बैल एव अच्छी उत्पादक गाय बनती है। इसके लिये निम्न क्रियाओ का यथासभव किया जाना अत्यन्त आवश्यक है—

1. खुरहरा करना
(Grooming)

खुरहरा करने का अर्थ ब्रुश, खुरेरा आदि से पशु शरीर की सफाई करना है। पशु जो गोशाला मे ही बाँध कर पाले जाते हैं और चरने नही जाते है, उनके लिये यह आवश्यक क्रिया है।

उद्देश्य – (i) पशु की त्वचा साफ होकर चमकने लगती है जिससे वह अच्छा दिखाई देता है।

(ii) शरीर के बेकार बाल, खुरण्ट (खोरी) आदि साफ हो जाती है।

(iii) रक्त परिसंचरण अच्छा और तेज हो जाता है।

(iv) शरीर पर होने वाले पर जीवी, छूत के कीडे, किलीली (Ticks) जुयें आदि दूर हो जाते हैं।

(v) शरीर पर चोट आदि का पता लग जाता है।

प्रयुक्त होने वाले ब्रुश—निम्न प्रकार के ब्रुश उपयोग मे लाये जाते है—

(i) डाण्डी ब्रुश (Dandy Brush)—यह पीले, मट मैले, लम्बे सख्त रेशों का बना होता है, शरीर की सफाई अच्छा करता है।

(ii) बाडी ब्रुश (Body Brush)—यह वानस्पतिक रेशों के बने होते हैं, एक ओर हत्था लगा होता है जिससे यह फिसलता नही है।

(iii) घास-फूस का ब्रुश (Wish Brush)—सूखी घास, कांस, मूंज, पुआल की 15–20 से.मी. लम्बी रस्सी को बटकर लपेटकर गुफनी के आकार का जाल बना लेते है।

(iv) लोहे के ब्रुश (Curry Comb)--इसमें लोहे की खड़ी कटी हुई पत्तियां होती हैं। यह प्राय. घोड़ा तथा पशुओं के पैरा मे खुरहरा करने के काम आता है।

खुरहरा करने की विधि--सर्वप्रथम पशु के समीप जाकर उसके शरीर को पुचकारते हुये हाथ फेरते हुये थोड़ा सा थपथपाते हैं। जिससे वह व्यक्ति को पहिचान लेवे। पशु की बांई ओर जाकर हाथ मे पकड़े डाण्डी ब्रुश से गर्दन से खुरहरा प्रारम्भ करते हुये पीछे की ओर जाते है। ब्रुश को बालो के झुकाव की ओर करना चाहिये। पुट्ठो पर लगे मल-मूत्र को ब्रुश से आगे-पीछे अच्छी तरह साफ कर देना चाहिये। ब्रुश मे गदगी भरने पर पशु के थोड़े पीछे जाकर हाथ से झाड़ देना चाहिए या धो देना चाहिए।

इसी प्रकार पशु के दांई ओर आकर पूरे शरीर पर खुरहरा करना चाहिए। शरीर की सफाई के बाद चारो पैर तथा पूंछ पर ब्रुश करना चाहिये। पशु के आंख, नाक, कान, मुंह के पास ब्रुश नही करना चाहिये। आवश्यकतानुसार घास-फूस (Wisp) ब्रुश से पशु के शरीर को मल देना चाहिए। इसके बाद मुलायम ब्रुश या कपड़े से शरीर को साफ कर देना चाहिए।

पशु के अयन की सफाई हल्के कीटाणुनाशक पोटेशियम परमेगनेट के घोल से धोकर साफ जल से धो देना चाहिए। अन्त मे स्वच्छ जीवाणुरहित तौलिए से अयन, थनों को पोछकर सुखा देना चाहिए।

सावधानियां—(i) खुरहरा नियमित व्यवस्थित ढंग से कम से कम समय मे करना चाहिए।

(ii) खुरहरा के समय व्यक्ति को सजग रहना चाहिए जिससे पशु पैर और सींग आदि न मार सके।

(iii) खुरहरा करने वाले ब्रुश को सावधानी से रगड़ना चाहिए जिससे पशु की खाल न छिल सके।

(iv) शरीर के बालो के झुकाव की दिशा की ओर ब्रुश करना चाहिए तथा शरीर का कोई भी भाग बिना खुरहरा के न छूटने पावे।

(v) खुरहरा पशुशाला से बाहर दूध दुहने के कम से कम एक घण्टे पूर्व करना चाहिए जिससे धूल आदि दूध को गंदा न कर सके।

2. पशुओं को पहिचान के लिए चिन्हित करना
(Marking Animals for Identification)

प्राचीनकाल से ही पशुओं को पहिचान के लिए किसी भी प्रकार के पहिचान के चिन्ह बना देने की प्रथा चली आ रही है। पशुओं को पहिचान के लिए नदी, इष्टदेव, स्थान आदि के नामो से पुकारा जाता है परन्तु यह व्यवस्था पशु की संख्या कम होने पर ही सभव है। अधिक संख्या होने पर पशुओ को पहिचानना एक समस्या है। पशुओं को पहिचान के लिए कई विधियाँ प्रयोग में लाई जाती हैं। ग्रामीण भागों मे इनका प्रयोग नही के बराबर है परन्तु सरकारी डेयरी फार्म पर विशेषतौर से चिन्हित किया जाता है।

विधियाँ--(i) दागना

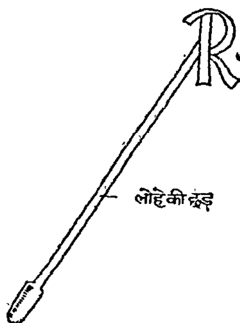
(ii) गोदना

(iii) कान मे निशान या छेद बनाना

(iv) गले मे नम्बर डालना

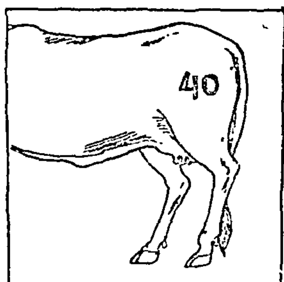
(v) छल्ला पहिनाना

(1) दागना (Branding)--पशुओं को पहिचान के लिए लोहे के बने अक्षर, नम्बर आदि प्रयुक्त किये जाते है। इन अक्षरों या नम्बरों को उठाने के



लिए 30-40 से. मी. लम्बा हत्था लगा होता है, इसे दागने का सेट कहते हैं। इस विधि से पशुओं को दो तरीकों से नम्बर दागे जाते हैं--

(i) गर्म विधि से दागना (Hot Branding)--नम्बर लगाने के लिए पिछले पुट्ठे का निचला भाग या जांघ के ऊपर का स्थान उपयुक्त है। इस स्थान



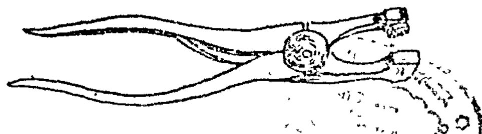
के बाल कैंची द्वारा काटकर साफ करके कार्बोलिक लोशन लगा देते है। नम्बरो को जो लगाने है, अंगीठी पर गर्म कर लेते हैं। अब पशु को गिराकर वश मे कर लेते है, फिर गर्म नम्बरो को पकडकर पशु के शरीर पर निश्चित स्थान पर लगा देते है। दागे स्थान पर कपूर आॅयल लगाते रहते हैं, कुछ समय बाद इस स्थान की खाल सूख कर हट जाती है और नम्बर साफ दिखाई देने लगता है, इस पर अलसी, अरण्डी या कपास का तेल लगाते रहते हैं।

(ii) ठण्डी विधि से दागना (Cold Branding)--विशेष प्रकार का रासायनिक पदार्थ ब्राण्डम तैल, ब्राडिनक्स, कार्बोलिक अम्ल मे नम्बरो को डुबोकर पशु के शरीर के निश्चित स्थान पर दाग देते हैं जिससे त्वचा जलकर नम्बर पड जाते हैं। कुछ समय बाद इसकी त्वचा सूखकर उतर जाती है जिससे नम्बर साफ दिखाई देने लगते है।

लाभ--(i) ये चिन्ह पशु के जीवन भर बने रहते है तथा बदले नही जा सकते है।

(ii) पशु को दूर से ही पहिचाना जा सकता है।

(2) गोदना (Tatooing)—गोदने के लिये विशेष प्रकार की मशीन, जो पंचिंग मशीन की भाँति होती है, मे काटेदार नम्बर विशेष प्रकार रसायन मे डुबोकर काम मे लाये जाते है।



गोदने के लिये उपयुक्त स्थान कान के अन्दर शिराओं के मध्य बिना बाल ला भाग है। इसे स्प्रिट से साफ कर के नीला रसायन (Tatooing Ink) लगाते हैं। नम्बरों पर नीला रसायन लगाकर निश्चित स्थान पर मशीन को दबाते हैं, इस प्रकार बुंदकीदार निशान बन जाते हैं।

यह विधि सरल और कम कष्टप्रद है परन्तु नम्बरों को देखने के लिये शु के पास जाना पड़ता है।

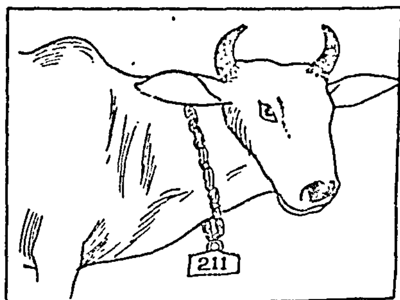


(3) कान में निशान या छेद बनाना (Ear Notching)—यह कम आयु के बछड़े-बछियों, बकरी आदि में अपनाई जाती है। जन्म के कुछ समय बाद इनके कानों में कैंची या इसी प्रकार के यंत्र से इच्छानुसार निशान बना देते हैं तथा टिंचर आयोडीन लगाते रहते हैं।

बड़े पशुओं में यह कष्टप्रद विधि है। पशु के कान कटने से वह सुन्दर नहीं दिखाई देता है।-

(4) गले में नम्बर डालना (Taging)—पशु के गले में जंजीर, चमड़े के पट्टे, रस्सी में धातु के नम्बर पहिना देते हैं।

यह सरल और अच्छी विधि है परन्तु पशु के आपस में लड़ने से टूट कर गिर जाते हैं तथा बदले भी जा सकते हैं।



(5) छल्ला पहिनाना (Ringing)—पशुओं के पैरों में धातु के बने हुये छल्ले पहना देते हैं जिन पर नम्बर खुदे रहते हैं इनको उम्र बढ़ने के साथ बदलते रहते हैं। पहिचान के लिये पशु के समीप जाना होता है।

101

इन विधियों को बड़े पशुओं में काम आती हैं।

मुर्गों में निशान लगाना—इन पक्षियों को पहिचान के लिये पंख या टाँग में अल्यूमीनियम के बने नम्बर के छल्लों को पहिना दिया जाता है।

भेड़-बकरियों में निशान लगाना—पहिचान के लिये गोदना, गले में नंबर पहिनाये जाते हैं। पूँछ की भीतरी सतह में नम्बर लगाने की प्रथा अधिक प्रचलित है।

चिन्हित करने से लाभ--(i) पशु को आसानी से पहिचाना जा सकता है।
(ii) चोरी या खो जाने पर आसानी से ढूंढ़ा जा सकता है।
(iii) चिन्हित बच्चों से इनके पालन-पोषण मे आसानी रहती है।
(iv) दुग्ध अभिलेखन मे सुविधा रहती है।
(v) रोग उन्मूलन में टीके लगाने के बाद चिन्हित पशु अन्य पशुओं से अलग किये जा सकते हैं।
(vi) प्रजनन हेतु छोड़े सांड तथा इनसे पैदा संतति को चिन्हित करने से अन्य पशुओं मे से पहिचाना जा सकता है।

3. बछड़ों को सींगरोधन करना
(Dehorning of Calves)

भारत में राजकीय फार्मों पर ही यह विधि काम मे लाई जाती है, जबकि विदेशों में आम प्रचलित है। सींग पशुओं को प्राकृतिक देन है इनसे उनकी जातीय विशेषता और सुन्दरता बढ़ती है। अनेक कारणों से इनके सीग उतार दिये जाते हैं या उगने ही नही दिये जाते हैं।

लाभ--(i) पशु आपस मे लड़कर एक-दूसरे को हानि नहीं पहुँचा पाते हैं।
(ii) ताकतवर पशु कमजोर को हानि नही पहुँचा पाते हैं।
(iii) स्थान की बचत होती है, कमजोर, शक्तिवान, छोटे-बड़े पशु एक साथ रखे जा सकते हैं।
(iv) पशुशाला खराब नही होती है।
(v) पशुओं के गिराने पर सींग के टूटने का भय नही रहता है।
(vi) सीग कैंसर रोग का भय नही रहता है।

हानि--(i) पशु की सुन्दरता नष्ट हो जाती है और वे भद्दे दिखाई देने लगते है।
(ii) पशु की जातीय विशेषता का ज्ञान भलीभाँति नही हो पाता है।

समय—यह कार्य किसी भी समय किया जा सकता है। बछड़े-बछियों जिनकी उम्र 15–21 दिन हो, सीग रोधन करना अच्छा रहता है क्योकि पशुओं की आयु अधिक होने पर सीगरोधन करना कठिन तथा कष्टप्रद हो जाता है।

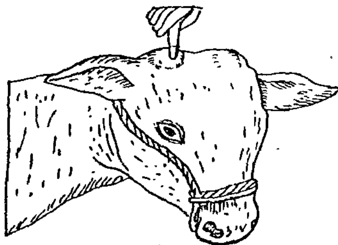
सींगरोधन की विधियां—निम्न विधियां प्रयोग में आती हैं—

(1) गर्म लोहे से सीग रोधन
(2) डिहार्नर द्वारा सीग रोधन
(3) कास्टिक छड़ द्वारा सींगरोधन

(1) गर्म लोहे से सींगरोधन (Dehorning by Hotiron rod)—एक 60-75 से. मी. लम्बा हत्थेदार नुकीले लोहे की छड़ होती है जिसको आग पर गर्म करके सीग की कलिका को दाग देते हैं जिससे वह नष्ट हो जाती है। पशु को काफी कष्ट होता है तथा उसके जलने का भय रहता है। यह विधि कम ही काम मे लाई जाती है।

(2) डिहार्नर द्वारा सींगरोधन—बछड़े को गिराकर या खड़ी दशा मे अच्छी तरह से वश में कर लेते हैं। धातु के बने सींगरोधन यंत्र से सीग की जड़ से एक से. मी. नीचे से उखाड़ा जाता है या काट दिया जाता है। रक्त प्रवाह को रोकने के लिए टिंचर बेंजोइन या टिंचर फेरिपरक्लोर मे डूबी हुई रख देते हैं। यह साधारण विधि है पर कष्टदायक है। कुछ दिन बाद सीग कटे स्थान पर खाल आ जाती है और सीग नहीं निकलता है।

(3) कास्टिक छड़ द्वारा सींगरोधन (Dehorning by Caustic Stick)—यह सर्वाधिक प्रचलित विधि है यह जन्म के एक या दो सप्ताह आयु तक अपनाई जा सकती है। इसमें सीग के आस-पास के बाल कैंची से काटकर इसके चारों ओर वे सलीव लगा देते हैं। कास्टिक छड़ को कागज, कपड़े से पकड़कर या होल्डर (Caustic Holder) मे फिट कर लेते हैं। छड़ प्रयोग से पूर्व बच्चे के कान, नाक, आंख पर मोम या वेसलीन लगा देते हैं जिससे कास्टिक मिला खून इन अंगो को हानि न पहुंचावे। अब छड़ को पानी मे गीला करके सीग की कलिका (Horn-Bud) के चारो ओर रगड़ते हैं जिससे वह स्थान पहिले लाल पड़ जाता है और बाद मे ऊपर की कोशिकाएँ सफेद हो जाती है, छड और रगड़ने से खून आने लगता है। अब रगड़ना बन्द करके सफाई करके बोरिक पाउडर को वेसलीन मे



मिलाकर या जिंकआक्साइड मलहम लगाकर पट्टी बांधते रहते हैं, 20-25 दिन में ठीक हो जाता है।

(4) डिहार्निंग आरी द्वारा सींगरोधन (Dehorning by Dehorning Saw)—पशु के अधिक सींग बढ़ जाने पर या इनमें विशेष प्रकार की बीमारी होने पर दांतेदार आरी द्वारा सींगों को काटने में पशु को कष्ट होता है।

इन विधियों के अतिरिक्त कुछ निम्न विधियां भी प्रयुक्त की जाती हैं—

इलेक्ट्रिक डिहार्नर—जहां पर बिजली की सुविधा होती है वहां ये काम में लाए जा सकते हैं। बिजली का करण्ट चालू करने पर डिहार्नर की सहायता से सींग को अलग कर देते हैं। कास्टिक सींगरोधन वाली सभी सावधानियां काम में लाते हैं, डिहार्नर शरीर के किसी अन्य भाग को न छुए।

रसायनिक डिहार्नर—यह सींगरोधन की रसायनिक विधि है इसमें विशेष रसायनिक पदार्थ फिलेक्सीबिल कोलोडियन घोल या पोल्डी हार्नर को सींग कलिका पर लेप करने से सींग आगे नहीं बढ़ता है, पशु को कोई कष्ट नहीं होता है।

4. बछड़ों को बधिया करना
(Castration of Calves)

बछड़े के अण्डकोषों (Testicles) को हाथ से पकड़कर देखा जावे तो प्रत्येक अण्डकोष एक पतली मंगोली नलिका द्वारा लटकता सा मालूम पड़ता है, यही वृषण रज्जु (Spermatic Cord) है, जिससे अण्डकोषों से निर्मित वीर्य मूत्र मार्ग से होता हुआ बाहर निकलता है। इसलिए वृषण रज्जु को काटकर या कुचल कर उसका अण्डकोषों से सम्बन्ध समाप्त करना 'बधिया करना' कहलाता है।

बधियाकरण से लाभ—(i) बधिया करने से पशु शक्तिशाली हो जाता है *क्योंकि जो शक्ति प्रजनन के कार्य में काम आती है। वह शरीर विकास में काम आती है।*

(ii) पशु का स्वभाव शान्त हो जाता है।

(iii) कृषि-कार्य करने की शक्ति बढ़ जाती है और वे अच्छे बैल बन जाते हैं।

(iv) पशु के शरीर में मांस की मात्रा बढ़ जाती है।

(v) अनुत्पादक और खराब नस्लों के पशुओं को बधिया करके नस्ल को सुधारा जा सकता है।

बधिया करने की आयु—सामान्यतया 1.5-2 वर्ष की आयु के बछड़ों को बधिया करना अच्छा रहता है। अधिक उम्र होने से उनके अण्डकोषों की त्वचा मोटी हो जाती है तथा वश में करना कठिन हो जाता है जिससे बधिया करने में परेशानी होती है। भेड़-बकरियों को एक माह आयु में बधिया करना चाहिए।

बधिया करने का समय—अक्टूबर-नवम्बर माह सर्वोत्तम है। वर्षा में बधिया करने से घाव देर में ठीक होता है।

बधिया करने की विधियां—बधिया करने की निम्नलिखित मुख्य विधियां हैं—

(1) ग्रामीण विधि (2) वैज्ञानिक विधि

(1) ग्रामीण विधि से बधिया करना (Indigenous Method of Castration)—इन विधियों को गांवों में अपनाया जाता है वहां पशुओं के अण्डकोषों को कई तरह से नष्ट कर देते है या बाहर निकाल देते हैं। पशु को गिराकर वश में कर लेते हैं फिर अण्डकोषों को पत्थर से कुचल देते हैं जिससे फोड़ा बनकर घाव बन जाता है। कुछ लोग दो लकड़ी लेकर अण्डकोषों को बीच में दबा लेते है और दूसरा लकड़ी से पीटकर अण्डकोष को फोड़ देते हैं। कहीं-कहीं अण्डकोषों को रस्सी से बाधकर खीचते हैं।

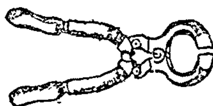
हानि – (1) पशु से बड़ा निर्दयता का व्यवहार होता है।

(2) पशु पूर्णरूप से बधिया नही हो पाता है।

(2) वैज्ञानिक विधि से बधिया करना (Scientific Method of Castration)—पशुओं को बधिया करने की निम्न वैज्ञानिक विधियां है—

(अ) रक्तहीन विधि द्वारा बधिया करना (Bloodless Method of Castration)—

(i) बर्डिजो कास्ट्रेटर द्वारा बधिया करना (Castration by Burdizzo Castrator)—'बर्डिजो कास्ट्रेटर' संडासी की तरह का विशेष प्रकार का स्टील का बना यंत्र होता है। पशु को जमीन पर गिराकर पिछले पैर की ओर खीचकर बांध देते हैं। बायें हाथ से अण्डकोषों को खीचकर स्प्रिट लगा देते हैं। दायें हाथ से कास्ट्रेटर के जबड़े में अण्डकोषों को एक-एक करके ऊपरी सिरे से 3-4 से.मी. नीचे दबा देते है, यह प्रक्रिया दो बार करते हैं जिससे वृषणरज्जु का आपस में सम्बन्ध टूट जाता है और अण्डकोष अण्ड को रक्त, भोजन और आक्सीजन न



मिलने से सूखकर बेकार हो जाते हैं। यह कार्य 2-3 मिनट में बिना कष्ट के हो जाता है।

भेड़ बकरियों को बधिया करने के लिए छोटा बर्डिजो कास्ट्रटर काम में लाया जाता है। घोड़ों तथा ऊँटों में बधिया करने के लिए 'इमैस्कुलेटर' 'क्लैम्प' काम में लाते हैं।

(ii) एलैस्ट्रेटर द्वारा बधिया करना (Castration by Elastrator)—छोटे बछड़ों को बधिया करने के लिए रबर का सख्त छल्ला (Hard Rubber Ring) एलैस्ट्रेटर की सहायता से अण्डकोषों में ऊपर की ओर चढ़ा देते हैं। जिससे रक्त संचार बन्द होने से अण्डकोषों में ऊपर की ओर चढ़ा देते हैं जिससे रक्त संचार बन्द होने से अण्डकोष सूख जाते हैं। इसमें समय कुछ अधिक लगता है पर कष्ट कोई नहीं होता है।

(ब) चीरा देकर बधिया करना (Removing Testes by Incision)—यह छोटे पशुओं में ही काम आती है। पशु के अण्ड को चीरा देकर अलग कर दिया जाता है जिसके लिए अनुभव तथा काफी कुशलता की आवश्यकता होती है। विधि कष्टदायक होने से पशु को छूत रोग होने का भय रहता है।

बधिया करने में सावधानियां—(i) बधिया कार्य गर्मी और वर्षा में न करके सर्दी में करना अच्छा रहता है।

(ii) स्वस्थ पशु को बधिया करना चाहिए।

(iii) पशु को सावधानी से जमीन पर गिराकर अच्छी तरह से वश में कर लेना चाहिए।

(iv) पशु को जननेन्द्रिय संबन्धी कोई रोग नहीं होना चाहिए।

(v) पूर्व स्प्रिट

(vi) बधिया करने से पूर्व पशु को 12 घण्टे तक भूखा रखना चाहिए।

(vii) पशु के स्वस्थ होने तक बधिया किये स्थान पर निरन्तर औषधि प्रयोग करते रहना चाहिए तथा पशु से कोई कार्य नहीं लेना चाहिए।

5. पशुओं को नहलाना
(Bathing of Animals)

प्रायः पशुओं को प्रतिदिन नहीं नहलाया जाता है। विशेष त्यौहार, मेले में बेचने तथा प्रदर्शन में ले जाने से पूर्व नहलाया जाता है फिर भी गर्मी के दिनों में प्रतिदिन ताजे पानी तथा सर्दी में गुनगुने पानी से सप्ताह में एक बार नहलाना स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद है।

लाभ—(i) शरीर पर लगी गंदगी साफ हो जाती है।

(ii) पशु साफ होकर चमकने लगते हैं।

(iii) गर्मी से आराम एवं शान्ति मिलती है।
(iv) कीटाणुओं का प्रभाव नष्ट हो जाता है।
(v) पशु से स्वच्छ उत्पादन मिलता है।

पशु को नहलाने से आधा घण्टा पूर्व खुरहरा करना चाहिए। सर्वप्रथम थोड़ा पानी डालकर शरीर गीला करके ब्रश से रगड़ते हैं फिर अच्छा टॉयलट साबुन पूरे शरीर में लगाकर कपड़े से रगड़ते है। बाद में पर्याप्त पानी से शरीर को धोकर साबुन के प्रभाव को दूर कर देना चाहिए। शरीर को सूखे तौलिए या खादी के कपडे से सुखा देना चाहिए।

पशु को प्रतिदिन साबुन लगाकर नही नहलाना चाहिए इससे त्वचा शुष्क हो जाती है। कभी-कभी शरीर पोछने के बाद तेल मे कपड़े को भिगोकर पूरे शरीर पर हल्का सा फेर देना चाहिए जिससे त्वचा चमकने लगती है।

6. पशुओं को पानी पिलाना
(Watering of Animals)

डेरी फार्म के पशुओ को पिलाना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि पानी भोजन का आवश्यक अंग है।

उपयोगिता--(i) भोजन पचाने में सहायक होता है।
(ii) मौसम परिवर्तन एवं बाहरी तापक्रम से शरीर का बचाव करता है।
(iii) विशेष उत्पादन जैसे दूध, मे सहायक होता है।

पशुशाला मे प्रत्येक दो शेड के बीच पानी की लम्बी पक्की दो नादें होनी चाहिए जिनमे नल लगे हों जिससे इनको खाली होने पर भरा जा सके।

बड़ी डेरियों मे पानी पीने के लिए बाहर बाउल्स (Bowls) लगे होते हैं जो दो प्रकार के होते हैं--

(1) इन बाउल्स मे परफोरेटिड प्लेट लगी होती है जिसे पशु थूथन से दबाता है जिससे प्लेट दबाते ही पानी आने लगता है और पशु पानी पी लेता है।

(2) इन बाउल्स मे एक किनारे पर प्रोजेक्शन्स होते हैं जो पशु की नाक के बांसे (Bridge of Nose) से दब जाता है। प्रोजेक्शन के दबते ही स्प्रिंग बाल्व खुल जाता है और बाउल्स मे पानी आने लगता है।

इन सभी पात्रो को प्रतिदिन नियमित रूप से साफ करके ताजे साफ पानी से भर देना चाहिए। कभी-कभी कीटाणुनाशक दवा पोटेशियम परमैंगनेट, ब्लीचिंग पाउडर डाल देना चाहिए।

पशु के मौसम के अनुसार 10-60 लिटर पानी प्रतिदिन आवश्यकता होती है जो पशु के स्वास्थ्य, उत्पादन, मौसम और चारे पर निर्भर करती है।

7. छल्ला पहिनाना
(Ringing)

साधारण तौर पर सांड, बछड़ों के छल्ला और नाथ डाली जाती है जिससे वे आसानी से वश में किये जा सकते हैं तथा कृषि कार्य, हल चलाने, गाड़ी खींचने आदि कार्यों को आसानी से कर सकते हैं।

आयु—नाथने या छल्ला पहिनाने की उपयुक्त आयु 6 माह से एक वर्ष की है।

छल्ला पहिनाना—छल्ला तांबा या अल्युमीनियम के दो अर्द्ध-चन्द्राकार का बना होता है, छल्ले को पेच से बन्द किया जाता है।

छल्ला पहिनाने के लिए पशु को अच्छी तरह वश में करके या दीवाल के सहारे खड़ा करते हैं। सीधे हाथ की बीच की अंगुली और अंगूठे की सहायता से नथुने के कार्टिलेज में, नाक के सिरे से 2.5-3 से.मी. ऊँचे, स्थान नियत कर लेते हैं। इस स्थान पर ट्रोकार कैनुला की सहायता से छेद कर देते हैं। ट्रोकार निकाल कर कैनुला लगा रहने देते हैं, छल्ले के नुकीले भाग को कैनुला में फंसाकर कार्टिलेज के बाहर निकाल लेते हैं। कैनुला हटाकर पेच से छल्ले को कस कर रेती से चिकना कर देते हैं और वैसलीन लगा देते हैं। पशु को दो सप्ताह तक काम में नहीं है तथा छल्ले में नहीं बांधते हैं। आयु बढ़ने के साथ छल्ले बदलते रहते हैं।

आजकल स्वयंभेदी छल्ले मिलते हैं जिनमें ट्रोकार कैनुला की आवश्यकता नहीं होती है।

नाथना—गाँवों में बछड़ों के नाथ डालने के लिये हिरन का सींग या इसी प्रकार का नुकीला यन्त्र काम में लाते हैं। छल्ले डालने की तरह बछड़े की नाक के कार्टिलेज में स्थान नियत करके सींग से छेद करके नाथ पहिना देते हैं तथा वही सावधानी काम में लेते हैं जो छल्ले पहिनाते समय ली जाती है।

8. पशुओं को व्यायाम कराना

पशुओं के अच्छे स्वास्थ्य एवं उत्पादन के लिये आहार व्यवस्था के साथ उनको व्यायाम कराना भी अत्यंत आवश्यक है।

उद्देश्य—(i) पशु का स्वास्थ्य अच्छा रहता है।

(ii) पशु-शरीर में रक्त संचार बढ़ जाता है।

(iii) पशु फुर्तीला एवं चुस्त रहता है।

(iv) बीमारियों का प्रभाव कम हो जाता है।

(v) पशु की पाचन शक्ति बढ़ जाती है जिससे उनसे अच्छा उत्पादन प्राप्त होता है।

विधियां—

(1) चरागाह में भेजकर—जो पशु चरागाह मे प्रतिदिन जाते हैं उनको हरे चारे के अतिरिक्त काफी अच्छा व्यायाम मिल जाता है। इससे उन्हें अलग व्यायाम कराने की आवश्यकता नहीं होती है।

(2) खुले बाड़ों में रखना—जो पशु चरागाह में चरने नहीं जाते हैं उनको पशुशाला में बने बाड़े में खुला छोड़ देना चाहिये जिससे वे अपनी इच्छानुसार घूम फिर, दौड़ कूद कर व्यायाम कर सकें। बाड़े मे छायादार नीम, पीपल, बरगद आदि का वृक्ष होना चाहिये जहां पशु आराम कर सकें तथा पीने के पानी की भी व्यवस्था होनी चाहिये।

(3) घुमाकर— गर्भवती गायों तथा सांडों को घुमाना अच्छा रहता है क्योंकि इनके झुण्ड में रहने से आपस मे झगड़ने तथा चोट लगने का भय रहता है। इन पशुओं को प्रातःकाल कम से कम 2 कि. मी. घुमाना चाहिये।

सांडों को चूने की चक्की या गाडी में जोतना चाहिये जिससे अनावश्यक चर्बी कम हो जाती है और वे कार्यशील हो जाते हैं।

बछड़ों के बाड़े में रेत का ऊंचा टीला बना देते हैं जिन पर बार-बार उतरने चढ़ने से बछड़ों का अच्छा व्यायाम हो जाता है। आजकल कुछ ऐसे उपकरण बनाये गये हैं जिनसे बछड़ों तथा सांड़ों का अच्छा व्यायाम हो जाता है।

9. दूध दुहना
(Milking)

दूध निकालना वह क्रिया है जिसके द्वारा अयन मे एकत्रित दूध थनों द्वारा बाहर निकाला जाता है।

दूध बनाना और निकालना एक प्रतिवर्ती कार्य (Reflexation) है, अतः ऐसा कोई कार्य नहीं होना चाहिये जिससे पशु गाय का जरा भी ध्यान न बटे। दूध उतारने के लिये गाय को उद्दीप्त (Stimuli) करते हैं और इस प्रकार तब तक करना चाहिये जब तक पूरा दूध प्राप्त न कर लिया जावे।

दूध उतारना (Let down) प्रतिवर्ती क्रिया है जो कि गाय के शरीर में उपस्थित 'पश्च पिट्यूटरी ग्रंथि' (Posterior Pituitary Glands) से 'आक्सीटोसिन' हार्मोन बनकर अयन में आने से इसकी मास पेशी मे संकोचन करके दूध उतार की उत्तेजना प्रदान करते हैं। छरण के बाद बच्चे को गाय द्वारा देखना तथा अयन को सहलाना दूध उतारने में सहायक होते है।

ऐसा अनुमान था कि दूध का निर्माण गाय के पासुरने (Stimulus of Suckling) या दुहने के समय अयन में होता है परन्तु यह बात वैज्ञानिकों द्वारा

गलत सिद्ध हो गई है। इसके अनुसार गाय के अयन में दूध का स्राव चौबीसों घण्टों होता रहता है। अयन में होकर प्रतिमिनट लगभग लिटर रक्त प्रवाहित होता है। इस प्रकार एक दिन रात से अयन में प्रवाहित रक्त की मात्रा 12960 लिटर बैठती है। दूध निर्माण के लिये रक्त का अयन से नियमित प्रवाह आवश्यक है। यदि कोई गाय 20 लिटर दूध दे रही है तो एक लिटर दूध के बनने में लगभग 648 लिटर रक्त प्रवाहित होगा।

गाय से दयालुता का व्यवहार एवं शांत वातावरण दूध की पूरी मात्रा निकालने में सहायक होते हैं। पूरा दूध निकालने का कार्य कम से कम समय 5–7 मिनट में कर लेना चाहिये क्योंकि हार्मोन्स इतने समय तक ही सक्रिय रहता है।

दूध गाय के ब्याने के 4 दिन बाद से प्रारंभ होकर गाय के सूखने तक चलता रहता है, इस अवधि को ब्यांत या दुग्ध काल (Lactation Period) कहते हैं।

दूध निकालने से पूर्व की तैयारी—

(1) पशु को चारा कम से कम आधा घंटे पूर्व खिला देना चाहिये।
(2) पशुशाला की सफाई, खुरहरा करने के कार्य दुहने से एक घंटे पूर्व करना चाहिये।
(3) गाय के पिछले भाग, अयन, पूछ आदि को मौसमानुसार गर्म पानी से अच्छी तरह साफ करके तौलिये से पोंछकर सुखा देना चाहिये।
(4) काम में आने वाले सभी बर्तन साफ एवं जीवाणुरहित होना चाहिये।
(5) ग्वाला साफ-सुथरा एवं छूत की बीमारी से मुक्त होना चाहिये।

दूध दुहने के नियम—

(1) नियमितता—गाय का दूध प्रतिदिन ठीक एवं निश्चित समय पर दुहना चाहिये। साधारणतया दूध को प्रातः एवं सायं निकाला जाता है। 10–20 लिटर दूध देने वाली गायों का दूध दिन में तीन बार निकालने पर दूध की मात्रा में 10% तक वृद्धि हो जाती है।

(2) स्वच्छता—दूध दुहने से पूर्व पशु पूर्णतया स्वच्छ हो। दुग्धशाला की सफाई कार्य 1/2 घण्टे पूर्व कर लेना चाहिये। प्रयुक्त सभी बर्तन साफ एवं जीवाणु-रहित हों तथा काम में आने वाला पानी साफ होना चाहिये।

(3) शांत वातावरण—दुग्धशाला और इसके आसपास का वातावरण बिल्कुल शांत होना चाहिये। दूध निकालते समय शोरगुल, तेज आवाज, अजनबी व्यक्ति के आ जाने से गाय चौंक जायेगी और इसका प्रभाव दूध निकालने की क्रिया पर होगा।

(4) दूध दुहने में शीघ्रता—गाय के दूध को कम से कम समय में दुहने का प्रयास करना चाहिये क्योंकि आक्सीटोसिन हार्मोन 5–7 मिनट तक ही सक्रिय रहता है। प्रभाव कम हो जाने पर दूध नही निकाला जा सकता है।

(5) दूध दुहने में पूर्णता—गाय का दूध निकालते समय पूरा निकाल लेना चाहिये क्योंकि अयन में दूध रह जाने पर दूध निर्माण कोशिकाओ पर दबाव पड़ता है और इनकी क्रियाशीलता कम हो जावेगी।

नवीन प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि दूध निकालते समय संगीत 'मैलोडियम संगीत' सुनाने से दूध की मात्रा में वृद्धि होती है। गाय को अभ्यस्त कराया जा सकता है।

दूध दुहने की विधियाँ—दूध दुहने की दो विधियाँ हैं—

(1) हाथों द्वारा (2) मशीन द्वारा

(1) हाथों द्वारा दूध दुहना (Milking by Hand)—देश के सभी भागों मे ये विधियाँ अपनाई जाती रही हैं। हाथों को थनो के पकड़ने के तरीके में भिन्नता होने के कारण कई विधियाँ हैं, जो निम्न हैं—

(i) पूर्ण हस्त दोहन (Fisting)—यह दूध दुहने की सर्वोत्तम विधि है। थनों की मांसपेशियो पर कोई बुरा प्रभाव नही पड़ता है।

दूध दुहने के लिये थनों को पूरे हाथ से पकड़ा जाता है जिसमे अंगूठा और तर्जन (Index) अंगुली थनों के आधार पर गोलाई के रूप मे रहती है। अंगुलियों के सिरो को हथेली की ओर दबाने से दूध निकलने लगता है।

(ii) अंगूठे और अंगुली की सहायता से दोहन (Knucklingor Nevelling)—इस विधि से दूध निकालना आसान है, अधिकतर यह विधि काम मे आती है परन्तु इससे थनो की मांसपेशियो पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

दूध दुहने के लिये अंगूठे को मोड़कर एवं अंगुलियों को थनों के चारो ओर रखते हैं। मुड़ा हुआ अंगूठे के ऊपरी भाग से थनो को दबाने पर दूध निकलने लगता है।

(iii) चुटकी द्वारा दोहन (Stripping)—जिन पशुओं के थन छोटे होते हैं। यह विधि काम मे लाते हैं, इससे पशु के थन लम्बे और उनकी मांसपेशी ढीली हो जाती है।

अंगूठे और दो अंगुलियो से थन को आधार से दबाते हुये सिरे की ओर लाते हैं, दबाव से दूध बाहर आने लगता है। अयन से आखिरी दूध निकालने मे काम आती है।



पशु से दूध किसी भी विधि से निकाला जावे, ग्वाले को घुटने मोड़कर बहुत देर तक बैठना पड़ता है। इस परेशानी से बचने के लिये स्टूल काम मे लाना अच्छा रहता है।

2. मशीन द्वारा दूध दुहना (Milking by Machine)—द्वितीय विश्व युद्ध के बाद मनुष्यो की कमी हो जाने से ग्रेट ब्रिटेन मे सर्वप्रथम मशीन से दूध निकालना प्रारम्भ किया। इस समय बड़े डेरी फार्मों पर यह विधि काम मे लाई जाती है क्योंकि इससे मनुष्य द्वारा दूध निकालने के व्यय को कम किया जा सकता है।

ये मशीन विद्युत या इंजिन द्वारा चलाई जाती हैं। दूध दुहने से लेकर उपयोग में आने तक की सभी प्रक्रिया मशीन द्वारा ही की जाती हैं।

ये मशीनें दो प्रकार की होती है—

(i) सिंगल एक्शन मशीन (Single action machine or Single Chambered Teat Cup)—इस मशीन में टीट कपों के चारो ओर दीवाल नही होती है तथा प्रेशर पिस्टन पम्प द्वारा पहुंचाते है।

(ii) डबल एक्शन मशीन (Double action Machine or Double Chambered Teat Cup)—इस मशीन मे टीट कपों के बाहर धातु की दीवाल होती है तथा इनके बीच रबर की लाइनिंग होती है। धातु की दीवाल तथा लाइनिंग के बीच स्थान होता है। अन्दर वाले प्रकोष्ठ मे स्थिर दाब (Constant Vaccume) उत्पन्न किया जाता है, दूसरे प्रकोष्ठ में बारी-बारी से दाब (Alternate Vaccume) उत्पन्न हो जाता है। इस पर दाब हो जाने से थनों पर खिंचाव पड़ता है और बाहर के प्रकोष्ठ मे वैक्यूम होने से रबर की लाइनिंग थनों से चिपक जाती हैं। यह प्रक्रिया जारी रहती है जिससे थनों से दूध निकलना प्रारंभ हो जाता है।

प्रश्न

1. बछड़ों को अंकित करना जो दूर से पढ़ा जा सके इस समस्या का समाधान कैसे करोगे ?
2. पशु लड़कर एक-दूसरे को घायल न कर सके इसके लिए आप क्या उपाय करेंगे ?
3. क्या होगा यदि बछड़ों को बिना बधिया खेती में लगाया जाए ?
4. क्या होगा यदि सींगरोधन में कास्टिक रगड़ने से पूर्व सींग कलिकाओं के चारों ओर वैसलीन न लगाया जाए।
5. पशुओं में सींगरोधन से क्या लाभ हैं ?
6. निम्न पर टिप्पणी लिखिए—
   (अ) गोदना (पशुओं को अंकित करना)
   (ब) दागना
7. सींगरोधन से आप क्या समझते हैं ? लाभ-हानि बताते हुए विभिन्न विधियों का वर्णन करो ।
8. जानवरों की पहचान के लिए अंकित करने की विधियों का सचित्र वर्णन करो ।
9. सींगरोधन के लाभ बताइए। सबसे अच्छी सींगरोधन की विधि का वर्णन कीजिए।
10. पशुओं को बधिया क्यों किया जाता है ? इसका सबसे अच्छा तरीका कौनसा है और क्यों ? वर्णन कीजिए।
11. पशुओं के बधियाकरण से आप क्या समझते हैं ? बधियाकरण की विभिन्न विधियों का नाम बताइये। सबसे उत्तम विधि का वर्णन कीजिए।
12. पशुओं की पहचान के लिए जो विभिन्न विधियाँ अपनाई जाती हैं उनका वर्णन कीजिए।
13. निम्न पर टिप्पणियाँ लिखिए— (राज. बोर्ड, 1982)
   (i) सांड को छल्ला पहिनाना।
   (ii) सांड को व्यायाम कराना।
14. दूध दुहने की विभिन्न विधियों का वर्णन करते हुए सबसे उत्तम विधि का उल्लेख कीजिए।
15. बधियाकरण से आप क्या समझते हैं ? विस्तारपूर्वक समस्त विधियों का वर्णन कीजिए।

पशुओं को मेले, बाजार या प्रदर्शन के लिये तैयार करना
(Preparing Animals for Show)

पशुओं को बाजार, मेले में ले जाने का मुख्य उद्देश्य यह है कि पशुपालक को इनके बेचने पर अच्छा लाभ मिले जिसको उन्होंने अच्छी देख-भाल तथा पोषण से पाला है। प्रदर्शन में ले जाने का उद्देश्य प्रतियोगिता तथा अच्छे नस्ल के पशुओं के प्रजनन और व्यवस्थाओं की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करना है।

इन उद्देश्यों के लिये पशुओं की तैयारी के समय कुछ निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिये जिससे वह अच्छा एवं सुन्दर दिखाई देवे—

1. खिलाई (Feeding)—पशु के आहार का अच्छा प्रबन्ध हो जिसमें सूखे चारे तथा अच्छी किस्म का हरा चारा पर्याप्त मात्रा में हो। उचित मात्रा में अच्छी किस्म का दाना खिलाना चाहिये। दाने का निम्न मात्रा में मिश्रण देना अच्छा है -

गेहूँ की भूसी	32 कि० ग्रा०	100 कि० ग्रा० मिश्रण
जई का दाना	35 कि० ग्रा०	
जौ का दाना	17 कि० ग्रा०	
अलसी का दाना	14 कि० ग्रा०	
नमक	2 कि० ग्रा०	

प्रत्येक पशु को 4–5 कि. ग्रा. दाने का मिश्रण प्रतिदिन देना चाहिये। पशु को मौसम के अनुसार पर्याप्त मात्रा में पानी पिलाना चाहिये।

2. खुरहरा करना (Grooming)—पशु के शरीर पर प्रतिदिन खुरहरा करने से एक माह में शरीर के बाल चमकने लगते हैं। धातु का खुरहरा [illegible] कोणों पर करना चाहिये इसके बाद एक बार कड़ा ब्रुश तथा बाद में मुलायम [illegible] से बालों की दिशा में खुरहरा करके शरीर को पोंछकर साफ कर दें [illegible] किसी वानस्पतिक तेल में इमल्सिन या कार्बोलिक कपड़े को हल्का भिगोकर [illegible] पर रगड़ने से त्वचा तथा बाल चमकने लगते हैं।

3. ब्लैंकेटिंग (Blanketing)—पशु को तैयार करने के विचार आने के बाद पशु को साफ करना चाहिये फिर टाट के बने ब्लैंकेट, मोटा कपड़ा, ऊनी कम्बल को पशु के शरीर से बांध देते हैं जिससे बड़े बाल गिर जाते हैं, त्वचा तथा छोटे बाल मुलायम हो जाते हैं।

4. बालों का छांटना (Clipping)—पशु को मेले मे ले जाने से काफी समय पहिले कैंची या बाल छांटने की मशीन से सिर, पूँछ, गर्दन, जांघ, तथा पैरो के अनावश्यक बालों को छांट देना चाहिये। बाल छांटने के बाद पशु को धूप में नही रखें अन्यथा तेज धूप से त्वचा के जलने का भय रहता है।

5. सींगों की देख-रेख—सींग खुरदरे होने पर रेती से घिसकर चिकने कर देना चाहिये। लम्बे होने पर प्रतिमाह 1.5 से. मी. काटते रहना चाहिये। मेले मे ले जाने से पूर्व सींगों पर पालिश कर देनी चाहिये।

6. पशु की सफाई (Bathing)—सर्वप्रथम शरीर को थोड़े से पानी से गीला करके कोई अच्छा साबुन लगाकर, रगड़कर, पर्याप्त पानी से शरीर को अच्छी तरह से साफ कर देना चाहिये परन्तु बाद मे थोड़े पानी से नहलाना चाहिये क्योंकि अधिक पानी से त्वचा शुष्क एवं प्राकृतिक चमक कम हो जाती है।

7. पैरों की देखभाल—पशु चारों पैरो पर वर्गाकार स्थिति मे खड़ा होना चाहिये इसके लिये उसके खुर छैनी से काटकर रेती से घिसकर समतल एवं चिकना कर देना चाहिये तथा हल्का तेल लगाना चाहिये।

8. प्रशिक्षण (Training)—पशु को यह सिखाना आवश्यक है की कि वह किस तरह से खडा हो और किस तरह से चले, इसके लिये काफी समय पूर्व प्रशिक्षण देना चाहिये जिससे वह छोटे-छोटे कदमों से चले और सिर ऊँचा करके खड़ा हो। इस प्रकार का पशु अन्य पशुओ से सुन्दर दिखाई देता है।

9. पूंछ की तैयारी (Braiding Tails) मेले में ले जाने से एक दिन पूर्व पशु की पूँछ की तैयारी करनी चाहिये। पूँछ को पानी मे अच्छी तरह साफ करके गीली दशा में 3-4 जगह सुतली या धागे से बांध देते हैं। मेले मे ले जाते समय बंध खोल देना चाहिये जिससे बहुत अच्छा झंवर बन जाता है।

10. आखिरी तैयारी (Final Preparation)—एक दिन पूर्व थोड़ा-थोड़ा आहार दें तथा दूध की भी पूरी मात्रा नही निकालनी चाहिये।

प्रदर्शन मे खड़े होने से दो घंटे पूर्व हल्का व्यायाम कराके पर्याप्त गुनगुना पानी पिलाना चाहिये। प्रदर्शन मे खड़ा करने से पूर्व पूरे शरीर को कपड़े से पोंछ-कर हल्के तेल मे भीगा कपड़ा फेर देना चाहिये। जिससे पशु सुन्दर दिखाई देने लगता है।

मेले या प्रदर्शनी में 2-3 दिन पूर्व पहुँच जाना चाहिये जिससे पशु वाता-रण से अभ्यस्त हो जावे तथा रास्ते में हुई तकलीफ तथा थकान कम हो जाये। दर्शन से वापिस आने पर पशु को 15 दिन तक झुण्ड से अलग रखना चाहिये जिससे बाहर का छूत तथा बीमारी का प्रभाव अन्य पशुओं में न हो सके।

प्रश्न

1. पशु को प्रदर्शनी में ले जाने के लिए की जाने वाली तैयारी का वर्णन करो।
2. निम्न पर टिप्पणी लिखो।
   (i) ब्लैंकेटिंग
   (ii) क्लिपिंग
   (iii) पूँछ की देखभाल
   (iv) पशु की सफाई

अध्याय—15

पशुओं को वश में करना

(Handling and Control of Animals)

पशुओं की सामान्य क्रियाओं तथा उनकी देख-रेख के लिये उन तक पहुँचना आवश्यक है। कभी-कभी अजनबी व्यक्ति या किन्ही कारणों से पशु घबराकर भड़क जाते हैं और मारने का प्रयास करते हैं। अतः पशुओं को बड़ी सूझ-बूझ से वश में करने या गिराने का अभ्यास होना आवश्यक है।

उद्देश्य—(i) स्वास्थ्य की जांच करना।
(ii) आयु ज्ञात करना।
(iii) खुरहरी करना तथा नहलाना।
(iv) पैरों में नाल लगाना तथा बधिया करना।
(v) नाथ या छल्ला पहिनाना।
(vi) दवा देना।

विधियां—

1. खूँटे में बंधे पशु तक पहुँच—पशु के समीप निडर होकर जाना चाहिये उससे प्रेम तथा नम्रता का व्यवहार करते हुए उसके पुट्ठे, झालर, गर्दन पर हाथ फेरते हुये पीठ थपथपानी चाहिए। पहिले पशु के समीप जाकर पुचकारकर ध्यान आकर्षित करें। मरखने, भड़कीले पशु हाथ नहीं फेरने देंवे तो इनकी नाथ, छल्ला या सींग पकड़कर वश में करना चाहिए।

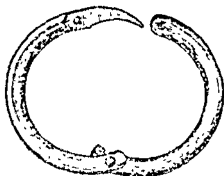
2. मैदान में चरते पशु तक पहुँच—सीधे और सरल स्वभाव के पशु आसानी से पकड़ में आ जाते हैं परन्तु भड़कीले और मरखने पशु तक पहुँचना समस्या बन जाती है। झुण्ड के सभी पशुओं को एक स्थान पर इकट्ठा करें फिर हाथ में हरा चारा या बर्तन में दाना लेकर पशु को दिखाते हुये आगे बढ़िये और पशु खाने की लालच मे ठिठककर आगे आवेगा तो पशु को बांये हाथ से चारा देकर दोनों हाथों से सींग, कान, नाथ, छल्ला जो भी हाथ में आये, कसकर पकड़ लेनी चाहिए तथा उसे धीरे-धीरे पुचकारते भी रहें, पशु को रस्सी से बांधकर वश मे कर लेना चाहिए।

यदि पशु इस प्रकार पकड़ने में न आये तो 5-6 मीटर लम्बी रस्सी लेकर एक सिरे सरकफुन्दी गांठ का 4-5 से. मी. लम्बा फन्दा बना लेवें फिर रस्सी को फन्दे के आकार में मोड़कर अपने दांये हाथ में तथा शेष रस्सी बांये हाथ मे लेकर इस प्रकार खड़े हो जायें कि रस्सी पशु तक आसानी से पहुँच जाये। अब दांये हाथ की पकड़ी रस्सी के फंदे को पशु के मुँह में निशाना लगाते हुए इस प्रकार फेंके कि सींग या गर्दन फंदे मे फँस जावे। फन्दे के फँसते ही बांये हाथ की रस्सी के सिरे को दोनों हाथ मे शीघ्र ही खींचकर फन्दे को कस लेना चाहिए।

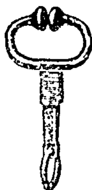
जिन पशुओं के नाथ पड़ी होती है उनको रस्सी से बांधकर वश मे कर लेते हैं। कुछ पशुओं के लगभग 3 मीटर लम्बी रस्सी से मुँह मे परोंदी बनाकर बांधा जाता है।

गाय-भैंसों को नांद के कुण्डों या खूंटे में लगी 1·25 मीटर लम्बी जंजीरों के हुक को गर्दन में फँसाकर बांधा जाता है।

सांड की नाक में छल्ला पहिना देते हैं जिनमें बुल होल्डर के हुक को फँसाकर उसे वश मे किया जाता है।



चित्र—बुलनोज रिंग



बुल होल्डर

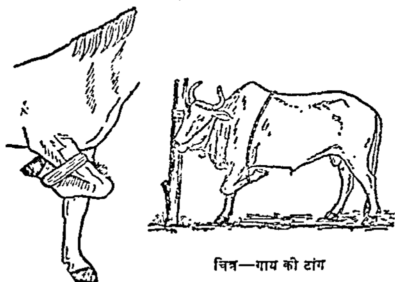
3. छोटे पशुओं को वश में करना – ये पशु छोटे एवं सीधे होते हैं जिससे इनको पकड़ने के लिए इन्हें पुचकारकर जबड़े के नीचे या पैरों के घुटने के ऊपर पकड़ा जाता है। भेड़-बकरी को पकड़ने के लिए खड़े पशु के पास जाकर उसकी पिछली टाँग को घुटने के ऊपर मोड़कर एक हाथ से पकड़ लेते है तथा उसकी बांई ओर जाकर बांयें हाथ को जबड़े के नीचे रखकर वश में कर लेते हैं। सींगो को भी पकड़ा जा सकता है। इनके बालों को नही पकड़ना चाहिए। इनके पीछे हटने पर इन्हें जांघों से दबा लेना चाहिए।

4. बड़े पशुओं को वश में करना—इनको वश मे करने की कई विधियां हैं–

(1) पशुओं के अगले पैर को नियन्त्रित करना—अगले पैरों को ऊँचा उठाने के लिए रस्सी को पैस्टर्न और फोर आर्म पर बांधा जाता है तथा रस्सी को घुटने

के पृष्ठ भाग के बीच पुग्राल या कपड़ा ग्रादि रखकर कड़ा कर देते हैं। यह विधि घोड़ों में काम लाते हैं।

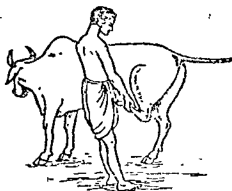
गाय, बैल ग्रादि के ग्रगले पैर उठाने के लिए रस्सी को मध्य पृष्ठ (Withers) पर ले जाकर पशु के फैट लोक (Fet look) ग्रौर कैनन (Canon) के बीच में बाँध देना चाहिए। इस रस्सी के सिरे को एक ग्रादमी खींचे रहता है ग्रौर दूसरा ग्रादमी जिस टांग को उठानी चाहे उसी ग्रोर से पशु पर जोर डालें। पैर उठने पर पशु को साधे रखने की ग्रावश्यकता है।



चित्र—गाय की टांग

चित्र—घोड़े की टाग

(ii) पशुग्रों के पिछले पैर को नियन्त्रित करना—पशु की पिछली टागें उठाने के लिए एक 2 मीटर लम्बा मजबूत चिकना डण्डा लेकर, जिस टांग को



चित्र – बैल को उठाना

उठाना है उसके के सामने ग्रौर दूसरी के पीछे टखने के ऊपर डण्डो को लगाकर

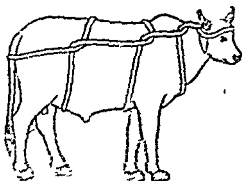
दोनों सिरों को पकड़कर उठाये रखता है। साथ ही उसको सीधा रखने के लिए थुट्टों को दवाये रखना चाहिए।

बैल के पिछले पैर को पूँछ की सहायता से उठाया जा सकता है।

(iii) दुधारु पशु को अयन परीक्षा के लिए नियन्त्रित करना - जिस पशु की जाँच करनी है या पशु दूध दुहने में परेशान करती हो तो उसकी पिछली दोनों टांगों के टखने के ऊपर एक रस्सी द्वारा अंग्रेजी के 8 अङ्क जैसी गांठ लगाकर बांध देना चाहिए, इसी गांठ में पूँछ के सिरे का बालों का गुच्छा बाधा जा सकता है।

5. पशुओं को गिराना—पशु पशुओं को ऑपरेशन, नाल लगाने तथा वधिया आदि कार्य के लिए उन्हें गिराना होता है क्योंकि बिना गिराये पशु को अच्छी तरह वश में नहीं किया जा सकता है। पशु को मुलायम या रेतीले स्थान में गिरायें जिससे चोट लगने का भय न रहे। पशु का पेट अधिक भरा तथा उसे प्रारम्भिक गर्भावस्था न हो। पशुओं को गिराने की दो विधियाँ हैं—

(i) बंजारा विधि—पशु को गिराने के लिए 10–15 मीटर लम्बा और 2 से.मी. मोटा रस्सा लेना चाहिए। इस रस्से के एक सिरे पर खिसकने वाला फन्दा (Running Mooes) सींगों में फँसाकर बडा कर लेते हैं। इस रस्सी से पहला लपेटा गर्दन के चारों ओर तथा दूसरा छाती के चारो ओर लगाया जाता है तीसरा लपेटा अयन के सामने पेट पर लगाकर खुले सिरे को दूसरी ओर ले जाकर दो मनुष्यों से इस प्रकार खीचना है कि पशु धीरे-धीरे बैठता हुआ गिर जावे। पशु के गिरते ही एक आदमी पशु के सिर को संभाल ले तथा दूसरा मनुष्य पूँछ के गुच्छे को ऊपर वाली जाघ के नीचे से निकाल खीचकर पकड़ लेता है तथा चारों पैरों को रस्सी में बांध कर खुरों के पास कस देते हैं।



चित्र—पशु के रस्सी का फंदा डालना

इस विधि में [illegible] गाय के [illegible] चोट लगने का [illegible] है।

(ii) रियफ विधि—इस विधि में रस्सी को दोहरी करके गर्दन पर डालकर झालर के पास से रस्सी का बांया सिरा दांई ओर तथा दांया सिरा बांई ओर (आपस में क्रास करके) अगली टांगों के अन्दर से निकालकर विदर के पास इसी प्रकार क्रॉस करते हुए रस्सी के दोनों सिरों को अयन के दोनों ओर से पिछली टांगों



के बीच में से होकर निकालते हैं। रस्सी के सिरो को खीचने पर पशु गिर जाता है। एक आदमी पशु के सींगों को पकड़े रहता है।

पशुओं को सदैव दांई ओर ही गिराना चाहिए क्योंकि बांई ओर पशु का प्रथम पेट 'रूमेन' होता है जिससे पेट पर चोट या जोर लगने का भय रहता है। धोखे में दांई ओर गिर जाने पर पशु को ठीक ढग से खड़ा करके गिराना चाहिए।

प्रश्न

1. पशुओं को वश मे करना क्यों आवश्यक है ?
2. बैल के नाल लगाने के लिए बैल को किस प्रकार वश में करेंगे ?



पशु आहार
(Animal Feeds)

1. पशु शरीर का संगठन
(Composition of Animal Body)

प्रारंभ से ही मानव पशु शरीर संरचना के अध्ययन के प्रति सतत प्रयत्नशील रहा है। परन्तु सर्वप्रथम लावेस तथा गिलबर्ट ने पूरे पशु शरीर सरचना का अध्ययन किया। विभिन्न आयु के विभिन्न पशुओं की विभिन्न खाद्य स्तर पर अध्ययन करने पर निम्न प्रतिशत मात्रा में आवश्यक तत्व पाये गये हैं—

1. जल — 75%
2. जीवांश पदार्थ (प्रोटीन, वसा तथा कार्बोहाइड्रेट)—20%
3. खनिज तत्व — 5%

(अ) मुख्य तत्व— कैल्शियम, फास्फोरस, पोटाश, गंधक, सोडियम, गंधक, लोहा, क्लोरीन, मैग्नीशियम

(ब) गौण तत्व—आयोडीन, फ्लोरीन, जस्ता, तांबा, कोबाल्ट, मैगनीज।

(स) सूक्ष्म मात्रिक तत्व— लोशन, सिलिकन ब्रोमियम, आर्सेनिक, अल्यूमीनियम, निकल।

पशु शरीर में ये सभी तत्व विघटित होकर लगातार सहायता करते हैं। जिससे पशु आहार में इनका समावेश होना चाहिये। इन तत्वों की मात्रा में अन्तर पशु की आयु, वैयक्तिक भिन्नता तथा खाद्य सामग्री के कारण होता है। जो निम्न तालिका से स्पष्ट है—

पशु की आयु	दशा	प्रोटीन%	वसा%	पानी%	खनिज तत्व%
2 वर्ष से कम	अच्छी	15 7	15 3	65·1	3·9
4 वर्ष	अच्छी	18.7	20·5	50·1	5·0

जल—पशु की आयु बढ़ने के साथ जल की मात्रा घटती जाती है। भ्रूणावस्था में 95%, जन्म के समय 75-80%, 5 माह की आयु में 66·75%, तथा युवावस्था में 55-65% जल की मात्रा पाई जाती है।

पशु को प्राप्त जल की मात्रा रक्त प्लाज्मा, मांस पेशियों हड्डियों तथा दांतों के निर्माण में उपयोग होती है।

2. जीवांश पदार्थ—शरीर में वसा त्वचा के नीचे वस्तुओं, मांसपेशी गुर्दे, आंतों की कोशिकाओं तथा अन्य भागों में संग्रहित होती है। प्रत्येक कोशिकाओं का प्रोटोप्लाज्म प्रोटीन का रूप है। इसके अतिरिक्त मांस पेशियों तथा जोड़ने वाले वस्तुओं के मुलायम भागों में भी प्रोटीन मिलता है।

कार्बोहाइड्रेट की अधिकांश मात्रा दिन प्रतिदिन व्यय होती रहती है फिर भी कुछ मात्रा में यकृत, मांस पेशी तथा रक्त में मिलता है।

3. खनिज तत्व—होगन तथा नियरमैन ने 18 बछड़ों के शरीर का अध्ययन करने पर उनमें खनिज तत्वों का औसत प्रतिशत इस प्रकार पाया है – कैल्शियम-1·33%, फास्फोरस–0 74%, सोडियम–016%, पोटाश–0·19%, क्लोरीन 0·11% मैग्नीशियम– 0·041% राख–015%

इनके अतिरिक्त *आयोडीन, तांबा,* जस्ता, *मैगनीज,* कोबाल्ट *तथा फ्लोरीन* आदि खनिज तत्व सूक्ष्म मात्रा में पाये जाते हैं।

यद्यपि ये खनिज तत्व शरीर में अत्यंत सूक्ष्म मात्रा में पाये जाते हैं फिर भी जीवन के लिये अत्यंत आवश्यक हैं। ये रक्त, अस्थि, दांत, विभिन्न पाचक रसों का निर्माण करते हैं। इनकी कमी से शरीर की वृद्धि रुक जाती है, उत्पादन कम हो जाता है तथा अनेकों रोग हो जाते हैं।

कैल्शियम व फास्फोरस हड्डिया तथा दांतों के प्रमुख तत्व हैं। सोडियम, पोटाश तथा क्लोरीन रक्त तथा शरीर के विभिन्न द्रवों (Fluids) के प्रमुख तत्व *हैं तथा रक्त के परिसारिक दाब को ठीक रखते हैं। मैग्नीशियम हड्डियों दांतों की* इनामल का प्रमुख तत्व है। लोहा तथा तांबा रक्त की प्रोटीन (हीमोग्लोबिन) का *प्रमुख तत्व है, यह सूक्ष्म मात्रा में शरीर के सभी तन्तुओं में मिलता है। गंधक* शरीर के सभी तन्तुओं में मिलता है।

2 पशु आहार (Animal Feeds)

आहार— *वह भोजन सामग्री जो पशु को* उसकी 24 घन्टे की आवश्यकता पूर्ति (*शरीर निर्वाह तथा उत्पादन*) के लिये दी जाती है, आहार कहलाता है।

आहार की आवश्यकता – पशुओं को दिये जाने वाले आहार के मुख्यतया दो उद्देश्य हैं—

(क) शरीर निर्वाह के लिये

(ख) उत्पादन के लिये

(क) शरीर निर्वाह के लिये (Formaintenance of Body)— भोजन का बहुत बड़ा भाग जो शरीर-भार कम किये बिना शारीरिक क्रियाओं के लिये शक्ति प्रदान करता है। इस प्रकार जो भी आहार खाया जाता है पहिले शरीर निर्वाह के काम आता है फिर बाद में बचा हुआ बहुत से उत्पादक कार्यों में काम आता है।

अतः यह वह आहार जो पशु को उस समय दिया जाता है, जबकि यह कोई भी उत्पादन नहीं कर रहा है, शरीर निर्वाह आहार कहलाता है। यह शरीर के निम्न कार्यों में काम आता है—

(i) शरीर के विभिन्न तंत्रों के कार्यों को नियमित रखने के लिये शक्ति प्रदान करना जैसे-रक्त संचार, श्वासोच्छ्वास, रक्त परिवहन, भोजन पाचन, चलना, फिरना देखना आदि।

(ii) शारीरिक तापक्रम को एक सा बनाये रखना।

(iii) शारीरिक टूट फूट ठीक करना। खाये आहार का बहुत बड़ा 50-60% भाग शरीर निर्वाह के काम आता है।

(ख) उत्पादन कार्यों के लिये (For Production)— आहार का वह भाग जो पशुओं के किसी भी प्रकार के उत्पादन कार्यों के लिये दिया जाता है, उत्पादन आहार कहा जाता है। यह निम्न उत्पादन कार्यों में सहायक होता है—

(i) गाय, भैंस, बकरी के दूध उत्पादन के लिये।

(ii) बैलों के हल तथा गाड़ी खींचने के लिये।

(iii) भेड़ों से ऊन व मांस उत्पादन के लिये।

(iv) सुअर, बकरों के गोश्त बढ़ाने के लिये।

(v) सांड़ से सेवा

(vi) मुर्गियों से अण्डे तथा मांस उत्पादन के लिये।

(vii) गर्भवती मादा पशुओं के गर्भ ... के लिए। इन सभी की पूर्ति के लिये दिया जाने वाला आहार, उत्पादन आहार कहलाता है।

3. आहार के आवश्यक तत्व
(Constituents of Food)

पशु स्वास्थ्य रक्षा, शरीर वृद्धि, शरीर संचालन, कार्य संचालन, रोग निरोधक शक्ति, कार्य शक्ति एवं उत्पादन क्षमता की दृष्टियों से आहार का सर्वोत्तम स्थान है। पशु शरीर की इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यह आवश्यक है कि आहार मे आवश्यक तत्वों का समावेश हो, इनकी उपयोगिता तथा पूर्ति सामग्री का होना आवश्यक है।

जल—पशु की ग्रायु बढ़ने के साथ जल की मात्रा घटती जाती है। भ्रूणावस्था में 95%, जन्म के समय 75-80%, 5 माह की ग्रायु में 66·75%, तथा युवावस्था में 55-65% जल की मात्रा पाई जाती है।

पशु को प्राप्त जल की मात्रा रक्त प्लाज्मा, मांश पेशियों हड्डियों तथा दांतों के निर्माण में उपयोग होती है।

2. जीवांश पदार्थ—शरीर में वसा त्वचा के नीचे वस्तुग्रों, मांसपेशी गुर्दे, ग्रांतों की कोशिकाग्रों तथा ग्रन्य भागों में संग्रहित होती है। प्रत्येक कोशिकाग्रों का प्रोटोप्लाजम प्रोटीन का रूप है। इसके ग्रतिरिक्त मांस पेशियों तथा जोड़ने वाले वस्तुग्रों के मुलायम भागों में भी प्रोटीन मिलता है।

कार्बोहाइड्रेट की ग्रधिकांश मात्रा दिन प्रतिदिन व्यय होती रहती है फिर भी कुछ मात्रा में यकृत, मांस पेशी तथा रक्त में मिलता है।

3. खनिज तत्व—होगन तथा नियरमैन ने 18 बछड़ों के शरीर का ग्रध्ययन करने पर उनमे खनिज तत्वो का ग्रौसत प्रतिशत इस प्रकार पाया है – कैलिशयम-1·33%, फास्फोरस–0 74%, सोडियम–016%, पोटाश–0·19%, क्लोरीन 0·11% मैग्नीशियम– 0·041% राख–015%

इनके ग्रतिरिक्त ग्रायोडीन, तांबा, जस्ता, मैगनीज, कोबाल्ट तथा फ्लोरीन ग्रादि खनिज तत्व सूक्ष्म मात्रा में पाये जाते हैं।

यद्यपि ये खनिज तत्व शरीर में ग्रत्यंत सूक्ष्म मात्रा में पाये जाते हैं फिर भी जीवन के लिये ग्रत्यंत ग्रावश्यक हैं। ये रक्त, ग्रस्थि, दांत, विभिन्न पाचक रसों का निर्माण करते हैं। इनकी कमी से शरीर की वृद्धि रुक जाती है, उत्पादन कम हो जाता है तथा ग्रनेकों रोग हो जाते हैं।

कैल्शियम व फास्फोरस हड्डियां तथा दांतों के प्रमुख तत्व हैं। सोडियम, पोटाश तथा क्लोरीन रक्त तथा शरीर के विभिन्न द्रवों (Fluids) के प्रमुख तत्व हैं तथा रक्त के परिसारिक दाब को ठीक रखते हैं। मैग्नीशियम हड्डियो दांतों की इनामल का प्रमुख तत्व है। लोहा तथा तांबा रक्त की प्रोटीन (हीमोग्लोबिन) का प्रमुख तत्व है, यह सूक्ष्म मात्रा में शरीर के सभी तन्तुग्रों में मिलता है। गंधक शरीर के सभी तन्तुग्रों में मिलता है।

2 पशु ग्राहार (Animal Feeds)

ग्राहार— वह भोजन सामग्री जो पशु को उसकी 24 घन्टे की ग्रावश्यकता पूर्ति (शरीर निर्वाह तथा उत्पादन) के लिये दी जाती है, ग्राहार कहलाता है।

ग्राहार की ग्रावश्यकता — पशुग्रों को दिये जाने वाले ग्राहार के मुख्यतया दो उद्देश्य हैं—

(क) शरीर निर्वाह के लिये

(ख) उत्पादन के लिये

(क) शरीर निर्वाह के लिये (Formaintenance of Body)— भोजन का बहुत बड़ा भाग जो शरीर-भार कम किये बिना शारीरिक क्रियाओं के लिये शक्ति प्रदान करता है। इस प्रकार जो भी आहार खाया जाता है पहिले शरीर निर्वाह के काम आता है फिर बाद में बचा हुआ बहुत से उत्पादक कार्यों में काम आता है।

अतः यह वह आहार जो पशु को उस समय दिया जाता है, जबकि वह कोई भी उत्पादन नहीं कर रहा है, शरीर निर्वाह आहार कहलाता है। यह शरीर के निम्न कार्यों में काम आता है—

(i) शरीर के विभिन्न तंत्रों के कार्यों को नियमित रखने के लिये शक्ति प्रदान करना जैसे-रक्त संचार, श्वासोच्छ्वास, रक्त परिवहन, भोजन पाचन, चलना, फिरना देखना आदि।

(ii) शारीरिक तापक्रम को एक सा बनाये रखना।

(iii) शारीरिक टूट फूट ठीक करना। खाये आहार का बहुत बड़ा 50-60% भाग शरीर निर्वाह के काम आता है।

(ख) उत्पादन कार्यों के लिये (For Production)— आहार का वह भाग जो पशुओं के किसी भी प्रकार के उत्पादन कार्यों के लिये दिया जाता है, उत्पादन आहार कहा जाता है। यह निम्न उत्पादन कार्यों में सहायक होता है—

(i) गाय, भैंस, बकरी के दूध उत्पादन के लिये।

(ii) बैलों के हल तथा गाड़ी खींचने के लिये।

(iii) भेड़ों से ऊन व मांस उत्पादन के लिये।

(iv) सुअर, बकरों के गोश्त बढ़ाने के लिये।

(v) सांड़ से सेवा [illegible]

(vi) मुर्गियों से अण्डे तथा मांस उत्पादन के लिये।

(vii) गर्भवती मादा पशुओं के गर्भ [illegible] के लिए। इन सभी की पूर्ति के लिये दिया जाने वाला आहार, उत्पादन आहार कहलाता है।

3. आहार के आवश्यक तत्व
(Constituents of Food)

पशु स्वास्थ्य रक्षा, शरीर वृद्धि, शरीर संचालन, कार्य संचालन, रोग निरोधक शक्ति, कार्य शक्ति एवं उत्पादन क्षमता की दृष्टियों से आहार का सर्वोत्तम स्थान है। पशु शरीर की इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यह आवश्यक है कि आहार में आवश्यक तत्वों का समावेश हो, इनकी उपयोगिता तथा पूर्ति सामग्री का होना आवश्यक है।

तत्व—

1. जल
2. प्रोटीन
3. कार्बोहाइड्रेट
4. विटामिन्स
5. वसा
6. खनिज पदार्थ

1. जल (Water)— पशुओं के हर प्रकार के भोज्य पदार्थों में पानी की कुछ न कुछ मात्रा मिलती है। भोज्य पदार्थों में जल तथा शुष्क पदार्थ मिलता है। भोज्य पदार्थों के खाने के अलावा अतिरिक्त जल की आवश्यकता होती है।

कार्य— (i) विभिन्न भोज्य पदार्थों को घोल देता है जिससे ये पाचन के बाद जल के द्वारा ही शरीर के विभिन्न तन्त्रों मे भेजे जाते हैं।

(ii) रक्त को पतला करता है जिससे शरीर में आसानी से परिभ्रमण करता है।

(iii) शरीर के तापक्रम को स्थिर रखता है।

(vi) शरीर के परित्यक्त पदार्थों को विसर्जित करने में सहायक होता है।

(v) शरीर के क्षरण जैसे दूध आदि के लिये आवश्यक है।

प्रत्येक पशु को जल की आवश्यकता उसके शरीर आकार, दूध उत्पादन, मौसम तथा चारे-दाने के गुण पर निर्भर करती है। पशुओं को सदैव स्वच्छ, शुद्ध एवं ताजा जल आवश्यकता नुसार 10 से 60 लीटर तक पिलाना चाहिए।

2. प्रोटीन (Protien)—यह कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन का यौगिक है। इनके अलावा सामान्य तथा गंधक तथा फास्फोरस भी उपस्थित रहता है। इस प्रकार यह एक जटिल यौगिक है। यह विभिन्न नत्रजन यौगिक 'अमीनो अम्ल के बने होते हैं, लगभग 23 प्रकार के अमीनो अम्ल होते हैं।

कार्य—(i) शरीर की मांसपेशियों, हड्डी, ऊतक, दूध का निर्माण करते हैं।

(ii) शरीर की टूट-फूट की मरम्मत करते हैं।

(iii) कोशिकाओं के जीव-द्रव्य का मुख्य भाग है।

स्रोत—यह दाल वाली फसलों के हरे-चारे, बरसीम, रिजका उर्द, मूंग एवं अन्य दालों, इनकी चूरी, मक्का तथा खलियो से प्राप्त होती है। इनके अतिरिक्त पशुजन्य पदार्थ खीस, दूध, दुग्ध, पदार्थ, रक्त चूर्ण, मांस चूर्ण, मत्स्य चूर्ण भी इसके अच्छे स्रोत हैं।

3. कार्बोहाइड्रेट (Carbohydrates)—ये कार्बन, हाइड्रोजन तथा

ऑक्सीजन के यौगिक हैं इसके अन्तर्गत मुख्य रूप से शर्करा, मांड, सेल्यूलोज, लिग्नोसेल्यूलोज तथा लिग्निन आते हैं।

कार्य—(i) शरीर में ऊर्जा के मुख्य स्रोत हैं। लगभग 40 प्रतिशत ऊर्जा इसी तत्व से मिलती है। शरीर में एक ग्राम कार्बोहाइड्रेट ऑक्सीकरण के बाद 4 कैलोरी ऊर्जा प्रदान करती है।

(ii) आवश्यकता से अधिक कार्बोहाइड्रेट लेने पर वसा के रूप में परिवर्तित होकर एकत्रित हो जाती है।

कार्बोहाइड्रेट को दो भागों में विभाजित किया जाता है—

(अ) घुलनशील कार्बोहाइड्रेट, (ब) अपरिष्कृत तन्तु।

(अ) घुलनशील कार्बोहाइड्रेट(Soluble Carbohydrates) – इसके अन्तर्गत शर्करा, मांड तथा विलेय सेल्यूलोज आते हैं। ये पदार्थ शीघ्र पाचक तथा तुरन्त शक्ति प्रदान करते हैं। इन पदार्थों को पशु-पोषण के सन्दर्भ में नत्रजन रहित निष्कर्ष (N.F.E.) कहते हैं।

किसी भी भोज्य पदार्थ के शुष्क पदार्थ की मात्रा से प्रोटीन, वसा, अपरिष्कृत तन्तु तथा राख की मात्रा घटाने पर शेष नत्रजन रहित निष्कर्ष बच जाता है।

स्रोत—गुड़, शक्कर, शीरा, गन्ने के अगोले, शकरकन्द, गाजर, चुकन्दर, चावल का मांड, मक्का, ज्वार आदि।

(ब) अपरिष्कृत तन्तु (Ciude Fibre)—कार्बोहाइड्रेट के इस भाग में सेल्यूलोज, लिग्नोसेल्यूलोज तथा लिग्निन आते हैं। ये पदार्थ बहुत कठिनाई से आंशिक रूप में पचते हैं फिर भी जुगाली करने वाले (Ruminent) पशुओं के पोषण में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। पशु आहार में इनका काफी बड़ा भाग होता है, इसी कारण ये पशु की क्षुधा संतुष्टि में सहायक होते हैं।

स्रोत—विभिन्न प्रकार के भूसे, सूखे चारे, जौ और जई के दाने, आटे की भूसी, दालों के छिलके आदि।

4. विटामिन्स (Vitamins)—ये शरीर मे बहुत ही सूक्ष्म मात्रा में पाये जाते हैं परन्तु ये जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। इनकी कमी से अनेक रोग हो जाते हैं। कुछ विटामिन शरीर में ही निर्मित कर लिए जाते हैं तथा कुछ भोज्य पदार्थों में उपस्थित रहते हैं। इनको दो भागों में विभाजित किया जाता है—

(अ) वसा में घुलनशील—विटामिन ए, डी, ई व के

(ब) पानी मे घुलनशील - विटामिन बी कम्लेक्स, सी।

(अ) वसा में घुलनशील विटामिन्स

विटामिन ए–इसकी कमी से–(i) पशुओं की वृद्धि रुक जाती है।

(ii) आँखों से कम दिखाई देने लगता है तथा रतौंधी (Night Blindness) हो जाती है।

(iii) चर्म रोग तथा त्वचा पर दाने हो जाते हैं।

(iv) अत्यधिक कमी से मादा पशुओं का गर्भपात हो जाता है तथा बच्चा जन्म के बाद मर जाता है।

(v) नर तथा मादा पशु की प्रजनन क्षमता घट जाती है।

स्रोत—हरे चारे में 'कैरोटिन' नामक पदार्थ के रूप में होता है जो शरीर में यकृत द्वारा विटामिन ए में बदल जाता है। गाजर, हरी घासें, दूध, मछली का तेल, मक्खन, अण्डपीत अच्छे स्रोत है।

विटामिन डी—इसकी उपस्थिति से—

(i) कैल्शियम तथा फास्फोरस तत्त्व का अच्छा उपयोग होता है।

(ii) हड्डियों तथा दाँतों को मजबूत बनाता है।

इसकी कमी से—(i) हड्डियाँ पतली, कमजोर तथा मुलायम हो जाती हैं जो टेढ़ी भी हो जाती है।

(ii) सूखा रोग, रिकेट की बीमारी हो जाती है।

स्रोत—यह थोड़ी मात्रा में खलियों में मिलता है। अधिक पूर्ति सूर्य-प्रकाश से होती है। सूर्य के प्रकाश से शरीर के अन्दर का अरगोस्टी रोल नामक पदार्थ विटामिन डी में बदल जाता है। यह मछली का तेल, अण्डपीत, दूध तथा मक्खन में मिलता है।

विटामिन ई—इसकी कमी से–(i) पशु बांझ हो जाते हैं क्योंकि नर शुक्राणु तथा मादा बीजाणुओं के परिपक्व न होने से गर्भ धारण नहीं कर पाते हैं।

(ii) त्वचा के लिए आवश्यक है।

स्रोत—अंकुरित अनाज के दानों में पर्याप्त मात्रा में मिलता है। जैतून के तेल, दूध, दूध के पदार्थ-मट्ठा, सपरेटा आदि में मिलता है।

विटामिन 'के' – इसकी कमी से—

(i) शरीर में घाव या चोट लगने पर निरन्तर खून बहता रहता है, रक्त का थक्का नहीं बनता है।

(ii) मांसपेशियों के कार्य को संतुलित करता है।

स्रोत—जुगाली करने वाले पशु झोझ (Rumam) में इसे बना लेते हैं। दूध में थोड़ी मात्रा में मिलता है।

(ब) पानी में घुलनशील विटामिन्स—इसके अन्तर्गत थाइमिन 'बी 1' राइबोफ्लेविन 'बी 2', नियासिन पाइरीडोक्सिन 'बी 6', कोबाल्ट माइन 'बी 12',

बायोटिन, पैंटोथेनिक एसिड, पाइरा अमीनो बेंजोइक एसिड, फोलिक एसिड, कोलीन आदि विटामिन्स आते हैं।

विटामिन 'बी'—इसकी कमी से—(i) भूख नहीं लगती है।

(ii) शरीर कमजोर हो जाता है।

(iii) कई प्रकार के रोग, बेरी-बेरी खून न बनना, आँखों में लालामी, पैरों की त्वचा फटना आदि रोग हो जाते हैं।

स्रोत—यह हरे चारे, घासें, अण्डा, यकृत, दूध, दही, छाछ से मिलता है।

विटामिन 'सी'—इसे एस्कोर्बिक अम्ल भी कहते है। इसकी कमी से—

(i) स्कर्वी रोग हो जाता है जिससे खून की बारीक नलिकाएँ आसानी से नष्ट हो जाती हैं।

(ii) मसूड़े सूज जाते हैं तथा जोड़ों मे शिथिलता आ जाती है।

स्रोत—यह हरे चारे, गाजर, मूली, अंकुरित दालें तथा दूध में मिलता है।

5. वसा (Fat)—कार्बोहाइड्रेट की तरह वसा में भी कार्बन, हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन तत्व मिलते हैं। शरीर में चर्बी रक्त द्वारा स्थानान्तरित होती है। यह शरीर में सुरक्षित रूप में त्वचा तथा मांसपेशियो के नीचे स्थित होती है।

कार्य—(i) कार्बोहाइड्रेट की भांति शरीर को ऊर्जा प्रदान करते हैं। कार्बोहाइड्रेट की अपेक्षा इससे 2·5 गुना ऊर्जा मिलती है। एक ग्राम वसा से 9·3 कैलोरी ऊर्जा मिलती है।

(ii) शरीर में शक्ति का सुरक्षित भण्डार हैं।

(iii) जीव द्रव्य में भी मिलता है तथा अंगों के कार्यों को नियन्त्रित करता है।

(iv) दूध देने वाले पशुओ के लिए दूध का महत्त्वपूर्ण तत्व है।

स्रोत—सभी प्रकार की खलियाँ, बिनौले, अलसी, जई, मक्का, सोयाबीन का दाना, दूध व दूध के पदार्थों से मिलता है।

6. खनिज पदार्थ (Mineral Malters)—शरीर वृद्धि व निर्माण के लिए विभिन्न खनिज लवण जैसे कैल्शियम, फास्फोरस, पोटाश, लोहा, क्लोरीन, सोडियम, मैग्नीशियम, गन्धक, आयोडीन, तांबा, जस्ता, मैंगनीज, फ्लोरीन आदि आवश्यक हैं।

कार्य—(i) कैल्शियम, फास्फोरस से हड्डी, खुर, सींग, बाल आदि का निर्माण होता है।

(ii) लोहा तथा तांबा रक्त की लाल कणिकाओं को निर्मित करता है।

(iii) रक्त का परिसारिक दाब (Osmatic Pressure) ठीक रहता है।

(iv) अनेक अम्लों तथा इन्जाइम्स का निर्माण कर भोजन को पचाते हैं।

(v) शरीर में इनकी कमी से वृद्धि रुक जाती है तथा कई रोग हो जाते हैं।

स्रोत—कैल्शियम तथा फास्फोरस आदि की पूर्ति हरे चारे, अन्य भोज्य पदार्थों से होती है। खड़िया, साधारण नमक, अस्थिचूर्ण, मछली का चूर्ण पशुओं को अतिरिक्त देने से इनकी पूर्ति हो जाती है।

4. अच्छे आहार की विशेषताएँ (Qualities of an ideal Ration) :

आहार वह पूरी खाद्य सामग्री जो पशु को एक दिन में दी जाती है इसका पशुओं के लिए विशेष महत्व है। इसमें निम्न गुण होने चाहिए जिससे पशु तथा पशुपालक को पूर्ण लाभ प्राप्त हो—

1. स्वादिष्टता (Palatability)—पशु को जो भी आहार दिया जावे वह स्वादिष्ट हो, इसमें किसी भी तरह की दुर्गंध नहीं हो। खाने मे मुलायम हो जिससे पशु स्वाद के साथ भरपेट खा सकें। बरसीम रिजका, हरे चारे अधिक स्वादिष्ट होते हैं।

2. पचनीयता (Digestability)—भोजन में ऐसे पदार्थ हो जो पशु के शरीर के अन्दर आसानी से पचा लिए जावें। यदि आहार में पचनयोग्य पदार्थों की कमी होगी तो पशु को भोजन पचाने मे अधिक श्रम करना पड़ेगा तथा यह पशुओं के लिए अधिक लाभदायक नही होगा। हरे चारे की अपेक्षा अधिक शीघ्र पचने वाले हैं क्योंकि इनमें अपरिष्कृत तन्तु की मात्रा कम होती है।

3. रसीलापन (Succulancy)—पशु के भोज्य पदार्थों में कुछ ऐसे चारे भी होते हैं जिनमें 70–80 प्रतिशत पानी की मात्रा हो, इन चारे को रसीले चारे कहते है इससे भोजन की स्वादिष्टता तथा पचनीयता बढ़ जाती है। जैसे—हरे चारे, साइलेज।

4. स्वच्छता (Cleanliness)—पशु के चारे में किसी भी प्रकार की फफूँदी आदि न हो वह साफ धूल और गोबर आदि से रहित हो।

5. स्वास्थ्यवर्धकता (Healthfulness)—पशुओं के आहार में प्रोटीन, विटामिन्स तथा खनिज पदार्थों की उचित मात्रा होनी चाहिए इससे भोजन की पचनीयता एव स्वादिष्टता बढ जाती है। खली, दाने का मिश्रण, नमक तथा हड्डी का चूरा प्रतिदिन देना चाहिए।

6. सन्तुलित भोजन (Balanced Ration)—पशुओ को आवश्यकता तथा क्षमता के अनुसार सभी भोज्य तत्वों की पूर्ति के लिए विभिन्न पदार्थों को आहार में शामिल करना चाहिए जिससे उनका विकास तथा उत्पादन अच्छा हो सके।

7. भिन्नता (Varieties)—पशुओ को रोजाना एक ही तरह का आहार

नहीं देना चाहिए। उन्हें मौसम के अनुसार चारा, दाना आदि अदल-बदल कर देना चाहिए जिससे वे चाव से खा सकें।

8. सस्ता (Economic)—पशुओं को जो भी आहार सामग्री दी जावे वह उनके उत्पादन के अनुरूप हो। बहुतायत के दिनों में भोजन सामग्री का भण्डारण करना अच्छा तथा लाभप्रद रहता है।

5. पशु आहार का वर्गीकरण (Classification of Animal Feeds)

कृषि उत्पादन से उपलब्ध अनाज तथा अन्य मानव अनुपयोगी पदार्थ पशुओं का मुख्य आहार होता है।

इन विभिन्न भोज्य पदार्थों को उपलब्धता के आधार पर निम्न तीन भागों में विभाजित करते हैं—

(अ) वानस्पतिक साधनों से प्राप्त भोज्य पदार्थ
(ब) पशुधन से प्राप्त भोज्य पदार्थ
(स) अन्य भोज्य पदार्थ।

(अ) वानस्पतिक साधनों से प्राप्त भोज्य पदार्थ—इन भोज्य पदार्थों को उनमें उपस्थित अपरिष्कृत रेशे की मात्रा तथा सम्पूर्ण पाचक तत्वों के आधार पर दो भागों में बाँटा जाता है—

1. मोटे चारे,
2. दाने।

1. मोटे चारे (Roughages)—ये वे चारे हैं जिनमें अपरिष्कृत रेशे की मात्रा 80 प्रतिशत से अधिक तथा आवश्यक भोज्य तत्व कम मात्रा में होते हैं। ये दो प्रकार के होते है—

(क) रसीले चारे—इन चारों में 75 प्रति. या अधिक नमी होती है, जैसे-जड़ें, कंद, साइलेज, हरे चारे आदि।

(ख) बे रसीले चारे—इन चारे में नमी की मात्रा अपेक्षाकृत काफी कम होती है। इनको इनके पदार्थ उपयोग के आधार पर निम्न भागों में बाँटा जाता है—

1. बेफलीदार चारे,
2. फलीदार चारे।

1. बेफलीदार चारे (Monbegumenous Fodders)

(i) बेफलीदार सूखे चारे—इनमें नमी की मात्रा कम होती है जिनके फसल से दाने को प्राप्त करने के बाद पदार्थ को काम में लेते हैं जिनमें अग्र प्रमुख है—

भूसा—यह निम्नकोटि का चारा माना जाता है क्योंकि इसमें प्रोटीन, फास्फोरस काफी कम मात्रा में होता है परन्तु सर्वाधिक उपयोग में लाया जाता है क्योंकि इनका सम्पूर्ण मोटे चारे में 50 प्रति. से अधिक उत्पादन है। जैसे—गेहूँ, जौ, जई का भूसा, धान का पुआल।

कुट्टी—इसमें भूसे की अपेक्षा प्रोटीन, कैल्शियम तथा फास्फोरस अधिक मात्रा में होता है। ज्वार, बाजरा, मक्का के सूखे डण्ठल कुट्टी के रूप में काटकर काम में लाए जाते हैं।

सूखी घास—भूसे की अपेक्षा दुधारु तथा उत्पादक पशुओं के लिए अच्छा चारा है क्योंकि ये आसानी से हर जगह मिल जाती हैं।

(ii) बेफलीदार हरे चारे—ये दो प्रकार के होते हैं—

(च) स्वयं उगने वाले—दूब घास, सावा घास के चरागाह।

(छ) उगाये जाने वाले—देश के विभिन्न भागों में विभिन्न प्रकार के चारे उगाए जाते है जिनमें खाद्य तत्वों की मात्रा इनके कटने के समय पर निर्भर होती है। फूल आते समय पोषक तत्व सर्वाधिक होते है। ये निम्न प्रकार के होते हैं—

1. हरे चारे—मक्का, ज्वार, बाजरा, जई, सेंजी, सरसो आदि।

2. हरी घासें—दूब घास, अंजन, सावां, सूडान, गिनी, नेपियर या हाथी घास।

3. हरी पत्तियां—विभिन्न प्रकार की वर्ष भर में उगाई जाने वाली सब्जियों की बेलें, पत्तियां तथा इनके भाग सकटकाल तथा गर्मी में खिलाए जाते हैं। गन्ने की पत्ती, अगोले, झरबेरी, पीपल, गूजर, बरगद, नीम आदि की पत्तियां।

फलीदार चारे—सिंचित क्षेत्रों में अधिक मात्रा में उगाए जाते है इनमें प्रोटीन, कैरोसीन तथा कैल्शियम की मात्रा अधिक होने से ये पौष्टिक, स्वादिष्ट तथा सर्वोत्तम चारे माने जाते हैं। ये भूमि की उर्वरता बनाए रखने के साथ पशुओं के दाने की कमी की पूर्ति करते हैं।

इनमें मेथी, रिजका, बरसीम, सेंजी (रबी) तथा ग्वार, मोठ, मूंग, लोबिया खरीफ प्रमुख फलीदार चारे हैं।

कंद, जड़ें तथा गुठलियां—पशुओं को गाजर खूब खिलाई जाती है इनमें कैरोटिन की मात्रा अधिक होने से दूध को बढ़ाते है। आलू, टेपिओका की जड़ें भी दी जा सकती हैं।

संकटकाल में आम तथा जामुन की गुठलियों को दिया जा सकता है इनसे [illegible] तत्व पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं।

2. दाना (Concentrates)—इनमें अपरिष्कृत रेशे की मात्रा काफी कम तथा पाचक तत्व 60 प्रति. से अधिक मात्रा में होता है। इनको निम्न भागों में बाँटा जा सकता है—

1. अनाज के दाने—इनमें स्टार्च तथा पाचक तत्व अधिक होने से ऊर्जा युक्त होते हैं। इनको साबुत या दलकर दिया जाता है। जैसे–जौ, मक्का, ज्वार, बाजरा, दालें-चना, ग्वार, अरहर।

2. दाने के उपजात—इनमें धान्यों की भूसी, चावल का चोकर (Rice Bran), दालों की चूनी तथा छिलका अधिक काम आता है।

(अ) धान्यों की भूसी—गेहूँ तथा जौ की भूसी काम में आती है जिसमें 7–10 प्रति. प्रोटीन तथा फास्फोरस अधिक मात्रा में मिलता है। छोटे बछड़ों के लिए काफी पौष्टिक हैं।

(ब) चावल का चोकर—इसे घोड़ों को खिलाया जाता है। अन्य दाने के साथ दूध वाले पशुओं को भी दिया जाता है।

(स) चूनी (Husk)—दालों के छिलके को चूनी कहते हैं इनमें प्रोटीन तथा खनिज लवण पर्याप्त मात्रा में होते हैं। उर्द, मूंग, चना, मसूर, अरहर की चूनी।

3. तैलीय बीज तथा खलियाँ—तैलीय बीजों मे बिनौले सर्वाधिक उपयोग में लाए जाते हैं। इनको उपयोग करने से एक घण्टे पूर्व गर्म पानी में भिगोकर देने से पौष्टिक हो जाते हैं। कभी-कभी घोड़ों तथा दूध पीने वाले छोटे बछड़ों को अलसी के बीज कुचलकर या उबालकर दिए जाते हैं।

खलियाँ—तिलहन वाली फसलों को पेरकर (Crushing) तेल तथा खलियाँ प्राप्त की जाती हैं। मशीन की अपेक्षा कोल्हू द्वारा प्राप्त खली अधिक पौष्टिक होती हैं क्योंकि इनमें वसा की मात्रा अधिक होने से स्वादिष्ट, शीघ्रपाचक है। प्रोटीन अधिक होने से दाने के मिश्रण में शामिल करना आवश्यक है। मूंगफली, अलसी, तिल, बिनौले, सरसों तथा तारामीरा की खली।

(द) पशु उपजात (Animal Biproducts)—पशुओं से कई पदार्थ मिलते हैं जो पशुओं को दिए जाते हैं जिनमें निम्न प्रमुख हैं—

1. दूध—दूध नवजात के पोषण के लिए पूर्ण आहार है। ब्याने के तुरन्त बाद प्राप्त दूध 'खीस' नवजात बच्चे के लिए अत्यन्त आवश्यक तथा [illegible] कृत्रिम विधि से पाले जाने वाले बछड़े तथा अन्य पशुओं की वृद्धि के लिए आवश्यक है। दूध से वसा निकालने पर बचा हुआ [illegible] जिसमें वसा के अलावा [illegible]

को सभी पशुओं को दिया जा सकता है। मक्खन या घी बनाने के बाद बची छाछ पशुओं, सुअर तथा मुर्गियों को देना अच्छा रहता है।

2. मछली चूर्ण (Fish Meal)—अनुपयोगी मछलियों से तैयार यह पदार्थ प्रोटीन, वसा, खनिज लवणों तथा विटामिन्स से भरपूर होता है। जीवाणु रहित मछली का चूर्ण उत्पादन तथा वृद्धि-करने-वाले पशुओं को खिलाना चाहिए।

3. रक्त चूर्ण (Blood Meal)—पशु वध-गृहों (Slaughter house) में मारे गए पशुओं के रक्त को सुखाकर प्राप्त होता है जिसमें 70 प्रति. प्रोटीन होती है। इसका देश में उपयोग कम ही होता है।

4. अस्थि चूर्ण (Bone Meal)—यह हड्डियों को जीवाणु रहित करके बनाया जाता है। इसमें खनिज लवण जैसे कैल्शियम तथा फास्फोरस अधिक मात्रा में मिलता है।

(स) अन्य पदार्थ—

1. औद्योगिक उपजात—शक्कर तथा शराब बनाने वाले कारखानों से प्राप्त यीस्ट तथा शीरा पशुओं के लिए उत्तम खाद्य है।

यीस्ट में 45 प्रतिशत प्रोटीन, 35 प्रतिशत विलेय कार्बोहाइड्रेट, 10 प्रतिशत खनिज तथा विटामिन बी होता है जिससे पूर्ण आहार का 70 प्रतिशत दिया जा सकता है।

शीरे में कार्बोहाइड्रेट तथा फास्फोरस होता है। अधिक प्रोटीन युक्त चारे खिलाने के बाद 5–1 किलो शीरा देने पर चारे की स्वादिष्टता तथा पौष्टिकता बढ़ जाती है।

2. खनिज पूर्ति (Mineral Supplements)—पशुओं को जीवन निर्वाह तथा उत्पादन के लिए दिए जाने वाले आहार से पर्याप्त खनिज लवण नहीं मिलते हैं। इसके लिए खाने वाला नमक 30-60 ग्राम तथा थोड़ी मात्रा में विटामिन युक्त या विटामिन विहीन खनिज मिश्रण आवश्यकतानुसार चारे-दाने में मिलाकर दिया जा सकता है।

3. प्रति जैविक पदार्थ (Antibiotic matters)—छोटे तथा वृद्धि करने वाले पशुओं को थोड़ी मात्रा में प्रति जैविक पदार्थों को देना अच्छा रहता है इनसे ये बीमार नहीं होते हैं तथा शीघ्र वृद्धि होती है। जैसे-टेरामाइसिन, पैनिसिलिन, स्ट्रेप्टोमाइसिन, आरोमाइसिन, वेसिट्रेसिन आदि उपलब्ध प्रति जैविक पदार्थ।

4. व्यावसायिक खाद्य—आजकल कम्पनियों द्वारा पौष्टिक मिश्रण तथा विटामिन मिश्रण के रूप में बने बनाये अनेक खाद्य पदार्थ मिलते हैं जिनको पशुओं तथा कुक्कुटों को खिलाया जा सकता है। इनको देने पर अतिरिक्त दाना देने की आवश्यकता नहीं है। ये बाजार में विभिन्न नामों से मिलते हैं।

वर्ष में उपलब्ध विभिन्न चारे तथा उनसे प्राप्त शुष्क पदार्थ

क्र.सं.	चारे का नाम	बोने का समय	चारा खिलाने का समय	उपज प्रति हेक्टर क्विंटल	कटाई की संख्या	शुष्क पदार्थ	विशेष
1	2	3	4	5	6	7	8
	खरीफ के चारे						
1	मक्का	मार्च-जुलाई	मई-सितम्बर	200 250	1	30	
2	ज्वार	मई-जुलाई	जुलाई अक्टू.	250-300	1	30	
3	ज्वार (चरी)	मार्च-जुलाई	मई-अक्टूबर	500-600	2-3	30	
4	बाजरा	मई-अगस्त	जून-अक्टूबर	200-250	1	30	
5	ग्वार	मई-जुलाई	जुलाई-अक्टू-	175-200	1	30	
6	लोबिया	मार्च जुलाई	मई-सितम्बर	,,	1	30	
	रबी के चारे						
7	मेंथी (सेंजी)	अक्टू.-नव.	मार्च	200-250	1	25	
8	बरसीम	,,	दिसम्बर-मई	750-1000	5-6	2[illegible]	
9	रिजका	,,	दिसम्बर-जून	500 600	7-8	25	
10	जई	,,	जनवरी-मार्च	200 250	1-2	25	
	घासें						
11	नेपियर	मार्च-सित.	वर्ष भर (जाड़े के अलावा)	1500-2000	7-8	25	
12	गिनी घास	,,	,,	1000-2000	7-8	25	
	भूसा						
13	गेहूं, जौ, चना	अक्टू.-नव.	,,	—	—	90	
14	कड़बी	जुलाई-अगस्त	,,	—	—	90	
15	सूखी घास	—	,,	—	—	90	
16	साइलेज	—	,,	—	—	90	
17	दाना-खली	—	,,	—	—	90	

प्रश्न

1. पशु शरीर में कौन-कौन से तत्व मुख्य रूप में पाए जाते हैं ? इनका शरीर में क्या उपयोग है ?
2. पशु के लिए आहार की आवश्यकता को बताइये ।
3. सन्तुलित आहार से आप क्या समझते हैं इसके लिए कौन-कौन से तत्व होने चाहिए ? इन तत्वों की पूर्ति किन पदार्थों से होती है ?
4. आदर्श आहार किसे कहते हैं ? इसमें कौन-कौन से गुण होने चाहिए ?
5. पशुओं को दिए जाने वाले खाद्य पदार्थों का वर्गीकरण एवं पशु-पोषण मे इनके महत्त्व को लिखिए ।
6. मोटे चारे तथा रातब (दाना) में क्या भिन्नता है ? रातब में कौन-कौनसी वस्तुएँ किस-किस मात्रा में मिलानी चाहिए । (राज० बोर्ड, 1975)
7. निम्नलिखित में अन्तर स्पष्ट करो—
   (i) मोटे चारे व रातब ।
   (ii) निर्वाह एवं वर्धक आहार ।
8. अच्छे आहार की विशेषता लिखिए ।
9. चारे में पाए जाने वाले विभिन्न अवयवों के नाम लिखिए । दुधारू एवं कृषि में कार्य करने वाले पशुओं को चारे के साथ रातिबों को देने का क्या महत्त्व है ?

अध्याय—18

आहार का निर्धारण

(Computation of Ration)

पशुओं के आहार की मात्रा को निर्धारित करने के लिए कई मानक (Standards) काम में लाये जाते हैं परन्तु यहां पर हम विभिन्न भोज्य पदार्थों से प्राप्त शुष्क पदार्थ (Dry Malter) की मात्रा के आधार पर मोटे रूप से (Thumb rule Method) मात्रा को ज्ञात करने का अध्ययन करेंगे।

इसके लिये—(i) पशु का शरीर भार (ii) उत्पादन तथा (iii) गर्भावस्था का ज्ञान होना आवश्यक है।

पशु आहार गणना के नियम—

1. गाय के प्रति 100 कि० ग्रा० शरीर भार पर 2·5 कि० ग्रा० शुष्क पदार्थ देते हैं।
2. भैंस के प्रति 100 कि० ग्रा० शरीर भार पर 2·5–3·0 कि० ग्रा० शुष्क पदार्थ देते हैं।
3. दूध न देने वाली गाय व बैल को 100 कि०ग्रा० शरीर भार पर 2 कि.ग्रा. शुष्क पदार्थ देते हैं।
4. सूखी भैंस को प्रति 100 कि०ग्रा० शरीर भार पर 2 कि०ग्रा० शुष्क पदार्थ देते हैं।
5. बछड़े और बछियों को 100 कि०ग्रा० शरीर भार के अनुसार 1·5–2·0 कि०ग्रा० शुष्क पदार्थ देते हैं।
6. गाय को शरीर निर्वाह के लिए 1 कि०ग्रा०, भैंस को 1·5 कि०ग्रा०, सांड तथा बैल को 1·5 कि०ग्रा० दाने का मिश्रण देते हैं।
7. गाय के प्रति 3 लिटर दूध पर 1 कि०ग्रा० तथा भैंस के प्रति 2·5 लिटर दूध पर 1 कि०ग्रा० उत्पादन दाना देते हैं।
8. बैलों को उनके हल्के, औसत और भारी कार्य के अनुसार 1,1·5 तथा 2 कि०ग्रा० उत्पादन दाना देते हैं।

2. पशु के निर्वाह, उत्पादन तथा भ्रूण विकास के लिये दिये जाने वाले दाने की मात्रा ज्ञात करते हैं।
3. दाने से मिलने वाले शुष्क पदार्थ की मात्रा ज्ञात करते हैं।
4. कुल शुष्क पदार्थ की मात्रा से दाने से प्राप्त शुष्क पदार्थ की मात्रा घटा देते हैं, इस मात्रा को चारे से देते हैं।
5. ऋतु के अनुसार पशु को दिये जाने वाले शुष्क तथा हरे चारे का चयन करते हैं।
6. इन चारे से शेष शुष्क पदार्थ का आधा-आधा भाग सूखे तथा हरे चारे से देते हैं, दूध देने वाले पशुओं का शुष्क पदार्थ की $\frac{1}{3}$ भाग सूखे चारे तथा $\frac{2}{3}$ भाग हरे चारे से देते हैं।
7. हरे चारे में आधा शुष्क पदार्थ फलीदार तथा आधा बेफलीदार चारे से देते हैं।
8. दाने के मिश्रण में 40 भाग अन्न, 35 भाग खली, तथा 25 भाग चोकर मिलाते हैं।
9. इसके अतिरिक्त नमक तथा खनिज मिश्रण की निश्चित मात्रा प्रत्येक पशु को नियमानुसार प्रतिदिन दाने के साथ खिलाते हैं।

अभ्यास के लिये आहार सम्बन्धी प्रश्न

प्रश्न—1. एक 450 कि०ग्रा० भार वाली साहीवाल गाय जो प्रतिदिन 9 लिटर दूध दे रही है, अगस्त माह के एक दिन का आहार ज्ञात करो?

हल—

गाय को दिया जाने वाला कुल शुष्क पदार्थ—

∴ 100 Kg. शरीर भार शुष्क पदार्थ चाहिए 2·5 कि.ग्रा.

∴ 1 कि. ग्रा. ,, ,, $\frac{2.5}{100}$ कि. ग्रा.

∴ 450 कि. ग्रा. ,, ,, $\frac{450\times2.5}{100}$ कि. ग्रा.

शुष्क पदार्थ = 11·25 कि. ग्रा.

दाने की मात्रा—

दूध उत्पादन के लिये—

3 लिटर दूध पर चाहिए दाना 1 कि ग्रा.

9 लिटर ,, ,, ,, $\frac{9}{3}$ कि ग्रा.

दाने की कुल आवश्यकता— = 3 कि.ग्रा.

शरीर निर्वाह के लिये—1 कि. ग्रा.

दूध-उत्पादन के लिये—3 कि. ग्रा.

दाना = 4 कि. ग्रा.

दाने से प्राप्त शुष्क पदार्थ—

∴ 100 कि. ग्रा. दाने से प्राप्त शुष्क पदार्थ 90 कि. ग्रा.

∴ 1 कि. ग्रा. „ „ $\frac{90}{100}$ कि. ग्रा.

∴ 4 कि. ग्रा. „ „ $\frac{90 \times 4}{100}$ कि. ग्रा.

शुष्क पदार्थ = 3·6 कि. ग्रा.

चारे से देय शुष्क पदार्थ = कुल शुष्क पदार्थ — दाने से प्राप्त शुष्क पदार्थ

= 11·25 – 3·6

= 7·65 कि. ग्रा.

अगस्त माह में पशु को भर पेट हरी ज्वार देंगे जिससे 30% शुष्क पदार्थ मिलता है।

हरी ज्वार की मात्रा—

∴ 30 कि. ग्रा. शुष्क पदार्थ मिलता है। 100 कि. ग्रा. ज्वार से

∴ 1 „ „ $\frac{100}{30}$ कि. ग्रा.

∴ 7·65 कि. ग्रा. „ $\frac{7·65 \times 100}{30}$ कि. ग्रा.

= 25·5 कि. ग्रा.

दाने के अवयव का अनुपात—

40 भाग अन्न, 35 भाग खली तथा 25 भाग चोकर

अन्न की मात्रा—1·6 कि. ग्रा., खली की मात्रा—1.4 कि. ग्रा.

चोकर की मात्रा—1 कि. ग्रा.

उत्तर— हरी ज्वार—25·5 कि. ग्रा.

दाना— 4 कि.ग्रा. (1·6 कि.ग्रा. दाना, 1·4 कि.ग्रा. खली, 1 कि.ग्रा. चोकर)

नमक— 50 ग्राम

प्रश्न – 2. एक 400 कि ग्रा. भार वाली हरियाणा गाय जो 6 लिटर दूध दे रही है तथा 5 माह की गाभिन है, इस माह के एक दिन [illegible] चारा-दाना ज्ञात करिए ?

हल— गाय को दिया जाने वाला शुष्क पदार्थ —

∴ 100 कि ग्रा. शरीर भार पर शु. प. चा[illegible]

∵ 400 कि.ग्रा. ,, ,, $\frac{400 \times 2.5}{100}$ कि.ग्रा.

शुष्क पदार्थ—10 कि.ग्रा.

दूध के लिये दाना—

3 कि.ग्रा. दूध पर चाहिए 1 कि. ग्रा. दाना

6 कि ग्रा. ,, $\frac{6}{3}$ कि ग्रा.

=2 कि.ग्रा.

दाने की कुल आवश्यकता—

शरीर निर्वाह के लिए—1 कि.ग्रा.

दूध के लिए—2 कि ग्रा.

गर्भ विकास के लिए—1·5 कि.ग्रा.

कुल दाना=4·5 कि.ग्रा.

दाने से प्राप्त शुष्क पदार्थ—

∴ 100 कि.ग्रा. दाने से मिलता है शुष्क पदार्थ 90 कि.ग्रा.

∴ 1 कि.ग्रा. ,, ,, $\frac{90}{100}$ कि.ग्रा.

∴ 4·5 कि.ग्रा. ,, ,, $\frac{90 \times 4.5}{100}$ कि.ग्रा.

शुष्क पदार्थ=4·05 या 4·00 कि.ग्रा

चारे से देय शुष्क पदार्थ—कुल शु. प.- दाने से प्राप्त शु. प.

—10·0 – 4·00

=6 कि. ग्रा.

जून माह के चारे—भूसा तथा हरी मक्का

1/3 भाग शु प. भूसा से तथा 2/3 भाग हरी मक्का से देंगे

भूसा—2 कि.ग्रा.—शु. प. 90%

हरी मक्का—4 कि.ग्रा.—शु. प. 25%

भूसा की मात्रा—

∴ 90 कि.ग्रा. शुष्क पदार्थ मिलता है 100 कि.ग्रा. भूसे से

∴ 2 कि.ग्रा. ,, $\frac{100 \times 2}{90}$ कि.ग्रा.

भूसा=2·2 कि.ग्रा.

हरी मक्का की मात्रा—

∴ 25 कि. शुष्क पदार्थ मिलता है 100 कि.ग्रा. मक्का से

00=12·4 कि.ग्रा.

उपलब्ध चारे—भूसा और साइलेज

शुष्क पदार्थ बराबर मात्रा में देंगे

भूसे द्वारा–6·2 कि.ग्रा., साइलेज द्वारा–6·2 कि.ग्रा.

90% शुष्क पदार्थ 30% शुष्क पदार्थ

भूसे की मात्रा—

90 कि.ग्रा. शु. प. 100 कि.ग्रा. भूसे से

6·2 कि.ग्रा. „ $\frac{100 \times 6 \cdot 2}{90}$ कि ग्रा.

भूसा=6·8 कि.ग्रा.

साइलेज की मात्रा—

30 कि.ग्रा. शु. प. 100 कि.ग्रा. साईलेज से

6·2 „ „ $\frac{100 \times 6 \cdot 2}{30}$ कि. ग्रा.

साइलेज=20·66 कि.ग्रा.

दाने के अवयव—खली–2·2 कि.ग्रा., दाना–2·5 कि.ग्रा.

चोकर–1·5 कि.ग्रा.

उत्तर— भूसा–6·8 कि.ग्रा.

साइलेज–20·66 कि.ग्रा.

दाना–2·5 कि.ग्रा., खली–2·2 कि.ग्रा., चोकर–1·5 कि.ग्रा.

नमक–50 ग्राम

प्रश्न—4. एक 400 कि.ग्रा. भार वाले बैल के लिए, जो सामान्य कार्य कर रहा है, जून माह के एक दिन का चारा-दाना ज्ञात करिए।

हल— बैल को दिया जाने वाला शुष्क पदार्थ—

∵ 100 कि.ग्रा. शरीर भार पर चाहिए शुष्क पदार्थ 2·00 कि.ग्रा.

∴ 1 किग्रा. „ „ $\frac{2}{100}$ कि.ग्रा.

∴ 400 कि.ग्रा. $\frac{400 \times 2}{100}$ कि.ग्रा.

शुष्क पदार्थ 8 कि.ग्रा.

दाने की मात्रा—

शरीर निर्वाह के लिये—1·5 कि.ग्रा.

सामान्य कार्य के लिये—1·5 कि.ग्रा.

कुल दाना=3 कि.ग्रा.

∴ 4 कि.ग्रा. शु. प. मिलता है $\frac{100 \times 4}{25}$ कि.ग्रा. मक्का

हरी मक्का—16 कि.ग्रा.

दाने के अवयव—दाना— 1·8 कि.ग्रा., खली—1·5 कि.ग्रा.

चोकर—1·2 कि.ग्रा.

उत्तर—भूसा—2·2 कि.ग्रा.

हरी मक्का–16 कि.ग्रा.

नमक–50 ग्राम, दाना–4·5 कि.ग्रा. (1·8 कि.ग्रा. दाना, 1·5 कि ग्रा. खली 1·2 कि.ग्रा. चोकर)

प्रश्न—3. एक 6.00 कि.ग्रा. मुर्रा भैंस जो 8 लिटर दूध दे रही है तथा 5 माह की गाभिन है जबकि चारे में भूसा एवं साइलेज उपलब्ध है, एक दिन का चारा-दाना ज्ञात करिये ?

हल — भैंस को दिया जाने वाला शुष्क पदार्थ–

∴ 100 कि ग्रा. शरीर भार चाहिए शुष्क पदार्थ 3 कि.ग्रा.

∴ 1 कि.ग्रा. „ „ $\frac{3}{100}$ कि.ग्रा.

∴ 600 कि.ग्रा. „ „ $\frac{600 \times 3}{100}$ कि.ग्रा.

शुष्क पदार्थ=18 कि ग्रा.

दूध के लिये दाने की मात्रा—

2·5 लिटर दूध पर 1 कि.ग्रा.

8 लिटर „ $\frac{8}{2 \cdot 5}$ कि.ग्रा.

दाना=3·2 कि.ग्रा.

दाने की आवश्यकता—

शरीर निर्वाह दाना—1·5 कि.ग्रा.

दूध उत्पादन दाना—3·2 कि.ग्रा.

गर्भ विकास दाना— 1·5 कि.ग्रा.

कुल दाने की मात्रा—6·2 कि.ग्रा.

दाने से प्राप्त शुष्क पदार्थ= $\frac{6 \cdot 2 \times 90}{100}$ कि.ग्रा.

=5·6 कि.ग्रा.

चारे से देय शुष्क पदार्थ = कुल शुष्क पदार्थ—दाने से प्राप्त शुष्क पदार्थ

=18—15·6

$\frac{00}{}$ = 12·4 कि.ग्रा.

उपलब्ध चारे—भूसा और साइलेज

शुष्क पदार्थ बराबर मात्रा में देंगे

भूसे द्वारा–6·2 कि.ग्रा., साइलेज द्वारा–6·2 कि ग्रा.

90% शुष्क पदार्थ — 30% शुष्क पदार्थ

भूसे की मात्रा—

90 कि.ग्रा. शु. प. 100 कि.ग्रा. भूसे से

6·2 कि.ग्रा. „ $\frac{100 \times 6.2}{90}$ कि ग्रा.

भूसा = 6·8 कि.ग्रा.

साइलेज की मात्रा—

30 कि.ग्रा. शु. प. 100 कि.ग्रा. साईलेज से

6·2 „ „ $\frac{100 \times 6.2}{30}$ कि. ग्रा.

साइलेज = 20·66 कि.ग्रा.

दाने के अवयव—खली–2·2 कि.ग्रा., दाना–2·5 कि.ग्रा.

चोकर–1·5 कि ग्रा.

उत्तर— भूसा–6·8 कि.ग्रा.

साइलेज–20·66 कि.ग्रा.

दाना–2·5 कि.ग्रा., खली–2·2 कि.ग्रा., चोकर–1·5 कि.ग्रा.

नमक–50 ग्राम

प्रश्न—4. एक 400 कि.ग्रा. भार वाले बैल के लिए, जो सामान्य कार्य कर रहा है, जून माह के एक दिन का चारा-दाना ज्ञात करिए।

हल— बैल को दिया जाने वाला शुष्क पदार्थ—

∵ 100 कि.ग्रा. शरीर भार पर चाहिए शुष्क पदार्थ 2·00 कि.ग्रा.

∴ 1 किग्रा. „ „ $\frac{2}{100}$ कि.ग्रा.

∴ 400 कि.ग्रा. $\frac{400 \times 2}{100}$ कि.ग्रा.

शुष्क पदार्थ 8 कि.ग्रा.

दाने की मात्रा—

शरीर निर्वाह के लिये—1·5 कि.ग्रा.

सामान्य कार्य के लिये—1·5 कि.ग्रा.

कुल दाना = 3 कि.ग्रा.

दाने से प्राप्त शुष्क पदार्थ $= \frac{3 \times 90}{100}$ कि.ग्रा.

=2·7 कि.ग्रा.

चारे से देय शुष्क पदार्थ = कुल शुष्क पदार्थ—दाने से प्राप्त शुष्क पदार्थ

= 8·0 – 2·7

=4·3 कि.ग्रा.

जून माह के चारे-भूसा व हरी मक्का (शुष्क पदार्थ आधा-आधा देंगे)

2·1 : 2·2

भूसे की मात्रा—$\frac{2·1 \times 10}{9}$
90% शु. प.

=2·33 कि.ग्रा.

हरी मक्का की मात्रा=2·2 × 4
25% शु. प.

= 8·8 कि ग्रा.

दाने के अवयव=दाना—1·95 कि.ग्रा., खली–1·05 कि.ग्रा.
चोकर—·75 कि.ग्रा.

उत्तर— भूसा—2·33 कि.ग्रा.
हरी मक्का—8·8 कि ग्रा.
दाना मिश्रण—दाना–1·95 कि.ग्रा., खली–1·05 कि ग्रा..
चोकर–·75 कि.ग्रा., नमक–50 ग्राम

प्रश्न—5. एक सिंधी बछिया जिसका भार 300 कि.ग्रा. है जो 6 माह की गाभिन है, फरवरी माह के एक दिन का चारा–दाना ज्ञात करिए ?

हल— बछिया को दिया जाने वाला शुष्क पदार्थ—

∴ 100 कि ग्रा. शरीर भार पर चाहिये शुष्क पदार्थ 2 कि.ग्रा.

∴ 300 कि ग्रा. „ „ $\frac{2 \times 300}{100}$ कि.ग्रा.

शुष्क पदार्थ=6 कि ग्रा.

दाने की आवश्यकता—
शरीर निर्वाह के लिये– 1·5 कि.ग्रा.
गर्भ विकास के लिये— 1·0 कि.ग्रा.
कुल दाना= 2·5 कि.ग्रा.

दाने से प्राप्त शुष्क पदार्थ–$\frac{2·5 \times 90}{100}$ कि.ग्रा

=2·25 कि.ग्रा.

चारे से देय शुष्क पदार्थ=कुल शुष्क पदार्थ–दाने से प्राप्त शुष्क पदार्थ
=6·00 – 2·25
=3·75 कि.ग्रा.

फरवरी माह के चारे—

	भूसा	—	मेंथी
देय शुष्क पदार्थ	1·80	:	1·95

भूसे की मात्रा—$\frac{100 \times 1·80}{90}$
90% शु. प.

भूसा=2·0 कि.ग्रा.

मेथी की मात्रा—$\frac{100 \times 1·95}{25}$
25% शु. प.

मेथी=7·80 कि.ग्रा.

दाने के अवयव = 1 95 कि.ग्रा. दलिया, 1·2 कि.ग्रा. खली,
·0·75 कि.ग्रा. चोकर

उत्तर— भूसा—2·00 कि.ग्रा.
मेंथी—7·80 कि.ग्रा.

दाने का मिश्रण—1·95 कि.ग्रा. दलिया, 1·2 कि.ग्रा. खली, 0·75 कि.ग्रा. चोकर
नमक—50 ग्राम

प्रश्न – 6. एक 750 कि.ग्रा. भार वाला जर्सी सांड जो प्रजनन कार्य करता है, जुलाई माह के एक दिन का चारा–दाना ज्ञात करिये ?

हल—

सांड को दिया जाने वाला शुष्क पदार्थ–

∴ 100 कि.ग्रा. शरीर भार पर शुष्क पदार्थ चाहिये 2 कि.ग्रा.

∴ 1 कि.ग्रा. ,, ,, $\frac{2}{100}$ कि.ग्रा.

∴ 750 कि.ग्रा. ,, ,, $\frac{750 \times 2}{100}$ कि.ग्रा.

शुष्क पदार्थ—15 कि.ग्रा.

दाने की मात्रा—
शरीर निर्वाह के लिए—1·5 कि.ग्रा.
प्रजनन के लिए—2·0 कि.ग्रा.
कुल दाना=3·5 कि.ग्रा.

दाने से प्राप्त शुष्क पदार्थ $= \frac{3{\cdot}5 \times 90}{100}$ कि.ग्रा.

$= 3{\cdot}15$ कि.ग्रा.

चारे से देय शुष्क पदार्थ = कुल शुष्क पदार्थ – दाने से प्राप्त शुष्क पदार्थ

$= 15 - 3{\cdot}15$ कि.ग्रा.

$= 11{\cdot}85$ कि.ग्रा.

जुलाई माह में हरी ज्वार (चरी) मिलेगी जिससे पूरा शुष्क पदार्थ दिया जावेगा।

हरी ज्वार की मात्रा – $\frac{100 \times 11{\cdot}85}{30}$
30% शुष्क पदार्थ

$= 39{\cdot}5$ कि ग्रा.

दाने का अवयव—दलिया–1·4 कि.ग्रा., खली–1·2 कि.ग्रा.,
चोकर–·9 कि.ग्रा.

उत्तर— हरी ज्वार—39·5 कि ग्रा.
दाना—3·5 कि.ग्रा. (दलिया–1·4 कि.ग्रा., खली–2 कि.ग्रा.
चोकर—·9 कि.ग्रा.)
नमक—50 ग्राम

प्रश्न 7. एक बरबरी बकरी का भार 40 कि.ग्रा. है वह 1·5 लिटर दूध दे रही है, जनवरी माह के एक दिन का चारा-दाना ज्ञात करो ?

हल— बकरी को दिये जाने वाला शुष्क पदार्थ–

∴ 100 कि.ग्रा. शरीर भार पर देते हैं 5 कि.ग्रा. शु.प.

∴ 1 कि.ग्रा. $\frac{5}{100}$ कि.ग्रा.

∴ 40 कि.ग्रा. $\frac{40 \times 5}{100}$ कि.ग्रा.

शुष्क पदार्थ = 2 कि.ग्रा.

दूध के लिये दाना—

1 लिटर दूध पर ·5 कि.ग्रा. दाना

∴ 1·5 लिटर $\frac{{\cdot}5 \times 1{\cdot}5}{1{\cdot}0}$ दाना

दाना = ·75 कि.ग्रा.

दाने की मात्रा—

शरीर निर्वाह के लिए—300 ग्राम

दूध के लिए—750 ग्राम

कुल दाना—1·050 कि.ग्रा.

दाने से प्राप्त शुष्क पदार्थ $= \dfrac{90 \times 1{\cdot}05}{100}$

$= {\cdot}94$ कि.ग्रा.

चारे से देय शुष्क पदार्थ = कुल शुष्क पदार्थ − दाने से प्राप्त शुष्क पदार्थ

$= 2{\cdot}0 - 0{\cdot}94$

$= 1{\cdot}06$ कि.ग्रा.

जनवरी माह में बरसीम देंगे।

बरसीम की मात्रा— $\dfrac{1{\cdot}06 \times 4}{25}$
25% शु. पदार्थ

$= 4.24$ कि.ग्रा.

सूखा चारा बकरी को इच्छानुसार देना चाहिए

उत्तर— बरसीम—4·24 कि.ग्रा.
दाना—1·05 कि.ग्रा.
नमक—10 ग्राम

—प्रश्न—

1. दूध देने वाले पशु के भोजन में कौन-कौन से भिन्न-भिन्न पदार्थों का समावेश होनी चाहिए और क्यों ?
2. मवेशियों को भोजन खिलाने के क्या-क्या सामान्य सिद्धान्त हैं ? लिखिए।
3. मवेशियों को खिलाने के लिए दाने-चारे की मात्रा निर्धारित करने के विभिन्न सिद्धान्त लिखिए ?
4. सन्तुलित आहार किसे कहते हैं ? पशुओं के आहार निश्चित करने के कौन-कौन से सिद्धान्त हैं।
5. पशुओं के खिलाने के सामान्य सिद्धान्त का वर्णन कीजिए ?
6. एक गाय जो 10 किलोग्राम दूध देती है, अक्टूबर माह के लिए आहार नियत कीजिए।
7. एक 500 कि. ग्रा. शरीर भार वाली तथा प्रतिदिन 10 लिटर दूध देने वाली भैंस की जनवरी मास का संतुलित आहार ज्ञात करिये ?
8. एक भैंस जिसका भार 6 कि. ग्रा. है और 12 लीटर दिन दूध देती हैं, उसके लिये एक दिन के लिए निम्न लिखित जानकारी दीजिये।

मात्रा (iv) दाने की मात्रा व इसके अवयव ?

9. निम्नलिखित में से किन्ही दो के आहार तथा प्रबंध के बारे में बताइयें।
(अ) दुधारु गाय (ब) प्रजनन करने वाला सांड (स) बैल।

10. निम्नलिखित पशुओं को किस आधार पर कितना राशन देंगे--
(अ) 12 लीटर माह दूध देने वाली गाय
(ब) चार माह की गर्भित गाय
(स) 7·5 लीटर दूध देने वाली मुर्रा भैंस
(द) 3 वर्ष की वछिया

चारे का संरक्षण

(Observation of Fodders)

हरे चारे का संरक्षण

1. साइलेज (Silage)

उन्नत कृषि के लिए उत्तम पशुधन आवश्यक है, जो उत्तम चारे के खिलाने पर निर्भर है। स्वस्थ एवं अच्छे पशुओं को 2/3 भाग हरा चारा दिया जावे परन्तु वर्ष भर हरा चारा उपलब्ध नहीं होता है। अतः जब हरा चारा प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध हो तो इसे रसीलेरूप में ही सुरक्षित कर लिया जावे, इसी चारे को 'साइलेज' कहते हैं।

'हरे चारे को रसीले रूप में संरक्षण करना साइलेज बनाना है तथा इस संरक्षण से प्राप्त पदार्थ साइलेज कहलाता है।'

'साइलेज वह रसीला चारा है जिसमें पर्याप्त नमी होती है तथा वायु की अनुपस्थिति में किण्वन द्वारा संरक्षित किया जाता है।

साइलेज बनाने की विधि—सर्वप्रथम इटली में 1786 में प्रयोग मे लाई गई। अमरीका में 1873 मे श्रीफ्रेंड एल० हेच ने अपने कृषि फार्म पर साइलो बनाकर साइलेज बनाया। भारत में ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने इसे सदी के प्रारंभ मे शुरू किया तभी से इसे उपयोग में ला रहे हैं।

साइलेज बनाने से लाभ—(i) पशुओं को हरा चारा ऐसे समय में उपलब्ध होता है जब इनकी कमी होती है।

(ii) चारे के सूखने पर उनकी पौष्टिकता कम हो जाती है जबकि साइलेज से चारे की पौष्टिकता बनी रही है।

(iii) थोड़े स्थान में कई गुना अधिक साइलेज इकट्ठा कर सकते हैं। एक टन सूखी कड़बी एक टन साइलेज की जगह की तुलना में 10 गुना अधिक स्थान घेरती हैं।

(iv) यह पशुओं की पाचन-शक्ति बढ़ाती है।

(v) थोड़े से व्यय में बहुत मूल्यवान हराचारा हर मौसम में मिल सकता है।

(vi) दूध देने वाले पशुओं को साइलेज देने पर दाने की मात्रा में कमी की जा सकती है।

(vii) आग लगने तथा खराब होने की संभावना काफी कम है।

(viii) जिन चारे का 'हे' नहीं बनता है उनका साइलेज में उपयोग किया जा सकता है।

साइलेज बनाने कि विधि—

साइलेज बनाने में निम्न बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है—

(अ) साइलो की बनावट

(ब) चारा (जिनसे साइलेज बनाना है)

(स) साइलो प्रबंध

साइलो की बनावट—साइलो उस गड्ढा को कहते है जिसमें चारे को संरक्षित करते हैं। इसके बनाने में निम्न बातों का ज्ञान होना आवश्यक है—

(1) साइलो का स्थान एवं आकार:— साइलो ऐसे स्थान पर बनाया जावें जो आस-पास के स्थान धरातल से ऊंचा हो जिससे पानी का भराव न हो सके।

साइलो का आकार पशुओं की संख्या पर निर्भर करता है। इसे कभी भी अधिक व्यास का नहीं बनाना चाहिये। इसकी लम्बाई, चौड़ाई या व्यास इतना रखें कि पशुओं को एक दिन में कम से कम 5 से. मी. तह साइलेज की काम आ सके।

(2) साइलो के प्रकार—तीन प्रकार के साइलो काम में आते हैं—

(क) साइलो गर्त (Silo Pit)—भूमि में आवश्यकतानुसार गोली, लम्बा, चौकोर गड्ढा खोद लेते हैं। साधारण पशुपालक के लिए 2 मीटर व्यास तथा 4 मीटर गहराई वाले साइलो अच्छे रहते हैं जिसमें लगभग 6 टन चारा आ सकता है। अधिक मात्रा में चारा रखने के लिए गड्ढा का आकार बढ़ा सकते हैं। ये अपेक्षाकृत सस्ते हैं। पानी की सतह ऊंची होने पर फर्श और दीवालों को प्लास्टर करके पक्का बना देना चाहिये।

(ख) खाईदार साइलो (Trench Silo)— यह एक खाई होती है जो ऊपर 2 348 मीटर तथा नीचे 2. 134 मीटर लम्बी होती है। खाई का धरातल एक ओर ढालदार होता है जिससे चारे ले जाने में आसानी रहे। खाई की गहराई 2· 5 मीटर से अधिक न रखनी चाहिए। इसकी दीवालें ढालदार रखें तथा प्लास्टर कराना अच्छा है। अधिक वर्षा वाले भागों में खाइयां उपयुक्त नहीं रहती है।

(ग) साइलो बुर्ज (Silo Touer)— जमीन के ऊपर ठोस दीवालो के पक्के बनाये जाते हैं। बुर्ज का आकार चारे की मात्रा पर निर्भर करती है। 25 टन चारे के लिये 3. 05 मीटर व्यास और 6. 01 मीटर ऊंचाई वाला बुर्ज पर्याप्त है। पक्का होने से साइलेज अच्छा बनता है तथा ये पूर्णतया अग्नि आदि से सुरक्षित रहते हैं।

साइलो की बनावट में निम्नलिखित बिन्दुओं का ध्यान रखना आवश्यक है—

(i) साइलो की दीवालें मजबूत एवं अन्दर चिकनी हों जिससे हवा न जा सके अन्यथा फफूंदी लगने का भय रहता है।

(ii) साइलो के निर्माण में प्रयुक्त सामग्री का साइलेज के गुणों पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए।

(iii) फर्श पक्का होना चाहिए, नालियां आवसक नहीं है पर अतः टिकाऊ होनी चाहिए।

(ब) साइलेज के लिये चारे:—साइलेज बनाने के लिये किसी भी प्रकार का हरा चारा काम में ला सकते हैं। इनमें हरी घासें, चारे की फसलें ज्वार, बाजरा मक्का, दाल वाली फसलें, गन्ने के अगोजे तथा अन्य भाग काम में लाते हैं। घासों के साथ दाल चारे की फसले मिलानेसे साइलेज की पोषकता बढ़ जाती है। फली दार फसलों के चारे में कार्बोहाइड्रेट की कमी होने से गड्ढे भरते समय 2% शीरे के घोल को प्रत्येक सतह पर छिड़काव करते हैं जिससे जीवाणुओं को ऊर्जा आसानी से जाती है और किण्वन अच्छी तरह से होता है।

(स) साइलो का प्रबंध—

(i) चारे की कटाई—साइलेज बनाने के लिये चारे को उनमे दूधिया दाना पड़ जाने पर, काट लेना चाहिए। अधिक सूख जाने पर गड्ढे में भरते समय हवा रह जायेगी जिससे फफूंदी लगने की आशंका रहती है और किण्वीकरण क्रिया सुचारु रूप से नहीं होगी। अधिक हरा रहने पर सड़ान पैदा हो जावेगी। अतः फसल में दूधिया दाना पड़ते ही प्रातः काटकर खेत में सारे दिन के लिये छोड़ देते हैं जिससे नमी की कुछ मात्रा कम हो जावेगी।

फसल कटाई के बाद चारा काटने की मशीन (Chaff cutter) से 6.35 18 मि. मी. लम्बाई के टुकड़े काट लेना चाहिए परन्तु 12·5 मि. मी. लम्बाई के टुकड़े सबसे अच्छे रहते हैं। कटाई के बाद इनका 2-3 घण्टे के लिये छोड़ने पर कुछ नमी की मात्रा कम हो जाती है।

(ii) साइलो की भराई—चारे की गढ्ढे में भराई पूर्व नमी नहीं होनी चाहिए। इसके लिए गड्ढे की दीवालों पर 15 से. मी मोटी गेहूं का भूसा, घास का धान के डंठल (पुआल) लगा देना चाहिए, प्लास्टिक की पतली तह बिछाई जा सकती है जिससे चारा दीवालों के सम्पर्क में न आवे।

चारे में 45 कि ग्रा. नमक प्रति टन मिलाने से इसकी स्वादिष्टता बढ़ जाती है। थोड़ी मात्रा मे चारा भरने पर इसे अच्छी तरह दबाते रहना चाहिए।

गढ्ढे को कम से कम समय भरना चाहिए जिससे वायु का प्रवेश कम हो। गढढे को भूमि की सतह से 1-1.5 मीटर ऊंचाई तक भरकर गीली मिट्टी से अच्छी तरह बन्द कर देना चाहिए। बाजार मे विभिन्न आकार के गड्ढा को ढकने के प्लास्टिक कवर मिलते हैं, इनको प्रयोग किया जा सकता है। ये टिकाऊ तथा सुरक्षित होते हैं।

(iii) साइलो को खोलना— साइलो को आवश्यक पड़ने पर एक माह में खोला जा सकता है। गढ्ढे को खोलने के बाद प्रतिदिन 50 मि. मी. तह रोजाना खिलाते रहने चाहिए अन्यथा हवा के सम्पर्क में आने से साइलेज के काला पड़कर फफूंदयुक्त होने की संभावना है।

साइलेज खिलाना— अच्छी तरह से संरक्षित किया साइलेज कई वर्षों तक सुरक्षित रखा जा सकता है। पशुओं को निम्न मात्रा मे प्रतिदिन साइलेज खिलाना अच्छा रहता है—

(i) दूध देने वाली गाय — 16-18 कि. ग्रा.
(ii) दूध देने वाली भैंस — 20·5-225 कि. ग्रा.
(iii) बैल — 10-13 कि. ग्रा.
(iv) बछड़े — ·5-2·5 कि. ग्रा.

साइलेज खिलाने से लाभ—

1. हरे चारे की कमी के दिनों मे साइलेज पशुओ के अच्छे पालन-पोषण मे सहायक होता है।

2. यह सूखे चारे की अपेक्षा अधिक पाचक होता है क्योंकि रूमेन के अन्दर किन्वन के द्वारा उत्पन्न अम्ल इसमें पहिले से विद्यमान रहते हैं जिससे रूमेन में साइलेज के किन्वन की अधिक आवश्यकता नहीं होती है।

3. यह आहार के अनेक तत्वों की पूर्ति करता है जिससे पशु का उत्पादन बढ़ जाता है।

4. खाने में स्वादिष्ट होने से पशु चाव से खाते हैं।

5. चरागाह में न जाने वाले पशुओं के लिये लाभप्रद है।

6. सूखे चारे के साथ खिलाने पर पाचन शक्ति को बढ़ाता है।

2. हे बनाना (Hay Making)

वे स्वादिष्ट, पौष्टिक एवं पाचक घासे है जो बहुतायत के समय में हरी अवस्था में काटकर संरक्षित कर ली जाती हैं तथा हरे चारे कमी के समय पशुओं को खिलाने के उपयोग मे आता है।

उद्देश्य— आहार संरक्षण मे इसका मुख्य उद्देश्य घासो को सुखाकर पानी या नमी की मात्रा को कम करके बिना आवश्यक तत्वों के ह्रास से आवश्यक समय

के लिये संचित करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये घासों को पत्तियों के गिरने, रंग उड़ने, रिसाव एवं किन्वन आदि क्रियाओं से बचाना है।

हे के लिये घास की विशेषतायें:—

1. घासों में खरपतवारों के पौधे एवं अन्य ठूंठ आदि न हों।

2 घासों का रंग हरा हो तथा दुष्पचनीय तन्तु कम से कम हों।

3. घासों से पत्तियों की बिखराहट कम से कम हों।

4. घासों को पकने से पूर्व काट लाना चाहिये।

5. घासें पूर्णतया साफ तथा अन्य फफूंद आदि से रहित हों।

6. इनके संचितकाल में पौष्टिक तत्वों की ह्रास कम से कम हो।

उपयुक्त फसलें — हे बनाने के लिये फलीदार एवं बेफलीदार दोनों प्रकार की फसलों को उपयोग में लाया जा सकता है।

(अ) फलीदार फसलें—रिजका, बरसीम, मटर, सेम, लोबिया आदि।

(ब) बे फलीदार फसले— जई, सूडान घास, दूब घास, अजन, जनकरा, धावन, सेवन आदि घासें।

घासों की कटाई— फसलों की कटाई फूल आते समय ही कर लेना अच्छा रहता है क्योंकि इस दशा में पौधों में कैरोटिन, प्रोटीन, पाचक कार्बोहाइड्रेट तथा खनिज लवण अधिकता में होते हैं। काटने का समय प्रातः काल ओस छूटने का समय है। घासों को काट कर इनके छोटे-छोटे फूल बना लेते हैं।

घास सुखाने कि विधि— हे किसी भी तरीके से बनाई जावे परन्तु सुखाने से इनमें 25% खाद्य तत्वों में कमी आ जाती हैं जो वातावरण की असामान्य दशाओं के कारण होती है।

कटी घासों को सुखाने के लिए निम्न विधियां अधिक प्रचलित हैं—

(1) तिगुड़िया विधि (Tripod Method)—इसमें तीन बासों को ऊपर से बांधकर भूमि पर समत्रिबाहु त्रिभुज की आकृति में रख देते हैं। घास फैला दी जाती है जिसको बास से एकाध बार पलट देते हैं।

(2) फार्म बाड़ विधि (Farm Fonces Method)—फार्म के चारो ओर खिचे तारों या आहार दीवारों पर घासों को फैला देते हैं।

(3) भूमि सतह विधि (Ground Method)—शुष्क भूमि में घासों को 22·5-30·0 से. मी. मोटी तह मे या छोटी-छोटी ढेरियों मे फैला दिया जाता है।

घासों का समान रूप में अच्छी तरह सुखाने के लिये 1-2 बार पलटना अच्छा रहता है।

हे संचय करना — सूखी घास में भण्डारित के समय 20% से अधिक नमी नही होनी चाहिए। घासों के अधिक सूखने पर प्रोटीन तथा केरोटीन की मात्रा कम हो जाती है तथा कम सूखने पर सड़ने की आशंका रहती है।

घासों के अच्छी तरह से सूखने पर ऊंचे स्थान पर मामूली गड्ढा खोदकर चारे को ढेर के रूप में संचय करते हैं। ढेर लगाने की एक विशेष कला होती है, इसे पानी आदि से बचाव के लिए ऊपर छप्पर डाल देते हैं।

अच्छी तरह संचय की गई हे कई वर्षों तक सुरक्षित रखी जा सकती है। आवश्यकता होने पर ढेर को (बाग) खोलकर काम में लाना चाहिये। घासों से धूल, फफूंद आदि हटाकर पशु को खिलाना चाहिये।

प्रश्न

1. साइलेज किसे कहते हैं? इससे क्या लाभ हैं?
2. साइलेज बनाने में कौन-कौन सी फसलें प्रयुक्त की जाती हैं, साइलेज बनाने की विधि को लिखो?
3. साइलो का प्रबंध किस प्रकार करोगे? इसे पशुओं को कब और कितना खिलाओगे?
4. गर्मियो मे हरे चारे की समस्या को सुलझाने के लिये सुझाव दीजिये?
6. साइलेज किसे कहते है? साइलेज बनाने की विधि का वर्णन कीजिये? (राज. बोर्ड, 1983)
7. हे बनाने में कौन सी फसलें प्रयुक्त की जाती हैं? इनसे किस प्रकार हे बनायेंगे?
8. घास से आप क्या समझते हैं? घास हेतु प्रयुक्त फसलों के नाम लिखिये तथा घास सुखाने की विधि का वर्णन भी करिये?

—:o:—

द्वितीय-खण्ड

पशु चिकित्सा विज्ञान

(VETERINARY-SCIENCE)

1. पशु स्वास्थ्य रक्षा
2. पशुओं का तापक्रम, नाड़ी गति एवं श्वांस गति
3. औषधि-प्रभाव सूचक शब्द
4. सामान्य औषधियाँ
5. औषधियों के रूप एवं प्रयोग
6. पशुओं की सामान्य व्याधियां
7. पेट सम्बन्धी रोग
8. चर्म रोग
9. संक्रामक एवं छूत रोग—जीवाणुज, फफूँदी तथा वायरस रोग।

...राब तथा

... जाड़कर पालन-पोषण

...हक प्रभाव यह होता है कि पशुओं के खराब ... प्राप्त होता है। अच्छा आहार तथा उचित व्यवस्था ... क्षमता का अधिकांश भाग शरीर निर्वाह में ही ... जाता है।

अध्याय 19

पशु-स्वास्थ्य रक्षा

(Animal Health and Hygieh)

भारतीय अर्थव्यवस्था में पशुधन का महत्वपूर्ण स्थान है। विदेशों की तुलना मे देश के पशुओं की दशा खराब है। इनके अच्छे स्वास्थ्य न होने से उत्पादन भी अच्छा नहीं मिलता है जिससे पशुपालक पर भारस्वरूप रहते हैं। पशु दशा ठीक न होने का मुख्य कारण इनकी उचित देखभाल न करना है। इनकी उचित देख-रेख करके इनको विकसित किया जा सकता है।

सफल पशुपालन के आधारभूत सिद्धान्त :

प्रत्येक स्थान पर हर वक्त पशु चिकित्सक के उपलब्ध न होने से पशुपालकों को प्राथमिक उपचार करना पड़ता है, अतः पशु परिचर्या तथा सामान्य उपयोग में आने वाली औषधियों का ज्ञान होना आवश्यक है।

पशुओं की स्वास्थ्यहीनता के कारण :

1. अज्ञानता—अधिकांश पशुपालकों के अशिक्षित होने से वे पशुओं का पालन सही तरीकों से नहीं करते हैं। गरीब पशुपालकों का कहना ही क्या, समृद्ध व्यक्ति तो अच्छे पशु को क्रय कर लेते हैं परन्तु इनकी देख-रेख न करके नौकर से कराते हैं जिससे अच्छे पशुओं का स्वास्थ्य खराब तथा उत्पादन भी कम हो जाता है। इससे बम्बई नगर में साहीवाल गाय तथा मुर्रा भैंस की खराब स्थिति अच्छे उदाहरण हैं।

2. अशिक्षा—अधिकांश पशुपालक अशिक्षित हैं जिससे वे पशु की ठीक ढग से देख-रेख नहीं करते हैं तथा इनकी सफाई पर ध्यान नही देते हैं। पशु के बीमार होने पर चिकित्सा न कराकर झाड़-फूंक कराते हैं। नवीन पशुपालन के ज्ञान को भी ग्रहण नही करते हैं।

3. निर्धनता—अधिकांश पशुपालक गरीब हैं जिससे वे स्वयं अपनी तथा परिवार की न्यूनतम भोजन, आवास तथा अन्य व्यवस्थाओं के लिए ही धन नहीं जुटा पाते हैं फिर वे पशुओं की क्या व्यवस्था करेंगे। इस कारण पशुओं का स्वास्थ्य दिनोंदिन बदतर होता जाता है।

4. पशुपालन व्यवसाय का ज्ञान न होना—ग्रामीण क्षेत्र में पशुपालक अपनी सामर्थ्य से अधिक पशुओं को रखता है जिनको चरागाह मे भेजा जाता है जहाँ ये थोड़ी बहुत घास-तिनके चरते हैं। सायं पशुपालक थोड़ा दूध प्राप्त करके अपने कर्त्तव्य की पूर्ति मान लेते हैं।

पशुपालक की दूध की आवश्यकता के लिए एक गाय-भैंस तथा कृषि कार्य हेतु एक जोड़ी बैल पर्याप्त हैं। व्यावसायिक दृष्टि से न सोचकर पशुओं की अधिक संख्या रख लेता है इनकी उचित देखभाल न होने से इनका स्वास्थ्य खराब तथा कम उत्पादन मिलता है। कृषि और पशुपालन का सम्बन्ध जोड़कर पालन-पोषण किया जाना आवश्यक है।

इन सभी बातों का सामूहिक प्रभाव यह होता है कि पशुओ के खराब स्वास्थ्य से कम उत्पादन प्राप्त होता है। अच्छा आहार तथा उचित . . होने की इनकी क्षमता का अधिकांश भाग शरीर निर्वाह में ही चला जाता

पशु की जाति	सामान्य तापक्रम °F	औसत तापक्रम
गाय	101·0—102·0	101·5
भैंस	9৲·0—102 0	101·5
बकरी	101·5—104·0	103·5
भेड़	101·5—104·0	103·5
मुर्गी	105·0—109·5	107·0

सावधानी—

1. प्रयोग से पूर्व तापमापी के पारे का तल घुण्डी तक सीमित हो।
2. तापमापी की घुण्डी पर वेसलीन लगाकर चिकना करें।
3. थर्मामीटर की घुण्डी को हाथ से न छुएँ अन्यथा शरीर की गर्मी से पारा चढ़ेगा।
4 गुदा में तापमापी पृथ्वी की ओर तिरछा करने पर दीवाल को छुयेगा जिससे शरीर का ताप आवे।
5. तापक्रम मालूम करने पर तापमापी को साफ करके खोल में रखकर यथास्थान रखें।

पशुओं की नाड़ी गति ज्ञात करना :

पशुओं की नाड़ी गति मनुष्य की भाँति पहिली दो-तीन उंगली को नाड़ी पर रखकर घड़ी की सहायता से ज्ञात करते हैं।

गाय, भैंस तथा बकरी में नाड़ी गति पशु की पूँछ की जड़ की 'काक्सीजियल धमनी' के ऊपर हाथ रखकर ज्ञात करते हैं।

घोड़ा, गदहा में जबड़े के नीचे की 'मैक्सीलरी धमनी' से नाड़ी गति ज्ञात करते हैं। कुत्ते की जाँघ के अन्दरुनी भाग में स्थित फिमोरल धमनी से गति ज्ञात करते हैं।

पशु की जाति	नाड़ी गति प्रति मिनट
गाय	42— 60
भैंस	40— 45
भेड़-बकरी	67— 82
मुर्गी	120—160

पशु व्यवस्थायें :

1. पर्याप्त एवं आरामदायक आवास
2. सन्तुलित भोजन व्यवस्था
3. शुद्ध जल व्यवस्था
4. मौसम से रक्षा
5. शारीरिक देख-रेख
6. दुधारु पशुओं की परिचर्या
7. बछड़े-बछियों की सार-सम्भाल
8. सांड की देखभाल
9. पशुओं से उचित व्यवहार
10. पशु स्वास्थ्य रक्षा।

स्वस्थ पशुओं के तापक्रम, नाड़ी गति एवं श्वांस गति (Temperature, Pulce sate and respiration of Healthy animals)

पशुओं के तापक्रम, नाड़ी गति एवं श्वसन गति का उतना ही महत्व है जितना मानव शरीर के लिए है। इनमें से किसी भी एक के बढ़ने तथा कम होने का दूसरे की गति पर तुरन्त प्रभाव होता है। इनके ज्ञान से पशु की स्वस्थता प्रकट होती है, क्योंकि शारीरिक क्रियाएँ इनके द्वारा नियन्त्रित होती हैं। अतः पशुपालक को इनका ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

पशुओं का तापक्रम ज्ञात करना :

तापक्रम लेने के लिए साधारण तापमापी की भाँति तापमापी प्रयोग में लाते है जो अपेक्षाकृत आकार में बड़ा होता है।

ताप लेने के लिए पशु को अच्छी तरह से वश में करें। थनतापमापी की घुण्डी पर वेसलीन लगाकर चिकना कर लेते हैं। तापमापी को दायें हाथ मे लेकर पशु को थपथपाते हुए उसकी पूँछ के पास पहुँचते हैं। पूँछ को बायें हाथ से उठाकर तापतापी को पहिली अंगुली के सहारे पशु की गुदा (Rectum) मे अन्दर घुसेड कर पृथ्वी की ओर तिरछा करें जिससे तापमापी की घुण्डी गुदा की श्लेषल झिल्ली को छुए। एक मिनट बाद तापमापी को बाहर निकालें। तापक्रम को बदलें। इसके बाद पानी से साफ करके हाथ से झटककर ताप गिराने के बाद ही रखें।

पशु की जाति	सामान्य तापक्रम °F	औसत तापक्रम
गाय	101·0—102·0	101·5
भैंस	95·0—102·0	101·5
बकरी	101·5—104·0	103·5
भेड़	101·5—104·0	103·5
मुर्गी	105·0—109·5	107·0

सावधानी—

1. प्रयोग से पूर्व तापमापी के पारे का तल घुण्डी तक सीमित हो।
2. तापमापी की घुण्डी पर वेसलीन लगाकर चिकना करें।
3. थर्मामीटर की घुण्डी को हाथ से न छुएँ अन्यथा शरीर की गर्मी से पारा चढ़ेगा।
4. गुदा में तापमापी पृथ्वी की ओर तिरछा करने पर दीवाल को छुयेगा जिससे शरीर का ताप आवे।
5. तापक्रम मालूम करने पर तापमापी को साफ करके खोल में रखकर यथास्थान रखें।

पशुओं की नाड़ी गति ज्ञात करना :

पशुओं की नाड़ी गति मनुष्य की भाँति पहिली दो-तीन उंगली को नाड़ी पर रखकर घड़ी की सहायता से ज्ञात करते हैं।

गाय, भैंस तथा बकरी में नाड़ी गति पशु की पूँछ की जड़ की 'काक्सीजियल धमनी' के ऊपर हाथ रखकर ज्ञात करते हैं।

घोड़ा, गदहा में जबड़े के नीचे की 'मैक्सीलरी धमनी' से नाड़ी गति ज्ञात करते हैं। कुत्ते की जाँघ के अन्दरूनी भाग में स्थित फिमोरल धमनी से गति ज्ञात करते हैं।

पशु की जाति	नाड़ी गति प्रति मिनट
गाय	42— 60
भैंस	40— 45
भेड़-बकरी	67— 82
मुर्गी	120—160

पशु के बचपन, युवावस्था, ज्वर तथा व्यायाम के बाद नाड़ी गति तेज हो जाती है। कमजोरी में नाड़ी गति निर्बल तथा मन्द पड़ जाती है। नाड़ी अध्ययन के समय पशु पूर्णतया शांत हो क्योंकि भय, चौंकने, गुस्सा आदि उत्तेजक क्रियाओं से नाड़ी गति में अन्तर आ जाता है।

पशुओं की श्वसन गति ज्ञात करना—पशु द्वारा ऑक्सीजन लेना तथा कार्बनडाई ऑक्साइड को नथुनों से बाहर निकालना, *श्वसन कहलाता है।* पशु ऑक्सीजन युक्त स्वच्छ वायु को अन्दर (Inspiration) तथा कार्बनडाई आक्साइड युक्त दूषित वायु को शरीर से बाहर (Expiration) निकालता है जो फेफड़ों के संकोचन तथा विमोचन के साथ होती है।

नथुनों के सामने हाथ रखकर—पशु की शान्त स्थिति में सामने खड़े होकर नथुने के सामने हाथ रखकर हथेली पर गरम वायु का आना-जाना अनुभव करते हैं, इसकी एक मिनट में गति ज्ञात कर लेते हैं।

कोख (Flank) को देखकर—प्रत्येक प्रश्वास (Inspiration) के साथ कोख फूलती है तथा उच्छ्वास (Expiration) के साथ बैठती है। पशु के कोख के उठने तथा बैठने की स्थिति को एक मिनट में ज्ञात कर लेते हैं।

पशुओं की जाति	श्वसन गति प्रति मिनट
गाय	11—18
भैंस	16—18
भेड़-बकरी	14—22
मुर्गी	15—18

पशु की श्वसन गति कुछ श्वांस रोगों (Dyspnea), व्यायाम के बाद बढ़ जाती है। पशु की शान्त स्थिति में गति ज्ञात करें। पशु का तापक्रम, नाड़ी गति तथा श्वास गति की जानकारी करने के लिए प्रथम श्वसन, फिर नाडी गति तत्पश्चात् तापक्रम ज्ञात करें।

प्रश्न

1. सफल पशुपालन के आधारभूत कौन से सिद्धान्त हैं ?
2. झुण्ड में से अस्वस्थ पशु को किस प्रकार पहिचानोगे ? लक्षण लिखो ?

3. पशुओं का तापमान कैसे ज्ञात करोगे ? गाय, भैंस, बकरी एवं मुर्गी का औसत तापमान लिखिए।

4. पशुओं की श्वांस गति ज्ञात करने की विधि लिखिए।

5. पशुओं की नाड़ी गति कौन-सी नाड़ी से तथा कैसे ज्ञात करेंगे ? संक्षिप्त विधि लिखिए।

6. बकरी में श्वांस गति कैसे ज्ञात करोगे ? इसकी औसत श्वांस गति कितनी होती है ?

7. पशुओं में श्वांस गति किस प्रकार ज्ञात कर सकते हैं ? श्वांस गति किन-किन स्थितियों में बढ़ जाती है ? वर्णन कीजिए।

अध्याय—20

पशु चिकित्सा की सामान्य औषधियाँ

(Comman Medicins)

औषधियों के प्रभाव को सूचित करने वाले शब्द

(Materia-Medica)

1. प्रति जैवकी (Antibiotics)—*ये जीवित जीवाणु, फफूंदी, परजीवी द्वारा पैदा की जाने वाली औषधियां हैं, इनकी थोड़ी मात्रा उत्पन्न करने वाले कीटाणुओं को नष्ट कर देती हैं। उदाहरण· पैनीसिलिन, स्टेप्टोमाईसिन* टेट्रासाइक्लीन, क्लोरमफेनीकोल।
2. प्रतिपूति (Antiseptics)—ये औषधियां जो जीवाणुओं की वृद्धि को रोकती है परन्तु नष्ट नहीं करती हैं।
   उदाहरण—पोटाश, नीला थोथा, डिटॉल, नीम की पत्ती।
3. ज्वररोधी (Antipyretics)—ये औषधियां ज्वर को कम करती है। उदाहरण–कुनैन, शोरा, एस्प्रिन, शरीर पर वर्फ रखना।
4. विषहर (Antidotes)—ये औषधियां विष के प्रभाव को कम तथा नष्ट कर देती हैं।
5. पीड़ाहर (Analgesics)—ये औषधियां स्नायु की उत्तेजना को कम करके दर्द को दूर करती हैं।
6. कृमिहर (Anthelmenthics)—ये आंतों में होने वाले कृमि, पर जीवी आदि को नष्ट करती हैं। कुछ औषधियां इनको जीवित ही शरीर से बाहर निकाल देती हैं।
   उदाहरण— नीला थोथा, फैरस सल्फेट, निकोटिन सल्फेट, तारपीन तेल पिपराजीन, फिनोविस, थाइवेण्डोल।
7. निश्चेतक या संवेदनहारी (Anaesthetics)—ये औषधिया शरीर को अचेतन करती है। ये दो प्रकार की हैं—
   (i) साधारण निश्चेतक— ये पूरे शरीर को चेतनाहीन कर देती हैं इनको सुंघाया जाता है।
   उदाहरण— क्लोरोफार्म, ईथर।

(ii) स्थानीय निश्चेतक—शरीर के किसी भी विशेष भाग पर सुई द्वारा लगाने पर उसे चेतनाहीन कर देते हैं।
उदाहरण—कोकेन, नोवोकीन।

8. स्तंभक (Astringents)—ये औषधियां जो श्लेष्मिक झिल्ली, रक्त वाहिनी और तन्तुओं में संकुचन उत्पन्न करके उनके स्राव (Secretion) को बन्द करता है। ये दो प्रकार की हैं—

(I) आन्तरिक (Internal)—ये पतले दस्तों को कम करती है।
उदाहरण—खड़िया, कत्था, बेलगिरी, अफीम, अरगट, केओलिन, पेक्टिन, क्लोरोडिन आदि।

(ii) बाह्य (External)—ये शरीर से रक्त-प्रवाह को रोकते हैं, इन्हें बाहरी रूप में लगाते हैं।
उदाहरण - फिटकरी, डिटोल, टिंचर, आयोडीन।

9. रक्तशोधक (Alteratives)—ये औषधियां रक्त तथा शरीर के विकारों को दूर करके स्वस्थ करती हैं।
उदाहरण—आर्सेनिक, गंधक, आयोडीन, कुचला, कॉड लिवर आयल।

10. गैसहर (Carminatives)—ये औषधियां आमाशय, आँतों से गैस का बनाना रोकती हैं और बाहर निकालती हैं।
उदाहरण—सौंफ, हींग, जीरा, मेंथी, काली मिर्च, अदरक, अमोनियम चारकोल, कार्बोनेट, सोडा बाई कार्ब।

11. दाहक (Caustics)—ये औषधियां शरीर के तन्तुओं को सम्पर्क में आने पर नष्ट करके निशान छोड़ देती हैं।
उदाहरण—कापर सल्फेट कास्टिक सोडा, फिनोल, सान्द्र अम्ल, कार्बोलिक अम्ल, सिलवर नाइट्रेट।

12. दुर्गंधहर (Deodorant)—ये औषधियां बदबू या दुर्गंध को दूर या ढक देती हैं।
उदाहरण—फिनाइल, चूना, ब्लीचिंग पाउडर, तारकोल, राख।

13. रोगाणु नाशक (Disinfectan)—ये औषधियां कीटाणु तथा इनके बीजाणुओं (Spores) को नष्ट करती हैं।
उदाहरण—फिनाइल, लाइसोल, पोटाश, फिनोल, हाइड्रोजन पर आक्साइड

14. अपमार्जक (Detergent)—ये औषधियां सफाई के काम आती हैं।
उदाहरण—साबुन, पानी, सोडियम और पुटेशियम के कार्बोनेट्स तथा हाइड्राक्साइड।

15. शोष (Desicants)—ये औषधियां ऊपरी घाव या छाजन से बहते स्राव को सुखाती हैं ।
उदाहरण—बोरीक पाउडर, जिक आक्साइड, टेलकम पाउडर ।
16. कफनाशक (Expectorants)—ये औषधियां स्वांस नली से कफ को निकालती हैं ।
उदाहरण—तारपीन का तेल, अमोनियम क्लोराइड ।
17. वमनकारी (Emetics)—इन औषधि के खिलाने से उल्टी आती हैं ।
उदाहरण—नीला थोथा, जिंक सल्फेट सोडियम क्लोराइड, अमोनियम कार्बोनेट, सरसों ।
18. फेब्रीफ्यूज (Februfuse)—ये औषधियां ज्वर के ताप को कम करती हैं ।
उदाहरण— मैग्नीशियम सल्फेट, सैलीसिलीक अम्ल ।
19. कीटाणु नाशक (Insecticides)—ये औषधियां कीटाणुओं को नष्ट करती हैं।
उदाहरण—हार्सेनिक, गंधक नीला थोथा,
20. इरीटेण्ट (Irritant)—ये औषधियां त्वचा पर लगाने से चिर-चिराहट पैदा करती हैं और अन्दर के दर्द को दूर करती हैं ।
उदाहरण—कपूर, टिंचर आयोडीन, स्प्रिट, अम्ल ।
21. रेचक या दस्तावर (Purgatives)— ये औषधियां दस्त लाती हैं ।
तीन प्रकार की होती हैं—
(i) हल्के रेचक (Laxatives)—ईसबगोल की भूसी, चोरा, हरा चारा
(ii) मृदु रेचक (Purgative)—ये औषधिया बिना ऐंठन के खुलकर दस्त लाती हैं ।
उदाहरण—सोडियम सल्फेट, सोडियम क्लोराइड, मैग्नीशियम सल्फेट अलसी का तेल अण्डी का तेल, कैलोमिल ।
(iii) तीव्र रेचक(Drastic Purgatives)—ये औषधियां ऐंठनयुक्त बार बार दस्त लाती है ।
उदाहरण—बिनौले का तेल, मैगसल्फ, बेरियम क्लोराइड का अन्तः शिरा इंजेक्शन ।
22. प्रशीतिक (Refregerents)— इन औषधियों के प्रयोग से शरीर मे शक्ति एवं ठण्डक पहुचती हैं । ये दो प्रकार की हैं—
(i) बाह्य प्रशीतिक—शरीर के ऊपर लेप की जाती हैं ।
उदाहरण—पिपरमेण्ट, अमोनियम क्लोराइड और पोटेशियम नाइट्रेट का घोल, व्हाइट लोशन, बर्फ ।
(ii) आंतरिक प्रशीतक—पिलाने पर शक्ति तथा ठण्डक पहुचाते हैं ।
उदाहरण—लेवन ज्यूस, नमक का हल्का घोल, साइट्रिक अम्ल ।

23. शामक (Sadatives)— ये औषधियां अंगों में शिथिलता लाती हैं तथा दर्द को कम करके नींद भी लाती हैं। स्नायु संस्थान की उत्तेजना को शान्त करती हैं।

उदाहरण— कपूर, मार्फीन, पोटेशियम ब्रोमाइड

24. उत्तेजक (Stimulants)— ये औषधियां शरीर को शक्ति प्रदान करती हैं इनका प्रभाव कम समय तक परन्तु तुरन्त होता है।

उदाहरण—कपूर, कैफीन, अल्कोहल

25. शक्तिवर्धक (Tonic)— ये औषधियां शरीर को धीरे-धीरे शक्ति प्रदान कर स्वस्थ बनाती है।

उदाहरण—आर्सेनिक, नक्सवोमिका।

पशु चिकित्सा में प्रयोग आने वाली समान्य औषधियां (Common Veterinry Mednicines)

फिनाइल (Phenyle)— कत्थई रंग का विशेष गंध वाला द्रव है। यह कोलतार से प्राप्त की जाती है। पानी में भूरे रंग का घोल होता है।

गुण—रोगाणु नाशक, दुर्गंधहर, पूतिरोधी

उपयोग— (1) विषैला गुण होने से केवल वाह्य रूप में ही काम लावें।

(2) इसका घोल पशुशाला की गंदगी, कीड़े, मारने तथा बदबू को दूर करने के काम आता है।

(3) घाव पर लगाने से मक्खियां नहीं बैठती हैं।

(4) खुरपका में खुरों के धोने में 1% का घोल काम आता है।

(5) जोड़ों की सूजन में तेल के साथ लगाते हैं।

पोटाश या लाल दवा (Potassiumpermagnate)— काले रंग का रवेदार चमकीला पदार्थ है जो आयोडिन से मिलता जुलता है। स्वाद में कसैला तथा तीखी गंध का है। पानी में गुलाबी रंग का घोल होता है।

गुण—एण्टी सेप्टिक, डिस इन्फेक्टेन्ट, कास्टिक, ड्यूडोरण्ट, वर्मी साइडल, ड्रेसिंग

उपयोग— (1) उपयोगी घरेलू औषधि है। 1से 5 प्रतिशत का घोल हाथों तथा आपरेशन के औजारों, बर्तनों को जीवाणु रहित करने में काम आता है।

(2) ड्रेसिंग से पूर्व घावों, बीमारी से संबंधित म.गों को धोते हैं।

(3) दवा का हल्का घोल पिलाने से पेट के कृमि नष्ट होते हैं तथा पेट की अम्लीय गैसों को उदासीन करता है।

(4) अफीम, मार्फीन, अल्कोलायडल विषो के प्रभाव को दूर करती है।

(5) सांप के काटे स्थान पर खों को भरना लाभप्रद है तथा काटे स्थान के समीप 2% घोल की सुई लगाते है।

कार्बोलिक अम्ल (Carbolic Acid)—इसे फिनोल भी कहते हैं। हल्के गुलाबी रंग का तीव्र गंध वाला विषैला अम्ल है। गर्मी में पिघल कर द्रव तथा ठंडक में सुई के आकार के लम्बे रवे बन जाते हैं। छूने पर चिरचिराहट और जलन महसूस होती है। गर्म पानी में घुलनशील है।

गुण— डिसइन्फैक्टेण्ट, एण्टीसेप्टिक, कॉस्टिक, डयूडोरण्ट, पैरासिटी साइड लोकल एनेस्थेटिक।

उपयोग— (1) पशुशाला को जीवाणुरहित करने के लिये 5-10 प्रतिशत का घोल प्रयोग करते हैं।

(2) 1-5 प्रतिशत घोल घावों को धोने तथा कीटाणु नाशक घोल के रूप में प्रयोग करते हैं।

(3) कुत्ते या सांप के काटने पर शुद्ध रूप में प्रयोग करते हैं।

(4) शरीर की परजीवी को नष्ट करने लिये 2% का घोल प्रयोग करते हैं।

(5) जले कटे भाग पर 3. 55 ग्राम अम्ल तथा 112 कॉटन आयल मिला कर लगाते है।

लाइसोल (Lysol)—यह भूरे रंग का विशेष गन्ध वाला द्रव है। पानी में भूरे-सफेद रंग का घोल बनता है।

गुण-डिसइन्फैंटेण्ट, ड्यूडोरेण्ट, कास्टिक एण्डोसेप्टिक, एण्डीडोट, जर्मीसाइडल

उपयोग—(1) इसका 1-2 प्रतिशत का घोल घाव यंत्र आदि धोने के काम आता है।

(2) पशुशाला को जीवाणु तथा दुर्गंध रहित करने के लिये पानी में मिलाते है।

(3) %2 का घोल बच्चेदानी को धोने के काम आता है।

गन्धक (Sulphur)— पीले रंग का ठोस पदार्थ है जिसकी हल्की गंध अरुचिकर नही होती है। स्वाद हीन, जलाने पर नीली लो से जलकर सल्फर डाइ आक्साइड गैस बनाता है। पानी और अल्कोहल में अघुलनशील परन्तु तारपीन के तेल तथा कार्बन डाइ सल्फाइड में कुछ घुलनशील है।

गुण— बाह्य रूप में पैरासिटी साइड, डिसइन्फेक्टेण्ट, एण्टीसेप्टिक है। आतरिक रूप में लैक्जेटिवटानिक के रूप में कार्य करता है।

उपयोग (1) पशुशाला तथा अन्य भवनों के मक्खी मच्छर खटमल, जूं, पिस्सू आदि को मारने के लिये इनको अच्छी तरह बन्द करके 5 कि. ग्रा. गंधक को स्प्रिट या चार कोल में जलाते हैं।

(2) चर्म रोगों में एक भाग गंधक, एक भाग जिकआक्साइड तथा 8 भाग चर्बी या वेसलिन मिला मरहम काम में लाते है।

(3) खुजली, दाद, छाजन में कई रूपों में काम लाते हैं गंधक 28 ग्राम, जिक आक्साइट तथा अलसी तेल 224 ग्राम मिलाकर लेप करें।

उपयोग—1. आँख में किसी चीज के गिर जाने पर शुद्ध तेल की कुछ बूँदें डालने से आराम मिलता है।

2. पेट साफ करने के बड़े पशु को 568–1100 ग्राम मात्रा दी जाती है।

3. नवजात बच्चे को खीस न मिलने पर 8–10 ग्राम मात्रा को 2-3 बार पेट साफ करने के लिए देते हैं।

तम्बाकू (Tubacco)—तम्बाकू की पत्तियों से प्राप्त कत्थई रंग का चूर्ण है जिसमें विशेष प्रकार की गन्ध (मत) आती है। प्रारम्भ में स्वादहीन पर बाद में अरुचिकर है। इसमें टॉक्सिक, क्षार तथा निकोटिन होता है।

गुण—इनसेक्टीसाइड, पैरासिटीसाइड, जर्मीसाइड।

उपयोग—1. पैरासिटी साइड तथा जर्मीसाइड के रूप में शरीर के जुएँ, किलीली नष्ट करने के लिए चूर्ण एक भाग तथा खड़िया 99 भाग मिलाकर उपयोग में लाते हैं।

2. 227 ग्राम तम्बाकू को 4·54 लिटर मिट्टी के तेल मिलाकर प्रभावकारी कीटाणुनाशक औषधि के रूप में काम लाते हैं।

3. पेट दर्द में गुड़ के साथ थोड़ी मात्रा देते हैं।

4. कृमि मारने के लिए तम्बाकू का घोल पिलाते हैं।

कपूर (Camphor)—यह सिनोमोमोमम कैम्फर नामक सदाबहार पेड़ की लकड़ी से आसवन विधि से प्राकृतिक रूप में प्राप्त होता है परन्तु कृत्रिम रसायन विधि में तैयार कपूर प्रायः काम आता है।

यह सुगन्धित, रंगहीन, पारदर्शक, रवेदार पदार्थ है जो खुला रखने पर उड़ जाता है इससे लौंग के साथ बन्द करके रखते हैं। शीघ्र ज्वलनशील, स्वाद में कडुवा फिर ठण्डा है। पानी में अघुलन परन्तु तेल और अल्कोहल में घुलनशील है। मैंथल, थाइमोल या फिनोल के साथ द्रव में बदल जाता है।

गुण—कार्मीनेटिव, एण्टीसेप्टिक, एक्सपैक्टोरेण्ट, इरीटेण्ट, एण्टीपायरेटिक, एस्ट्रिनजेण्ट।

उपयोग—1. शरीर पर मलने से खुजलाहट के साथ शिथिलता लाता है।

2. 200 भाग कपूर तथा 800 भाग मूंगफली का तेल (लिनीमेण्ट कपूर) मिलाकर चोट, मोच के दर्द में लगाते हैं।

3. निमोनिया, गलघोंटू (H. S.), जहरवाद में 1 ड्राम कपूर को एक छटांक गुड मे चटनी बनाकर दो बार देना लाभप्रद है।

4. कुछ त्वचा रोग (छाजन, पित्ती) में 3·55 कपूर, 14·20 ग्राम जिंक ऑक्साइड तथा 14·20 ग्राम स्टार्च का मरहम प्रयोग करते हैं।

5. जुकाम, सर्दी में सुंघाते हैं। कफ को पतला करने के लिए कफ मिक्सचर मे मिलाकर तथा तेल के साथ मिलाकर मालिश लाभप्रद है।

6. घाव में कीड़े पड़ने पर इसे तुलसीदल के साथ पीस कर लगाते हैं।

7. दिल की धड़कन बन्द होने पर 2 ग्रेन कपूर तथा 2 ग्रेन कस्तूरी को थोड़े शहद के साथ देते हैं।

8. ग्रीष्म ऋतु में मनुष्यों को हुए दस्त और हैजे की प्रारम्भिक दशा में रामबाण औषधि है।

फिटकरी (Alum)—रंगहीन, बड़े रवेदार, मीठे कसैले स्वाद वाला पदार्थ है जिसका एक भाग सात भाग पानी में घुलनशील है।

गुण—एण्टीसेप्टिक, एस्ट्रिनजेण्ट।

उपयोग—1. रक्त के प्रवाह को रोकने के लिए इसका घोल या कण लगाते हैं।

2. किसी भी तरह रक्त प्रवाह न रुकने पर फिटकरी तथा पोटाश की समान मात्रा का चूर्ण लगाते हैं।

3. पशुओं की आँख, गर्भाशय, प्रदाह, सर्दी तथा मुँह के छाले धोने के लिए 2 से 5 प्रतिशत का घोल काम में लाते हैं।

4. लाल मूत्र रोग में 2-4 ड्राम मात्रा खिलाते हैं।

5. आन्तरिक रक्त प्रवाह रोकने के लिए चिकित्सक की राय से दवा देते हैं।

7. पेट के कृमि नष्ट करने में अन्य औषधि से लाभ न होने पर नीला थोथा और फिटकरी की सममात्रा पीसकर पर्याप्त पानी में मिलाकर पिलाते हैं।

टिंचर ऑफ आयोडीन (Tincture of Iodine)—आयोडीन प्राकृतिक रूप से उपलब्ध आयोडाइड से प्राप्त किया जाता है। यह चमकदार, दानेदार, भारी गहरा नीला भंगुर पदार्थ है जिसका रंग नीलापन लिए हुए धातुई चमकदार (Metalic luster) होता है। इसमें विशेष गंध आती है और सादा ताप पर उड़ जाता है। पानी और अल्कोहल दोनों में घुलनशील है। इसका सर्वाधिक उपयोग टिंचर आयोडीन के रूप में होता है।

गुण—एण्टीसैप्टिक, डिसइन्फैक्टेन्ट, पैरासिटीसाइड, एस्ट्रिनजैण्ट आल्टरेटिक।

उपयोग—1. शरीर खरौंच, सूजन पर रुई की फुरैरी लगाते हैं।

2. रक्त के प्रवाह पर दवा में भीगी रुई लगाने से रुक जाता है।

3. आपरेशन से पूर्व त्वचा को जीवाणु रहित करने के काम आता है

4. आयोडीन का मरहम चोट, सूजन पर लगाते हैं।

5. विषैली औषधि होने से आन्तरिक रूप में उपयोग नहीं लावें।

टिंचर आयोडीन तैयार करना—

आयोडीन	1 भाग
पुटेशियम आयोडाइड	2 भाग

स्प्रिट या अल्कोहल 100 भाग

स्प्रिट या अल्कोहल में दोनों चीजें (95%) मिलाकर शीशी में भरकर अच्छी तरह बन्द करके रखें।

अल्कोहल (Alcohal)— रंगहीन, विशेष गन्ध वाला द्रव है जो खुला रखने पर उड़ जाता है।

गुण इन्सेक्टीसाइड, एण्टीडोट, स्टीमुलेण्ट, एक्स्पेक्टोरेण्ट, एनलजेसिक।

उपयोग—1. 95 प्रति. एल्कोहल में 5 प्रति. पानी मिलाकर हल्का करके क्लोरोफॉर्म, टिंचर, स्प्रिट आदि में प्रयोग करते हैं।

2 कई पदार्थों के बनाने में काम आता है। रेक्टीफाइड स्प्रिट में 90 भाग अल्काहल और 10 भाग पानी, ब्राण्डी में 9·43·5 प्रति., ह्विस्की में 44-45 प्रति. रम में तथा अन्य शराब में 51-60 प्रति. अल्कोहल होता है।

3. शरीर पर लगाने पर दर्द तथा सुजन में आराम मिलता है।

4. सर्दी और निमोनिया में लिनीमेण्ट की मालिश से आराम होता है, लिनीमेण्ट में अल्कोहल होता है।

5. अधिक चोट, मोच के दर्द तथा कष्टदायक प्रसूति के बाद शक्तिवर्धक के रूप में देते हैं।

6. इन्फ्लूएन्जा और निमोनिया में आन्तरिक उत्तेजक के रूप में 170-275 मि०ली० देते हैं।

खड़िया (Calcium Corbonate)—सफेद रंग का चिकना रवेदार पदार्थ है।

गुण—आन्तरिक स्तंभक, एण्टेसिड, ड्रेसिंग।

उपयोग—1. खनिज लवण कैल्शियम की पूर्ति के लिए प्रतिदिन 30 ग्राम देते हैं।

2. पेचिश तथा दस्तों में—खड़िया—28 ग्राम, कत्था—10 ग्राम तथा सोंठ—10 ग्राम को पीसकर चावल के मांड में दो बार देते हैं।

तारपीन का तेल (Torpentine Oil)—देवदार वृक्ष से प्राप्त विशेष गन्ध वाला रंगहीन पतला तेल है, गन्ध इसकी विशेषता है। त्वचा पर लगने से खुजली होती है तथा वह स्थान लाल हो जाता है बाद में दाने भी पड़ सकते हैं।

गुण एण्टीसेप्टिक, ड्यूरेटिक, वरमीसाइड।

उपयोग—1. सूजन तथा दर्द में मालिश से लाभ होता है।

2. निमोनिया, खांसी, प्लूरेसी आदि रोगों में उपयोग होता है।

3. गोलकृमि, टिम्पेनाइटिस में आन्तरिक रूप में देते हैं।

4. हल्की मात्रा 28-56 ग्र.म देने पर कार्मीनेटिव का कार्य करता है।

अलसी या तीसी का तेल (Linseed Oil)—अलसी के दानों को पेरने (Crush) से प्राप्त होता है। रंगहीन द्रव है जो हवा में गाढ़ा हो जाता है। अल्कोहल में घुलनशील है।

गुण—परगेटिव, न्यूट्रीटेटिव, मालिश।

उपयोग—1 शारीरिक दर्द में अकेले या तारपीन तेल के साथ मालिश करते हैं।

2. जलने पर चूने के पानी के साथ बराबर मात्रा में मिलाकर लगाते हैं।

3. दस्त लाने के लिए बड़े पशु को 568-1136 ग्राम देते हैं।

4. घोड़ों के कॉलिक में इसे क्लोरल हाइड्रेट के साथ देते हैं।

सरसों का तेल (Mustard Oil)—सरसों के बीजों को पेरनेसे प्राप्त होता है। हल्के पीले रंग का विशेष गन्ध वाला द्रव्य है।

गुण—कार्मिनेटिव, स्टीमुलेंट, मालिश।

उपयोग—1. कमजोर पशुओं में रक्त संचारण के लिए मालिश करते हैं।

2. साधारण कुपच में बच्चों को 50 ग्राम तथा बड़े पशुओं को 250-300 ग्राम देते हैं।

3. पेट फूलने या कब्ज होने पर कुचला और कार्बोनेट ऑफ अमोनिया के साथ देते हैं।

प्रश्न

1. टिंचर आफ आयोडीन, पुटेशियम परमेंगनेट, तारपीन का तेल एवं कपूर पशुओं के किन-किन रोगों के उपचार में प्रयोग किए जाते है, इनके उपयोग की विधि एवं मात्रा बताइये।
2. नीला थोथा एवं मैग्नीशियम सल्फेट का प्रयोग किन-किन बीमारियों में किया जाता है? इनका प्रयोग विधि व मात्रा बताइये।
3. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—
   (अ) मैग्नीशियम सल्फेट, (ब) तम्बाकू (स) तिल्ली का तेल।
4. निम्न पर टिप्पणी लिखिए—
   (अ) फिनाइल (ब) कपूर (स) फिटकरी।
5. निम्नलिखित औषधियों का उपयोग किन-किन व्याधियो में किया जाता है? इनकी मात्रा व देने की विधि का वर्णन कीजिये—
   (अ) तारपीन का तेल (ब) मैग्नीशियम सल्फेट।
6. निम्नलिखित औषधियो का उपयोग किन-किन व्याधियो मे किया जाता है? इनके प्रयोग करने की विधियों का वर्णन कीजिए—

(अ) कार्बोलिक एसिड (ब) टिंचर ऑफ आयोडीन।

7. निम्नलिखित औषधियों का उपयोग किन-किन व्याधियों में किया जाता है। इनके प्रयोग करने की विधियों का वर्णन कीजिए—
(अ) अल्कोहल (ब) फिनाइल (स) नीला थोथा (द) कपूर।

8. (अ) निम्नलिखित औषधियों का उपयोग किन-किन व्याधियों में किस किया जाता है—
(i) कार्बोलिक एसिड (ii) तारपीन का तेल।
(ब) विरेचक एवं कृमिनाशक दवाओं में क्या अन्तर है, एक-एक उदाहरण देकर उत्तर स्पष्ट कीजिए ?

9. निम्न औषधि के प्रभाव को बताते हुए इनके उदाहरण दीजिए—
(i) निश्तेजक (ii) स्तंभक (iii) रेचक (v) मर्दन लेप (vi) उत्तेजक (vii) दुर्गन्ध हर।

अध्याय 21

औषधियों के रूप
(Forms of Medicines)

विभिन्न बीमारियों में पशुओं को दी जाने वाली औषधियाँ कई रूपों में होती हैं। औषधियों को रोग, पशु की जाति के अनुसार चुना जाता है कि उनको औषधि किस रूप से दी जावे।

1. चूर्ण (Powder)—ये सूखी औषधि हैं जिनको कूट-पीसकर छानकर चूर्ण बना लिया जाता है। जैसे – सोंठ, बोरिक पाउडर।

2. गोली (Pills)—औषधि को पानी या किसी द्रव के साथ मिलाकर गोल रूप बना लेते हैं। जैसे—गन्धक बटी।

3. टिकियाँ (Tablets)—मशीन से बनी औषधि की चपटी गोली, टिकियाँ कहलाती है। जैसे—सल्फागुमानीन टिकियाँ।

4. कैप्सूल (Capsules)—कसैले स्वाद वाली औषधियों को जिलेटिन के बने अण्डाकार या बेलनाकार खोल में भरते हैं। इन्हें बिना चबाये गले मे निगला जाता है तो जिलेटिन खोल गल जाता है और औषधि अपना प्रभाव दिखाती हैं। जैसे—टैरामाइसिन, क्लोरम फैमिकोल कैप्सूल।

5. चटनी (Electuary)—औषधि को शहद, शीरा या गाढ़े द्रव में मिला कर चटाना, चटनी कहलाता है।

6. द्रव (Liquid)—पशुओं को दी जाने वाली औषधि तरल रूप में बोतलों में मिलती है जिनको पानी में मिलाकर नाल या बोतल के द्वारा देते हैं। जैसे—लाल दवा घोल, पैराफीन।

7. पायस (Emulsion)—पेट साफ करने के लिए औषधि को तेल, गोंद, दवा, पानी किसी एक के साथ मिलाकर तैयार किया जाता है। जैसे अरण्डी तेल।

8. लिनीमेण्ट (Liniments)—औषधि को तेल या पानी में मिलाकर चोट, सूजन, मोच आदि पर मलते हैं। जैसे—लिनीमेण्ट अमोनिया, कपूर, खजली तेल।

9. मरहम (Ointment)—शरीर पर बाह्य रूप से प्रयोग की जाने वाली औषधि को वेसलीन, पैराफीन में मिलाकर मरहम तैयार किया जाता है। शीशी या ट्यूब में तैयार मरहम भी मिलता है। जैसे– जिंक ऑक्साइड, आयोडीन, गंधक का मरहम।

10. गुलिका (Bolus)—कड़वी औषधियों को किसी चिपकने वाली वस्तु गोंद, शीरा, ग्लिसरीन के साथ घोंटकर बनी ठोस बेलनाकार आकृति, गुलिका कहलाती है। वह 2-2½' लम्बी तथा 1" गोल बनाकर टिसू-पेपर में रखते हैं। घोड़ों के कब्ज होने पर देते हैं।

11. योनिवर्ति (Pessary)—ये ½ इन्च मोटी तथा 1 इन्च लम्बी चपटी ठोस औषधि है जो जनन रोगों में गर्भाशय में रखी जाती है। योनि में रखने पर शीघ्र पिघलकर झाग बनाती है।

12. गुदावर्ति (Suppositories)—ये गुलिका की भांति बनी औषधियाँ पशु के कब्ज होने पर मलद्वार में रखने पर दस्त लाती हैं। जैसे ग्लिसरीन।

13. प्लास्तर (Plaster)—शरीर पर मोच, सूजन, हड्डी टूटने पर चिपकाया या चढ़ाया जाता है। जैसे—पेरिस प्लास्तर, बैलाडोना प्लास्तर।

14. टिंचर—शरीर पर खरोंच, चोट लगने पर औषधि को स्प्रिट या अल्कोहल में घोल कर बाह्य रूप में लगाते हैं। जैसे– टिंचर आयोडीन, टिंचर बेंजीन।

15. लोशन (Lotion)—औषधियों को गर्म या आसुत जल में घोलकर बाह्य रूप में प्रयोग करते हैं। जैसे—एक्रीफ्लेविन, मरक्यूरल लोशन।

16 सुई (Injection)—शुष्क औषधि को आसुत जल में घोलकर या द्रव औषधियों को सिरिंज में भरकर सुई द्वारा शरीर के विभिन्न अंगों में भेजते हैं। जो अन्य औषधि की अपेक्षा शीघ्र प्रभाव दिखाते हैं। जैसे—पैनीसिलीन, डी सी आर, निवाक्विन इन्जेक्शन।

पशुओं को औषधि देने के ढंग
(Methods of administring the medicines)

पशुओं के रोग—निदान होने के बाद उपचार में विभिन्न प्रकार की औषधियों का उपयोग किया जाता है। इन औषधियो के गुण और मात्रा की जानकारी होने पर यह विचार उठता है कि पशुओं को औषधि किस प्रकार दी जावे।

पशु निरीह प्राणी हैं जिससे काफी सावधानी रखकर दवा देने के तरीके को निश्चित करना पड़ता है। सामान्य औषधि देने के निम्न ढंग हैं—

आन्तरिक उपचार (Internal application)

(अ) मुँह द्वारा औषधि देना —

1. लोए द्वारा (Bolus)—इस प्रकार औषधि बड़े पशु और घोड़े को देते हैं। पशु को वश में करके उसके मुँह को खोलकर जीभ पकड़ लेते हैं तथा दूसरे हाथ से लोये को मुँह में रखकर उसे कुछ देर ऊँचा रखते हैं फिर पानी पिलाते हैं।

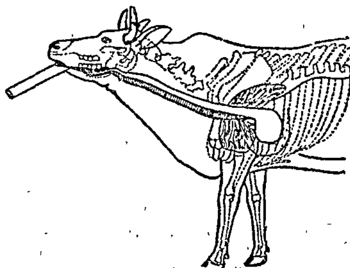
2. गोली, टिकियाँ तथा कैप्सूल (Pilps Tablets and Capsule)—ये औषधियाँ छोटे पशु कुत्ता, बिल्ली, भेड़-बकरी को देते हैं। गोली को गुड़, आटा या सत्तू में मिलाकर देते हैं कैप्सूल, टिकियाँ को जीभ पर रखकर मुँह बन्द कर देते हैं जिससे पशु गटक लेता है।

3. द्रव रूप में दवा देना (Drenching)—(i) स्वादिष्ट घुलनशील औषधियों को पीने के पानी में मिलाकर देते हैं।

(ii) घोल को प्रायः सभी पशुओं को पिलाते हैं। यह नाल बांस या एलुमिनियम की होती है, बोतल का भी प्रयोग करते हैं।

बड़े पशुओं की सिर तथा गर्दन दवा पिलाते समय एक सीध में रखते हैं। पशु को वश में करके दाईं ओर जाकर बायें हाथ के अँगूठे तथा अँगुलियों से जबड़े को खोलकर दायें हाथ में पकड़ी नाल या बोतल की दवा मुँह में धीरे-धीरे उड़ेल देते हैं।

छोटे पशुओं को दवा पिलाना बड़े पशुओं की अपेक्षा सरल है। पशु को दोनों



जाँघों के मध्य कसकर दबाकर वश में कर लेते हैं। बायें हाथ का अँगूठा आँखों के कुछ नीचे तथा अंगुलियां जबड़े के नीचे डालकर मुँह को ऊपर उठाते हैं साथ ही दायें हाथ में पकड़ी नाल की दवा दाईं ओर से धीरे-धीरे डाल देते हैं।

नाल के अलावा रबर की नली और कीप प्रयोग करते हैं। 60-75 सेमी. लम्बी रबर की नली के सिरे पर एनामिल या प्लास्टिक की कीप लगी होती है। पशु के मुँह में दायें जबड़े के किनारे दायें हाथ की अंगुली डालकर गाल थोड़ा बाहर निकाल लेते हैं जिससे गाल और दांतों के बीच खाली स्थान हो जाता है इसमें रबर की नली का खुला सिरा डालकर कीप में दूसरा व्यक्ति दवा डाल देता है।

4. चारे में दवा देना—अच्छे स्वाद व गन्ध के चूर्ण पशु के थोड़े चारे या दाने में मिलाकर खिला देते हैं फिर शेष चारा-दाना खिलाते हैं।

5. चटनी—निमोनिया तथा श्वांस रोग में दवाई को शीरा, शहद में मिलाकर पशु की जीभ या ओंठों पर मली जाती है।

(ब) नाक द्वारा औषधि देना—

1. नेजल डूज (Nasal douche)—अनुत्तेजक एण्टीसेप्टिक घोलसे नथुनों को धोया जाता है।

2. अन्त: श्वसन या बफारा देना (In halation)—श्वांस सम्बन्धी रोगों में निमोनियां, जुकाम आदि में श्वांस नली को साफ करने के लिए उड़ने वाली औषधि तारपीन, यूकलिप्टस तेल को गरम पानी की बाल्टी में डाल देते हैं। बाल्टी से उठी भाप को पशु को मुँह उठाते हैं। पशु के सिर को मोटे कपड़े या टाट से ढंक देते हैं जिससे उठी भाप सांस के द्वारा प्रवेश करें।

(स) आँख में दवा देना—पशु की आँख मे लालामी, किसी वस्तु, कीड़े के गिरने तथा रोग होने पर द्रव रूप मे दवा ड्रापर द्वारा तथा मरहम प्रयोग करते हैं।

(द) कान द्वारा औषधि देना—पशु के कान में रोग होने पर तरल औषधि डालते हैं।

(य) मलाशय द्वारा औषधि देना—कुछ दस्तावर, उत्तेजक, पोषक, कृमिनाशक, एण्टीसेप्टिक औषधियां मलाशय द्वारा दी जाती हैं।

एनीमा (Enema)—पशु के कब्ज होने पर कुछ तरल औषधि साबुन का घोल, अरण्डी का तेल आदि सिचक (एनीमा) पम्प द्वारा देते हैं जिससे पशु कुछ समय बाद पतला दस्त करता है। छोटे पशु को एनीमा सिरिंज प्रयोग लाते हैं।

सपोझटरी—छोटे पशु के कब्ज होने, मुँह से चारा न खाने पर मलाशय साफ करके तिकोनी शक्ल की गुदावर्ति मलाशय में रखते हैं।

(क) योनिमार्ग द्वारा औषधि देना—

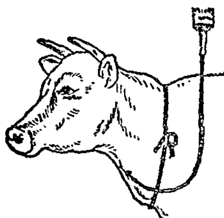
योनि धुलाई - पशु के बच्चा देने के बाद गर्भाशय की एण्टीसेप्टिक औषधि डिटाल, लाल दवा के घोल से, सिचक में भरकर नली के सिरे को योनि में प्रवेश करके, धुलाई करते हैं। घोल बाहर निकालने के लिए सिचक नीचा करने पर नली से पूरा पानी बाहर आ जाता है।

योनिवर्ति—पशु के जननेन्द्रिय रोग की आशंका होने पर योनि धुलाई के बाद साथ चिकने हाथ की पहली दो उंगलियो में पकड़ी तिकोनी वर्ति गर्भाशय के मुँह पर रख देते हैं जिससे झाग निकलता है।

(ग) सुई द्वारा औषधि देना—औषधि के शीघ्र प्रभाव के लिए दवा सिरिंज में भरकर सुई (Needle) द्वारा शरीर में पहुँचाते हैं। सिरिंज और सुई को जीवाणु रहित करके औषधि भरते हैं तथा सुई लगाने वाले स्थान को गर्म पानी या स्प्रिट से साफ करके सुई लगाकर फिर मल दिया जाता है।

(i) अन्त.त्वचा सुई (Subcutaneous injections)—बड़े पशुओं के सुई गर्दन तथा छोटे पशुओं के जांघ में लगाते है। सुई लगाने वाले स्थान के बाल काट कर स्प्रिट या टिंचर लगा कर बायें हाथ की अंगुली से थोड़ी खाल खींचकर सुई को कुछ तिरछा खाल और मांस के बीच मे प्रवेश करके सिरिंज से धीरे-धीरे दवा को प्रवेश करते हैं।

(ii) अन्त:पेशी सुई (Intramuscular Injections)—बड़े पशुओं के पुट्ठे, गर्दन तथा छोटे पशु की जांघ की मांसपेशी, नितम्ब में सुई को गहरा प्रवेश करके औषधि प्रवेश कराते हैं।



(iii) अन्त: शिरा सुई (Intravenous Injection) – बड़े पशुओं के गर्दन की जुगलर शिरा में सुई लगाई जाती है, जो गलगतं में दबाने पर उभरी दिखाई

देती है । बड़े पशु को गिराकर वश में कर लेते हैं । शिरा को उंगलियों के दबाव से उभारकर जीवाणु रहित सुई को घुसेड़ देते हैं सिरिंज में खून आना सुई धमनी की स्थिति बताता है औषधि को धीरे-धीरे प्रवेश कराके सुई को बाहर निकाल लेते हैं ।

कुत्ते में सुई पिछले पैर के घुटने के जोड़ के ऊपर बाहर की ओर की सैफीनस शिरा में लगाते हैं । शिरा उभारने के लिए रबड़ की ट्यूब 'टर्नीक्वेट' बांधते हैं, दवा प्रवेश से पूर्व रबड़ की ट्यूब हटा लेते हैं ।

इनके अलावा शरीर के विशेष अंगों में रोग होने पर जैसे रीढ़, श्वांसनली, गर्भाशय, दुग्धांगों में सुई लगाई जाती है ।

(2) बाह्य उपचार (External Application)

(अ) पुल्टिस बांधना (Poultices)—चोट, सूजन, फोड़े को पकाने तथा सर्दी से होने वाले रोगों में पुल्टिस काम में लाते हैं । औषधि को अलसी, सरसों, जई, गेहूं की भूसी आदि में गर्म पानी के साथ लेई सा बनाकर स्थान की सेंक करके इतना गरम बांध देते हैं कि शरीर सहन कर सके इससे दर्द व सूजन कम तथा शान्ति मिलती है ।

(ब) सेंक (Fomentation)—यह दो प्रकार— सूखी सेंक तथा गीली सेंक होती है ।

सूखी सेंक में बोतल में गरम पानी भरकर, कपड़ा, रुई को गरम तवे पर रखकर चोट को सेंकते हैं । गीली सेंक में औषधि को गरम पानी (43·3° सें०) में डालकर रुई या कपड़े को भिगोकर सूजे स्थान को सेंकते हैं, कभी-कभी पट्टी भी बांध देते हैं ।

(स) लेप करना— अन्दरूनी चोट, मोच और सूजन पर आयोडेक्स, तेल, लिनीमेण्ट की मालिश करते है ।

(द) ड्रेसिंग (Dressing) —कटे-फटे घाव, सड़े-गले जख्मों को स्वच्छ हाथ या चिमटी से किसी रोगाणुनाशक घोल से साफ करके मरहम या घोल में भीगी गॉज या रुई को लगाते है जब तक घाव अच्छा नहीं हो जाता है । सामान्य चोट व खरोंच आदि मे टिंचर, लाल दवा आदि की फुरहरी लगाते हैं ।

(य) प्लास्तर—हड्डी टूट जाने, शरीर के जोड़ के हटने पर पेरिस प्लास्टर को चढ़ाया जाता है । फोड़े, फुन्सी आदि में बैलाडोना प्लास्टर काम लाते हैं ।

(फ) स्नान (Baths)—स्नान पूरे शरीर (General Bath) या अङ्ग विशेष (Local Bath) का कराया जाता है । बड़े पशु गाय, बैल, भैंस, घोड़ा आदि के किसी विशेष भाग को स्नान कराते हैं । खुर पका रोग मे पैरों का स्नान

(Foot Bath) कराते हैं। कुछ चर्म रोग, शरीर में जुयें, किलीली, मेले या त्योहार पर पशु को औषधि युक्त पानी या साफ पानी से स्नान कराते हैं। भेड़-बकरी, कुत्तों को परजीवी रहित करने के लिए औषधि भरे हौज में तैरा देते हैं। यह स्नान निम्न प्रकार का होता है—

(i) ठण्डे पानी से स्नान (Cold Bath)
(ii) गर्म पानी से स्नान (Hot Bath)
(iii) धूप स्नान (Sun Bath)
(v) औषधि युक्त पानी से स्नान (Medicated Bath)।

प्रश्न

1. पशुओं को औषधि देने की प्रमुख विधियाँ कौन-कौनसी हैं, इनका संक्षेप में वर्णन करो।
2. निम्न औषधियाँ कब प्रयोग की जाती हैं—
   (i) प्लास्तर (ii) एनीमा (iii) सेंक (v) गोली।
3. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—
   (अ) चटनी के रूप में औषधि देना,
   (ब) सुई लगाना,
   (स) पुल्टिस बाँधना।

अध्याय 22

पशुओं में होने वाली विभिन्न बीमारियां
(Differnt Diseases of Animals)

बीमारियों का वर्गीकरण (Classification of Diseases)

पशुओं को होने वाली विभिन्न बीमारियों को कई आधारों पर वर्गीकृत किया जाता है—

(अ) कारण के अनुसार (According to Aetiology)—

1. विशिष्ट रोग— निश्चित कारण वाले रोग विशिष्ट रोग कहलाता है, ये दो प्रकार के होते हैं—
   (i) संक्रामक रोग (Infections Diseases)—रोगी पशु से स्वस्थ पशु में ये रोग उनके शारीरिक स्पर्श या सम्पर्क में रहने वाले पदार्थों से फैलते हैं। ये छूत से फैलने या न फैलने वाले हो सकते हैं। पशु प्लेग, धनुर्वात (Tetanus)
   (ii) छूत के रोग (Contageous Diseases)—ये रोग पशु से स्वस्थ पशु में सीधे सम्पर्क से पहुंचते हैं। इन रोगों की छूत एक स्थान से दूसरे स्थान पर मनुष्य पशु-पक्षी, वायु-पानी, चारे आदि के द्वारा पहुंचती हैं।
2. अविशिष्ट रोग (Non Specific)— ये रोगो के कारण निश्चित न हो कर अन्य एवं अनिश्चित होते हैं। दस्त, शूल, पेचिस आदि।

(ब) प्रकोप तथा अवधि के अनुसार (According is Severity & Duration)

1. उग्र या तीक्ष्ण रोग (Acute)— ये एकाएक तेजी से प्रकोप करके थोड़ी *अवधि में समाप्त हो जाते हैं। खुरपका मुंह पका*
2. अल्पकालीन रोग (Sub-acute)—ये तेजी से प्रारंभ होते है और कम अवधि में समाप्त हो जाते हैं। जहरी बुखार
3. चिर कालीन रोग (Chronic)—इनके लक्षण धीरे-धीरे प्रकट होकर काफी समय में ठीक होते हैं। ये उग्र तथा अल्पकालीन से कम तीक्ष्ण परन्तु भयानक हो सकते हैं। क्षय, पुराना अतिसार

(स) विभाजन के अनुसार (According to Distribution)—

1. स्थानिकमारी (Enzootic)– कुछ मुख्य जातियों में होते हैं ।
2. पशु महामारी (Epizootic)— ये रोग बड़े क्षेत्र में एक साथ फैलते हैं ।
3. पैन्जूटिक रोग (Panzootic)— ये रोग पूरे देश में अनेक पशुओं में फैलाते है ।
4. विदेशी रोग (Exotic)— विदेश से लाये गए पशु के द्वारा फैलते हैं ।

(अ) सामान्य व्याधियां (Simple Clements)

1. दाह तथा झुलसना (Burnsand Scolds)

प्रायः पशुओं में इस प्रकार की परेशानी कम ही होती है। ये घटनायें अचानक या धोखे से होती है। गर्म पानी, भाप, गर्मी तथा अग्नि से शरीर का कोई अंग झुलस एवं जल जाता है, दोनों ही स्थितियां कष्टदायक हैं ।

लक्षण–1. शरीर की ऊपरी त्वचा झुलसकर लाल या काली हो जाती है ।
2. जले स्थान पर फफोले बन जाते हैं जो बाद में फूटकर घाव बन जाते हैं ।
3 जलन के कारण पशु छटपटाता है ।
4. अधिक जलने पर कुछ समय बाद पशु की मौत भी हो सकती है ।
5. भीषण ज्वाला में पशु जलकर राख भी हो जाते हैं ।

उपचार— दाह द्वारा उत्पन्न पीड़ा को दूर करना उपचार का मुख्य ध्येय है ।
1. जले भाग पर हवा न लगने दें । मिथाएलेटिड स्प्रिट पिकरिक अम्ल का घोल फुरेरी से लगाने पर फोड़ा नहीं बनता तथा ठण्डक मिलती है ।
2. गर्म सिरका, कच्चे आलू का लेप किया जा सकता है ।
3. चूने का पानी, गरी या अलसी का तेल बराबर मात्रा में मिलाकर लगावें
4. फफोले के फूटने पर जिंक आक्साइड मरहम, बर्नाल या सिल्वर सल्का-डाय जीन मरहम की ड्रेसिंग करें ।
5. स्थिति खराब होने पर पशु चिकित्सक के उपचार से पूर्व में वे दनहारी औषधि देनी चाहिए ।

2. घाव (Wounds)—

शरीर के बाहर या भीतर कटने, खुरचने या दाब पड़ने से अंग की सतह का टूटना, घाव कहलाता है। ये आकृति और स्थिति के अनुसार कई प्रकार के होते हैं।

कारण–1. जीवाणु द्वारा—विषैले कीटों, जन्तुओं के काटने से ।
2. रसायन या आंतरिक पदार्थों का संचय—आंतरिक द्रवों के निष्कासन होने से फुन्सी फोड़े का रूप बन जाता है ।
3. अन्य कारण— काटे तेज औजार सुई आदि से अंगो का नष्ट होना ।

1. घाव के प्रकार—इन साइड यावलीनकर घाव (Inside or Clean cut wounds)—ये तेज औजार से कट जाने से होते हैं, इसकी लम्बाई गहराई से अधिक होती है।
2. फिस्टूलस घाव (Fistulous wounds)—शरीर के किसी भाग पर लगातार किसी वस्तु के रगड़ने या दाब से घाव हो जाते हैं। इनसे पस या पीब बाहर न आकर अंदर ही इकट्ठी रह जाती है।
3. कन्ट्यूज्ड घाव (Contused wounds)—शरीर के भीतरी अंग में गहरी चोट हो जाती है तो बाह्य त्वचा छिल जाती है। इससे फोड़े बनने का भय रहता है।
4. पंचर्ड घाव (Punctured wounds)—जब कोई नुकीली चीज जैसे सुई, कील, चाकू, कांटे, आदि के अन्दर घुसने से घाव बन जाता है, इनकी गहराई अधिक परन्तु चौड़ाई कम होती है।
5. लेसिरेटिड घाव (Lacerated wounds)—ये घाव पशु के खुर या कांटे-दार लोहे के तार आदि से हो जाते हैं जिनका किनारा छिन्न-भिन्न हो जाता है।
6. जहरीले घाव (Poisonous wounds)—ये विषैले कीड़े-मकोड़े के काटने या अम्ल से हो जाते हैं।
7. गोली का घाव (*Gunshot wounds*)—ये घाव बन्दूक या इसी प्रकार के हथियार से होते हैं जिससे शरीर का अंग बुरी तरह से नष्ट हो जाता है।

लक्षण—1. प्रारम्भिक दशा मे अंग पर सूजन, लालिमा, गर्मी तथा दर्द महसूस होता है।
2. फोड़े के बढ़ने पर बुखार (105° फे.) हो जाता है।
3. फोड़े की नोक (Print) बन जाने पर खाल पर उभरी, पतली तथा मवाद से भरी होती है।
4. बाह्य कारणों से बने घाव के किनारे छिन्न-भिन्न होकर खून निकलता है, रक्त प्रवाह न रुकने पर मूर्छा तक आ जाती है।
5. फोड़े के उपचार (चीर फाड़) करने या बैठने पर पीड़ा कम होकर बुखार कम हो जाता है और त्वचा मुलायम हो जाती है।

उपचार—1. घाव किसी भी कारण हुआ हो। सर्वप्रथम रक्त प्रवाह को रोकने का प्रयास करें। रक्त कुछ समय बाद स्वत रुक जाता है, न रुकने पर ठण्डे पानी से घाव साफ करके टिंचर बेंजोइन या टिंचर फेरीपरक्लोराइड को लगाकर सील कर दें।
2. रक्त न रुकने पर पशु चिकित्सक की तुरन्त सहायता लें। पिचूट्रिन या एड्रीनालिन की सुई लगाने से रक्त रुक जाता है।

3. घाव की धूल, कांटा आदि बाहरी चीज निकालकर किसी रोगाणु नाशक घोल से धोकर साफ करें।
4. फोड़े के पकने पर चीरा लगाकर अन्दर का मवाद निकालकर घोल से साफ करें।
5. साधारण खरोंच आदि पर टिंचर आयोडीन, मरक्यूरल क्लोराइड लगाना लाभप्रद है।
6. फोड़े पर प्रतिदिन बोरिक पाउडर, मरहम या एक्रीफ्लोविन घोल से ठीक होने तक ड्रेसिंग कराते रहें।

3. मोच (Sprains) –

शरीर के जोड़ो की कार्यशीलता सीमा से बाहर फैलाव की दिशा में गति से अभिवर्तन (Adduction) या अपवर्तन (Abduction) से मोच आ जाती है। इससे संधियों तथा परिसंधियों की ऊतकें टूट-फूट जाती है।

कारण–1. पशु के जल्दी तेज दौड़ने से;
2. असमतल भूमि पर पैर पड़ जाने से;
3. पशु के अचानक गिरने तथा फिसल जाने से।

लक्षण–1. प्रभावित अंग मे तेजी से सूजन हो जाती है तथा सूजन गर्म हो जाती है।
2. मोच में दर्द रहता है।
3. पशु को चलने-फिरने में कष्ट तथा लंगड़ाता है।

उपचार–1. ताजी तथा साधारण मोच ठण्डे पानी की सेंक तथा इसकी पट्टी बाधने से ठीक हो जाती है।
2. बड़ी मोच में अंग को पशु चिकित्सक या अनुभवी व्यक्ति से बिठलाना चाहिए।
3. गर्म पानी में नमक डालकर सेंक के बाद अलसी का तेल, कपूर, तारपीन का तेल 16 : 2 : 1 अनुपात में मिलाकर मालिश करके रुई की पट्टी बाध दें।
4. पशु के स्वस्थ होने तक लिनीमेण्ट ए.बी.सी. या लिनीमेण्ट कपूर की मालिश करें।
5. आयोडीन का मरहम मलने से व सेंक से आराम मिलता है।
6. स्वस्थ होने तक पशु को पूर्ण आराम दें।

(ब) उदर रोग (Stomach Diseases)

(1) अजीर्ण (Indigestion)

अन्य नाम—अपच, अग्निमान्ध

प्रकृति—यह रोग न होकर पशु की पाचन क्रिया का अच्छी तरह कार्य न करना है जिसका भोजन प्रणाली पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

कारण–1. अनियमित तथा अधिक आहार देना, दूध देने वाले पशु को अधिक आहार देने से अजीर्ण हो जाती है।

2. पेट में परजीवी कीड़े होना;

3. भोजन में अचानक परिवर्तन;

4. कम काम तथा अधिक आराम;

5. बीमारी के बाद पथ्य का ध्यान देना।

लक्षण–1. पशु चारा चाव से न खाकर जुगाली कम करता है जिससे आंतों का कार्य अनियमित हो जाता है।

2. सूखा तथा सख्त गोबर जिसमें अपचा पदार्थ साबुत आते है।

3. पशु अधिक पानी पीता है।

4. पशु की खाल खुरदरी तथा रोयें सीधे दिखाई देते हैं।

5. पशु दर्द के कारण सुस्त रहता है।

उपचार–1. रोग के कारण को समूल नष्ट करना चाहिए।

2. पेट में कृमि होने पर कृमिनाशक औषधि देवें।

3. पशु को प्रातः–सायं टहलाना चाहिए।

4. पशु को साबुन के गुनगुने पानी से एनीमा देने से लाभ होता है।

5. पशु को 24–48 घंटे भूखा रखकर हल्का हरा चारा, घास, चोकर थोड़ी मात्रा में कई बार देवें।

6. पशु को निम्न औषधि की एक खुराक देवें—

(i) मैगसल्फ--240 ग्राम, शीरा--600 मि०ली०

(ii) सोडियम क्लोराइड 180 ग्राम, सोंठ--30 ग्राम, पानी आवश्यकतानुसार

7. हिमालयन बत्तीसा या कैंटोन जैसे पाचक चूर्ण 30-40 ग्राम दिन में दो बार देवें।

8. क्षारीय चूर्ण बनाकर—सोडाबाई कार्ब—16 ग्राम, नमक—16 ग्राम, कुचला—4 ग्राम, दिन में दो बार देवें।

(2) कब्ज (Constipation)

आंतों में मल रह जाने को कब्ज कहते हैं।

कारण–1. मोटे दुष्पचनीय चारे अधिक मात्रा में खिलाने से;

2. असंतुलित भोजन— दाने की अधिक मात्रा में खाने से तथा आवश्यकतानुसार पानी न पीना;

3. बच्चों के भोजन में दूध से चारे में अचानक परिवर्तन;
4. रोग से ठीक होने के बाद।

लक्षण—1. पशु साधारणतया घूमता-फिरता कार्य करता है।
2. गोबर कम काफी अन्तर से करता है।
3. पेट में दर्द तथा बेचैनी महसूस करता है।
4 प्रारम्भिक दशा में उपचार न होने पर अजीर्ण हो जाता है।

उपचार—1. मलाशय में अच्छी तरह चिकना किया हुआ हाथ डालकर गोबर निकाला जा सकता है।
2. गुनगुने साबुन के पानी या अरण्डी के तेल के इमल्शन का एनीमा लगावें।
3. मैग्नीशियम सल्फेट पानी में मिलाकर या अरण्डी का तेल पिलावें।
4. पर्याप्त हरा चारा देकर अधिक पानी पिलावें।
5. मैग सल्फ, साधारण नमक, अदरख, ट्रेकिल गर्म पानी में मिलाकर एक साथ पिलावें।

(3) अतिसार (Diarrhoea)

अन्य नाम—दस्त आना, प्रवाहिका रोग

प्रकृति—पशु को बार-बार पानी जैसे पतले मल त्यागने को, अतिसार कहते हैं।

यह पाचन नाल के किसी बीमारी के कारण सही काम न करने की स्थिति है। भली-भाँति देखभाल न होने पर पशु निर्बल हो जाता है।

कारण—1. अनियमित एवं दूषित आहार, सड़ा-गला, बासी, विषैले चारे खाने से;
2. जीवाणुज, विषाणुज रोग—पोंकनी, गल-घोंटू के जीवाणु भी इस रोग का कारण है।
3. शीत तथा औषधियों का प्रभाव।

लक्षण—1. पशु को प्रथम अजीर्ण होने से वह सुस्त जुगाली करना बन्द कर देता है।
2. दिन में बार-बार पतले दस्त होते हैं जिससे पूँछ, पिछली टाँगें आदि सनी रहती हैं।
3. गोबर में कभी-कभी रक्त व श्लेष्मा के थक्के तथा अपचे भोजन के कण भी मिलते हैं।
4. पेशाब कम तथा प्यास अधिक लगती है।
5. यथासमय चिकित्सा न मिलने पर पशु रक्तहीन तथा निर्जलीय (Dehydrated) दिखाई देने लगता है।

उपचार–1. रोग के कारण का निदान आवश्यक है।

2. अनियमित एवं दूषित चारे से दस्त होने पर हल्का, शीघ्र पाचक एवं पौष्टिक आहार देवें।

3. साधारण दस्तो मे रेचक औषधि के रूप में अण्डी का तेल 120-180 मि.ली. या लिक्विड पैराफीन 80-160 मि.ली. बड़े पशु को देने से पेट बिना बाधा से साफ हो जाता है।

4. दस्त रोकने के लिए सल्फा गुनाडीन, डायाडीन, सल्फामेजाथीन गोली पशु चिकित्सक की राय से देवें।

5. निम्न मिश्रण औषधि की अपेक्षा लाभप्रद हैं—

(i) के-योलीन-4 ग्राम, श्रेटा–4 ग्राम तथा विस्मथ कार्ड–4 ग्राम, खुराक बनाकर 3-2 घण्टे के अन्तर पर देवें।

(ii) कत्था–30 ग्राम, सोंठ चूर्ण–15 ग्राम, खड़िया–60 ग्राम, बेलगिरी–30 ग्राम, अफीम–8 ग्राम, इस सभी का पाउडर बनाकर चार खुराकें बनाकर प्रातः-सायं चावल के मांड में देवें।

6. पथ्य के रूप में माण्डमय भोजन, उबले दूध, अनाज–जौ, जई के पानी में देवें।

7. अधिक समय तक दस्त होने पर द्रव की पूर्ति के लिए 500 सी.सी कैल्शियम ग्लूकोनेट 20% घोल या 500 सी.सी. 41% डेक्सट्रोज का घोल अन्त.शिरा इंजेक्शन द्वारा दिया जा सकता है।

(4) आफरा (Tympantis)

अन्य नाम—पेट फूलना, मीटियोरिज्म

प्रकृति—जुगाली करने वाले पशुओं मे अधिक गीला, हरा चारा खाने तथा भोजन के अधिक दोषपूर्ण किण्वीकरण से बनी गैसो के कारण प्रथम आमाशय फूल जाता है। पेट में दूषित गैसें जैसे कार्बनडाई ऑक्साइड, मिथेन, हाइड्रोजन सल्फाइड, अमोनिया आदि गैसें विकसित होकर पेट को तान देती हैं जिससे पशु बेचैन हो जाता है, इसे अफरा या आफरा कहते हैं।

कारण–1. दूषित आहार, अधिक कार्बोहाइड्रेट युक्त पदार्थ खाने से;

2. गले में रुकावट;

3. व्यायाम तथा कार्य के बाद एकदम ठण्डा पानी पीने से;

4. प्रथम आमाशय की श्लैष्मिक झिल्ली की स्राविक शक्ति में दोष;

5. एक ही करवट तक अधिक समय लेटे रहने से।

लक्षण–1. उदरीय पीड़ा तथा कष्ट होता है।

2. पशु के बांये पार्श्व गैसों के कारण फूल जाता है जिसको अंगुलियो से थपथपाने पर ढम-ढम आवाज आती है।

3. पशु की आँखें तथा शिरायें उभर जाती हैं जिससे पशु का चेहरा दयनीय हो जाता है।

4. प्रथम आमाशय का मध्यच्छदन (Diaphragm) पर दाब पड़ने से नथुने फैल जाते हैं जिससे पशु मुँह से साँस लेता है।

5. पशु बार-बार उठता बैठता है या एक करवट लेकर गहरी साँस लेता है।

6. शीघ्र चिकित्सा न मिलने पर तीव्र अवस्था में पशु 3-4 घंटे में मर सकता है।

उपचार–1 रोगी की तीव्र अवस्था में आमाशय को बांई कोख के बीचोबीच ट्रोकार कैनुला से छेद करके हवा निकाल देने से पशु को आराम मिलता है। पेट में आमाशय नली डालकर गैसें निकाली जा सकती हैं।

2 कुछ तीव्र दशा में पशु को तेल पिलाकर पेट की बांई ओर दबाव डालकर मालिश करें।

3. रूमेन से हवा निकालने के लिए जीभ को बार-बार बाहर खींचकर या *माउथ-गेज लगावें।*

4. पशु को ढालदार स्थान पर बाँधें जिससे धड़ ऊँचा रहे।

5. अम्लावरोधी वायुसारी औषधि मुँह से पिलावें—

(i) तारपीन तेल—60 मि०ली०, अलसी का तेल—600 मि०ली०, टिंचर हींग–15 मि०ली०, स्प्रिट अमोनिया एरोमेटिक्स–15 मि०ली० की एक खुराक बनाकर पिलाने के दो घण्टे बाद निम्न क्षारीय औषधि देवें—

मैंगसल्फ—240 ग्राम, साधारण नमक—240 ग्राम, सोंठ या अदरख–40-80 ग्राम, ट्रेकिन—450 ग्राम, गुनगुना पानी आवश्यकतानुसार पिलावें।

6. पशु के रोग मुक्त होने पर पशु को टॉनिक जैसे कुचला देवें। हिमालयन बत्तीसा या पाचक चूर्ण 30 45 ग्राम प्रातः सायं देने से रोग का पुनः प्रकोप नहीं होता है।

7. पशु को चोकर या मांड तीन दिन तक दिन में एक बार खिलावें।

भोज्य विषाक्ता (Food Poisoning)

धोखे से विष खा लेने या प्रवेश हो जाने से पशु की मौत हो जाती है।

कारण- 1. वर्षा की कमी से गर्मी मे बोई गई ज्वार (चरी), बरू घास में एक प्रकार का विष-हाइड्रोसाइनिक अम्ल पैदा हो जाता है, इसको खाने से पशु मर जाता है।

2 अंधेरे स्थान या चरागाह मे सर्प दंश से;

3. आपसी वैमनस्य के कारण लाग पशु को विष दे देते हैं;

4 कभी-कभी चर्म व्यवसाय वाले व्यक्ति चमड़े तथा हड्डी के लालच में जानबूझ कर विष दे देते हैं।

विद्वेष पूर्ण विष देना न्याय के अन्तर्गत दण्डनीय है।

पशु को मारने के लिये दिये जाने विष—घुंघची, सखिया, कुचला, एकोनाइट, अफीम, पीली कनेर, साइनाइड, मरक्यूरिक क्लोराइड, सर्प विष आदि की थोड़ी मात्रा चारे-दाने, आटे में मिलाकर दी जाती है।

धोखे से खाये जाने वाले विष—साइनाइड या प्रूसिक एसिड, नाइट्रेट, लैड, मोलिब्डेनम, सेलिनियम, फ्लोराइड विषाक्ता।

अलसी, ज्वार, मकई, सूडान घास में प्रोटीन विहीन नाइट्रोजनयुक्त भाग में विषैले पदार्थ साइनाइड होता है। ज्वार की वृद्धिकाल (15" ऊँचाई) में सर्वाधिक होता है। एक ग्राम साइनाइड 450 कि०ग्रा० भार वाले पशु को मारने के लिये पर्याप्त है।

ओले, पाला, तूफान, खराब हवाओं तथा पैरो से कुचली फसल में यह अम्ल अधिक होता है।

लक्षण—पशु के शरीर में किन्ही भी कारणों से विष प्रवेश करें, सामान्यतया निम्न लक्षण प्रकट होते हैं—

1. अत्यधिक बेचैनी से पशु जोर-जोर से साँस लेता है।
2. आँख की पुतली का फैलना तथा मुँह से झागदार लार गिरती है।
3. सुस्ती, भोजन में अरुचि, जुगाली न करना।
4. शारीरिक श्लैष्मिक झिल्लियों का रक्त नीला हो जाता है।
5. पेट फूलना, मांसपेशियो मे ऐंठन तथा पशु का कांपना।
6. रक्त की लाल कणिकाओं (R B.C.) का ऑक्सीजन अवशोषण कम हो जाता है।
7. पशु बेहोश हो जाता है और दम घुटने से 2 घण्टे में मर भी जाता है।

उपचार- 1. पशु को विषैला चारा खाने से रोका जाये।

2. पशु को स्टार्चयुक्त खाद्य पदार्थ खिलाये जिससे अम्ल बनने की दर कम हो।

3. पानी के साथ शीरा मिलाकर पर्याप्त मात्रा मे देवें।

4. मैग्नीशियम सल्फेट तथा पुटेशियम कार्बोनेटयुक्त फैरिक एवं फैरस लवण प्रतिकारक (Antidotes) के रूप में देवें।
5. 10 मि०ली० 20% सोडियम नाइट्राइट अन्तःशिरा इजेक्शन देकर तुरन्त बाद 50 मि०ली० 20% सोडियम थायोसल्फेट का घोल देवें।
6. पशु चिकित्सक से पशु की शीघ्र जांच कराकर उपचार करावें।

(स) चर्म रोग (Skin Diseases)

खाज (Mange)

अन्य नाम—खुजली, स्केबीज (Scabies), इच (Itch), स्कैब (Scab)

प्रकृति - यह पारस्परिक सम्पर्क से फैलने वाली छूत की बीमारी है जो एक कीड़े (Mites) से फैलती है। यह कीड़ा त्वचा के अन्दर 6 से मी. घुसकर अण्डे देती है। यह सूखी तथा गीली दो प्रकार की होती है।

कारण–यह पशुओं में चार प्रकार के कीड़ों से फैलती है—

1. सारकोप्टस स्कैबिआई (Sarcoptos Scabiei)
2. सोराप्टस कम्युनिस (Psoroptes Communis)
3. डेमोडेक्स फोलीकुरम (Demudex folliculorum)
4. कोरिआप्टस बोविस (Corioptes bovis)

लक्षण–1. पशु के खुर या पास के खड़े पेड़ या दीवाल से अपना शरीर खुजलाता या रगड़ता है।
2. रोग ग्रस्त भाग के बाल गिरकर वहां की त्वचा सूजकर मोटी हो जाती है या झुर्रीदार हो जाता है।
3. खुजली की अधिकता से स्थान पर खुरंट बन जाता है जिसको खुजलाने पर पानीदार द्रव या खून निकलता है।
4. गीली खुजली में फफोले बनकर फूट जाते हैं, दर्द के कारण पशु बेचैन रहता है। यह सींग की जड़, गर्दन, कंधे, पीठ, पूंछ पर होती है।

उपचार–1. रोगी पशु को झुण्ड से अलग कर देवें।
2. प्रभावित पशुओं को टेटमासोल साबुन से नहलाकर 25% टेटमासोल घोल को रोगयुक्त स्थान पर फुरेरी से लगावें।
3. नहलाने के लिए डिटॉल या सेवलोन या नीम का पानी काम में ला सकते हैं।
4. मैगसल्फ तथा गन्धक खिलावें।
5. गन्धक 40 ग्राम, तारपीन का तेल 40 ग्राम, पोटेशियम बॉई कार्ब 16 ग्राम को गरी या सरसों के तेल 300 ग्राम में मिलाकर खुजली के स्थान

6. एस्केविप्रॉल (M. & B. Product) का प्रयोग काफी लाभप्रद है।
7. फफोलेदार खुजली में एण्टाबॉयोटिक–पैनसिलीन तथा सल्फा औषधि पेण्टेड सल्फा प्रयोग में लाई जा सकती है।
8. दवा लगाने के बाद 3-4 घण्टे के लिए पशु के मुँह में छींका लगा दें जिससे वह दवा को न चाटे।
9. ये औषधियाँ बाहरी उपयोग की हैं, इनको पशु आहार से दूर रखें।

थनैला (Mastitis)

अन्य नाम अयन का शोथ, गार्गेट, स्तन शोथ

स्वभाव एवं प्रकृति—यह जीवाणुओं से दुधारू पशुओं गाय, भैंस एवं बकरी के अयन (Udder) में होने वाली भयानक छूत का रोग है। प्रारम्भिक दशा में चिकित्सा न किए जाने पर अयन सदैव के लिए बेकार हो जाते हैं। प्रथम ब्यांत के पशुओं में अधिक बार ब्याए पशुओं की अपेक्षा यह रोग कम होता है।

कारण—यह रोग विभिन्न जीवाणुओं द्वारा फैलता है जो थनों द्वारा पशु के अयन (Udder) में प्रवेश कर जाते हैं।

	जीवाणु	प्रतिशत प्रकोप
1	स्ट्रेप्टो कोकाई एगेयालैक्शिया	40—75 तक
2.	स्टैफिलोकोकाई	25—60 तक
3.	कोरिन बैक्टीरियम पायोजिनस	2—3 तक
4.	माइक्रो बैक्टीरियम ट्यूबरक्लोसिस	0·5—1·0 तक
5.	बैक्टीरियम कोलाई	0·5—5·0 तक
6.	फ्यूजीफार्मिस नेक्रोफोरस	0·1—0·2 तक

इन जीवाणुओं के अतिरिक्त पशु शाला की गन्दगी, अयन, थनों के घाव, ग्वाले के गन्दे हाथ तथा मक्खियों आदि का जमाव भी इस रोग को फैलाने में सहायक होते हैं।

संक्रमण—रोग के जीवाणु पशु के अयन में बने घावों तथा पशु के गन्दे और भीगे फर्श पर बैठने से थनों के माध्यम से अन्दर प्रवेश कर जाते हैं। दूध दुहने की मशीनें, ग्वाले के गन्दे हाथ तथा पशु शाला की गन्दगी इस रोग को फैला देते हैं। बड़ी मक्खियों तथा डाँस भी सहायक हैं।

लक्षण—यह रोग दुधारू पशुओं के अयन तक ही सीमित रहता है जिसकी कई अवस्थाएँ होती हैं—

(1) तीव्र थनैला (Acute Mastitis)—यह कोरिन बैक्टीरियम पायोजिनस नामक जीवाणु से फैलता है। पशु को बुखार आने से अयन गर्म एवं लाल जाता है। पशु आहार नहीं लेता है जिससे बेचैनी महसूस करता है।

कुछ समय बाद बुखार कम होने के बाद अयन सख्त एवं ठण्डा हो जाता है तो थनों से दूध आना बन्द हो जाता है।

(2) कुछ तीव्र थनैला (Sub-acute Mastitis)—यह स्ट्रेप्टो यूबरिस जीवाणु से फैलता है। रोग के लक्षण तीव्र थनैला की भाँति होते हैं। इसका प्रभाव धीरे-धीरे दिखाई देता है तथा पशु को कम हानि होती है। सूजे थनों से पीला द्रव निकलता है जिसमें एपीथिलियम कोशिकाएँ और छीछड़े होते हैं।

(3) दीर्घ कालिक थनैला (Chronic Mastitis)—यह अवस्था दुधारु पशुओं में स्ट्रेप्टोकोकस एगैलेक्शिया नामक जीवाणु से होता है जिसके प्रभाव धीरे-धीरे होने से रोग की स्थिति देर से दिखाई देती है।

पशु के अयन का आकार बढ़ जाता है तथा सख्त होने पर दबाने से दर्द महसूस नहीं होता है। थनों से निकला द्रव पतला एवं छीछड़े लिए होता है। धीरे-धीरे दूध सूखने से पशु दूध देना बन्द कर देते हैं।

रोग का निदान (Diagnosis of Disease)

लक्षणानुसार (Symptomatic)—रोग के लक्षण दिखने पर पशु का दूध निकालने के बाद अयन तथा थनों के आकार में अन्तर, मोटे तथा कठोर होने पर यह रोग है।

स्ट्रिप कप परीक्षण (Strip cub Test)—अल्यूमीनियम या धातु का 30 से मी. गहरा एक कप की आकृति जिसके ढक्कन में 3 से.मी. गहराई पर बारीक जाली, जो ढक्कन को आधा ढंका होता है, लगी होती है। पशु के प्रथम दूध को जाली पर डालने पर यदि छीछड़ या फुटक दिखें तो थन रोगग्रस्त हैं।

स्वाद परीक्षण—दूध में सोडियम क्लोराइड (साधारण नमक) 0·12% से यह मात्रा 1·5 प्रतिशत तक से अधिक होने पर यदि इसका स्वाद अधिक नमकीन हो तो यह रोग है।

अम्लता परीक्षण—रोगग्रस्त पशु के दूध की अम्लता बढ़ जाती है। साधारण दूध का पी. एच. 6·6—6·8 होता है जबकि रोगी पशु के दूध की अम्लता 6·8 से अधिक 7·4 तक हो जाती है।

सूक्ष्मदर्शी परीक्षण—

(क) लेप परीक्षण (Smear Test) - रोगग्रस्त पशु के दूध को अपकेन्द्री नली (Centrifasaltupt) में रखने पर जब इसे अपकेन्द्रिक करते हैं तो दूध का रेतीला भाग नली की तली में बैठ जाती है। इस पदार्थ को काँच की स्लाइड पर रखकर सूक्ष्मदर्शी जाँच से रोग की जाँच करते हैं।

(ख) जीवाणु परीक्षण (Bacterial Test)—पशु के दूध को शीशियो मे भरकर 37°C ताप पर 18—24 घटे तक रखते हैं। इस दूध की स्लाइड बनाकर सूक्ष्मदर्शी से जीवाणुओं को देखते हैं।

(ग) संवर्धनीय परीक्षण (Cultural Test)—लेप परीक्षण से प्राप्त रेतीले पदार्थ को ब्रोन कोसिल पर्पिल मे मिलाकर रखने से जीवाणु विकसित हो जाते हैं। इस संवर्ध की स्लाइट बनाकर सूक्ष्मदर्शी से जीवाणु परीक्षण करते हैं।

उपचार—रोग के लक्षण दिखते निम्न उपचार करते हैं—

1. गर्म पानी में नीम की पत्तियाँ डालकर या मैगसल्फ या बोरिक अम्ल मिला· कर अयन की गर्म सेंक से लाभ होता है।
2. अयन की सूजन पर आयोडीन मलहम या लिनीमेंट का लेप करें।
3. टीट साइफन से दूध निकालने के बाद 0·1% एक्रीफ्लोविन का 50-70 मि.ली. घोल चढाते हैं! थनो को दो-तीन बार मलकर द्रव को बाहर निकालने से लाभ होता है। एक्रोफ्लोविन घोल का अन्त: स्तनीय इन्जेक्शन भी लगाते हैं।
4. प्रति जीवाणु पदार्थ (Anfiotics)—स्ट्रैप्टोमाइसिन, डाइक्रिस्टीसिन, टैरामाइसिन औषधियों को देने से लाभ होता है। एक लाख यूनिट पेनिसिलीन का स्ट्रेप्टो-पेनिसिलन घोल को टीट साइफन द्वारा थन मे चढ़ा देते हैं। साथ ही 20 लाख यूनिट अयन पेशी में इन्जेक्शन देते हैं।
5. पेटेण्ट औषधि—बाजार में इस रोग के लिए विशेष रूप से तैयार मैम्टालान, टैरामाइसिन, ऑरोमाइसिन, युडोलैक पैनिसिलिन, नैफ्युरॉन, मैस्टीसिलिन की ट्यूब को थनों में चढ़ाने से शीघ्र लाभ होता है और पशु निरोग हो जाते है।
6. रोग से लाभ हेतु सल्फा डिमीडीन, स्ट्रैप्टोमाइसिन, 5 लाख यूनिट पेनीसिलीन और 25 c. c. सल्फर डिमीडिन का अन्त स्तनीय इंजेक्शन देने से शीघ्र लाभ होता है।
7 रोगी पशु को निम्न औषधि का मिश्रण के आहार के साथ देने से लाभ मिलता है—

(अ) प्रोकेन पैनिसिलिन— 1 लाख यूनिट
स्ट्रेप्टोमाइसिन— 100 मि ग्रा.
33½% सल्फामैजाथीन सोडियम घोल— 10 सी.सी.
आसुत जल 20 सी.सी.

(ब) (i) प्रोकेन पेनिसिलिन (G) 75000 यूनिट
(ii) आसुत जल 20 सी.सी.

(स) (i) प्रोकेन पेनिसिलिन 75000 यूनिट
(ii) स्ट्रेप्टोमाइसिन 80 मि.ग्रा.
(iii) 33⅓% सल्फाडिमीडिन सोडियम घोल– 5 सी.सी.
(iv) आसुत जल 20 सी.सी.

इन तीनो में से किसी एक का मिश्रण आहार के साथ दिया जाता है।

रोकथाम —

1. पशु, पशुशाला, पशुओं के उपयोग मे आने वाले बर्तन, ग्वाले आदि सभी की पूरी सफाई का विशेष ध्यान रखें।
2. पशु के ग्रयन, थनों के घाव, चोट आदि की यथासमय चिकित्सा करें।
3. रोग की आशंका होने पर दूध परीक्षण करें।
4. पशु के थनो तथा ग्वाले के हाथ को पोटाश के घोल से धोने के बाद दूध निकालें।
5. रोगी पशु की शीघ्र उपचार व्यवस्था करें अन्यथा कभी-कभी अन्य रोग के जीवाणु भी अयन में प्रवेश कर जाते हैं।
6. भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, मुक्तेश्वर में रोग की सघन रोकथाम पर कार्य किया जा रहा है।

(द) संक्रामक एवं संसर्गज रोग
(Infectious and Contagious Diseases)

(अ) जीवाणु रोग (Bacterial Diseases)

(1) जहरी बुखार (Anthrax)

अन्य नाम—गिल्टी रोग, विषहरी, प्लीहा बुखार, मनुष्य मे दुर्दम्य प्यूस्फोरिका (ऊन काटने वाले व्यक्ति)।

स्वभाव एवं प्रकृति—यह ग्रीष्म ऋतु में जुगाली करने वाले पशु गाय, भैंस बकरी, सुअर, घोड़े आदि की तीव्र घातक सांसर्गिक भयानक रोग है। यह भारत जैसे गर्म देश के अलावा विश्व के अन्य देशों मे फैलता है। यह पशुओं से भेड़, ऊन व्यवसायो से सम्बन्धित व्यक्तियो को होता है।

कारण—यह 'बैसिलस एन्थ्रेसिस' (Bacillus anthracis) नामक जीवाणु से फैलता है। यह ऑक्सीजन की उपस्थिति में प्रतिकूल स्थिति में पनप सकता है परन्तु तेज धूप में 6-10 घण्टे में नष्ट हो जाता है।

संक्रमण (Mode of Infection)—1. दूषित पानी, चरागाह से रोग के बीजाणु (Spores) पशु के शरीर में प्रवेश करते हैं। कुत्ते, कौवे, गीध, सियार आदि रोगी पशु के मांस को खाकर रोग फैलाते हैं।

2. श्वांस नली द्वारा—ऊन छाँटने वाली बीमारी या फुस्फुस दाह गिल्टी रोग का रोगाणु सांस नली के द्वारा मनुष्य के शरीर में प्रवेश करता है।

3. त्वचा द्वारा—मच्छरों तथा चूपक मक्खी से संक्रमण होता है। घाव या

(ग) संवर्धनीय परीक्षण (Cultural Test)—लेप परीक्षण से प्राप्त रेतीले पदार्थ को ब्रोन कोसित पपिल में मिलाकर रखने से जीवाणु विकसित हो जाते हैं। इस संवर्ध की स्लाइट बनाकर सूक्ष्मदर्शी से जीवाणु परीक्षण करते हैं।

उपचार—रोग के लक्षण दिखते निम्न उपचार करते हैं—

1. गर्म पानी में नीम की पत्तियाँ डालकर या मैगसल्फ या बोरिक अम्ल मिला· कर अयन की गर्म सेंक से लाभ होता है।
2. अयन की सूजन पर आयोडीन मलहम या लिनीमेंट का लेप करें।
3. टीट साइफन से दूध निकालने के बाद 0·1% एक्रीफ्लोविन का 50-70 मि.ली. घोल चढ़ाते हैं। थनो को दो-तीन बार मलकर द्रव को बाहर निकालने से लाभ होता है। एक्रोफ्लोविन घोल का अन्त: स्तनीय इन्जेक्शन भी लगाते है।
4. प्रति जीवाणु पदार्थ (Anfiotics)—स्ट्रेप्टोमाइसिन, डाइक्रिस्टीसिन, टैरामाइसिन औषधियों को देने से लाभ होता है। एक लाख यूनिट पेनिसिलीन का स्ट्रेप्टो-पेनिसिलन घोल को टीट साइफन द्वारा थन मे चढ़ा देते हैं। साथ ही 20 लाख यूनिट अयन पेशी मे इन्जेक्शन देते हैं।
5. पेटेण्ट औषधि—बाजार में इस रोग के लिए विशेष रूप मे तैयार मैम्टालान, टैरामाइसिन, ऑरोमाइसिन, युडोर्लक पैनिसिलिन, नैफ्युरॉन, ऐस्टीसिलिन की ट्यूब को थनों मे चढ़ाने से शीघ्र लाभ होता है और पशु निरोग हो जाते है।
6. रोग से लाभ हेतु सल्फा डिमीडीन, स्ट्रेप्टोमाइसिन, 5 लाख यूनिट पेनीसिलीन और 25 c. c. सल्फर डिमीडिन का अन्त स्तनीय इंजेक्शन देने से शीघ्र लाभ होता है।
7. रोगी पशु को निम्न औषधि का मिश्रण के आहार के साथ देने से लाभ मिलता है—

(अ) प्रोकेन पैनिसिलिन—	1 लाख यूनिट
स्ट्रेप्टोमाइसिन—	100 मि ग्रा.
33½% सल्फामेजाथीन सोडियम घोल—	10 सी.सी.
आसुत जल	20 सी.सी.
(ब) (i) प्रोकेन पेनिसिलिन (G)	75000 यूनिट
(ii) आसुत जल	20 सी.सी.
(स) (i) प्रोकेन पेनिसिलिन	75000 यूनिट
(ii) स्ट्रेप्टोमाइसिन	80 मि.ग्रा.
(iii) 33½% सल्फाडिमीडिन सोडियम घोल–	*5 सी.सी.*
(iv) आसुत जल	20 सी.सी.

इन तीनों में से किसी एक का मिश्रण आहार के साथ दिया जाता है।

रोकथाम —

1. पशु, पशुशाला, पशुओं के उपयोग में आने वाले बर्तन, ग्वाले आदि सभी की पूरी सफाई का विशेष ध्यान रखें।
2. पशु के प्रयन, थनों के घाव, चोट आदि की यथासमय चिकित्सा करें।
3. रोग की आशंका होने पर दूध परीक्षण करें।
4. पशु के थनों तथा ग्वाले के हाथ को पोटाश के घोल से धोने के बाद दूध निकालें।
5. रोगी पशु की शीघ्र उपचार व्यवस्था करें अन्यथा कभी-कभी अन्य रोग के जीवाणु भी प्रयन में प्रवेश कर जाते हैं।
6. भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, मुक्तेश्वर में रोग की सघन रोकथाम पर कार्य किया जा रहा है।

(द) संक्रामक एवं संसर्गज रोग
(Infectious and Contagious Diseases)

(अ) जीवाणु रोग (Bacterial Diseases)

(1) जहरी बुखार (Anthrax)

अन्य नाम—गिल्टी रोग, विषहरी, प्लीहा बुखार, मनुष्य में दुर्दम्य प्यूस्फोरिका (ऊन काटने वाले व्यक्ति)।

स्वभाव एवं प्रकृति—यह ग्रीष्म ऋतु में जुगाली करने वाले पशु गाय, भैंस बकरी, सुअर, घोड़े आदि की तीव्र घातक सांसर्गिक भयानक रोग है। यह भारत जैसे गर्म देश के अलावा विश्व के अन्य देशों में फैलता है। यह पशुओं से भेड़, ऊन व्यवसायों से सम्बन्धित व्यक्तियों को होता है।

कारण—यह 'बैसिलस एन्थ्रेसिस' (*Bacillus anthracis*) नामक जीवाणु से फैलता है। यह ऑक्सीजन की उपस्थिति में प्रतिकूल स्थिति मे पनप सकता है परन्तु तेज धूप में 6-10 घण्टे में नष्ट हो जाता है।

संक्रमण (Mode of Infection)—1. दूषित पानी, चरागाह से रोग के बीजाणु (Spores) पशु के शरीर में प्रवेश करते हैं। कुत्ते, कौवे, गीध, सियार आदि रोगी पशु के मांस को खाकर रोग फैलाते हैं।

2. श्वांस नली द्वारा—ऊन छाँटने वाली बीमारी या फुस्फुस दाह गिल्टी रोग का रोगाणु सांस नली के द्वारा मनुष्य के शरीर में प्रवेश करता है।

3. त्वचा द्वारा—मच्छरों तथा चूषक मक्खी से संक्रमण होता है। घाव या

खरोंच से संक्रमित शव, खाल, बाल, ऊन, दाढ़ी के ब्रुश और हड्डी की खाद से पशु चिकित्सक, कसाई आदि संक्रमित होते हैं।

उद्भवन काल (Incubation Period)—12 से 48 घण्टे, अधिक 3-14 दिन।

लक्षण (Symptoms)—यह बाह्य गिल्टी रोग है जिसमें तीव्र तथा कुछ हल्की दशा प्रकट होती हैं।

1. पशु को तेज बुखार 104° – 107° फे० या अधिक हो जाता है जिससे पशु कांपता है।

2. पशु के शरीर मे सूजन त्वचा के नीचे, सिर, गर्दन, छाती अन्य भागों मे तेजी से फैल जाती है तथा अन्य अङ्गों को भी प्रभावित करती है।

3. सूजन गर्म तथा दर्द युक्त होती है।

4. रोग की तीव्रता में पशु की मौत हो जाती है।

5. उपचार मिलने पर पशु रोगमुक्त होकर स्वस्थ भी हो जाते हैं।

अवस्था (Stages)—यह रोग के आक्रमण के स्थान, संक्रमण की मात्रा, प्रभावित पशु की सुग्राहता पर कई ढगों से फैलता है—

1. उपतीव्र अवस्था—इसमें रोग के लक्षण कुछ हल्के दिखाई देते हैं जिसमें पशु रोगमुक्त होकर स्वस्थ हो जाते हैं। पशु की मृत्यु 3-7 दिन में हो जाती है।

2. तीव्र अवस्था—पशु को तेज ज्वर, वेग श्वांस-प्रश्वास, तेज नाडी गति, पेट का फूलना, शरीर से पसीना आना, तेज दर्द, शरीर सीने, गला, कोख पर सख्त व गर्म सूजन, नाक से खून तथा रक्त मिला दस्त होकर पशु 24-48 घण्टे में मर जाता है। यह घोड़ों मे भी होता है जो तीव्र रूप से शुरू होकर उपतीव्र दशा में दिखाई देती है। 70-90% मृत्यु दर है।

3. अतितीव्र अवस्था—पशु के कांपकर तेजी से जमीन पर गिरना, तेज श्वांस, मुँह, नाक, मलद्वार से रक्त मिला झागदार स्राव तथा पशु की अचानक मौत रोग की अति तीव्रता के लक्षण हैं।

उपचार (Treatments)—रोग के लक्षण प्रकट होने पर इसका विशेष इलाज नही है फिर भी प्रारम्भिक दशा में पता लगने पर—

1. एण्टीएन्थ्रेक्स सीरम को अन्तःशिरा या अधसत्वक इन्जेक्शन देकर पशु को बचाया जा सकता है।

गाय-भैंस, घोड़े – 100 – 150 घ०से०मी० c. c

भेड़-बकरी - 50-100 सी० सी०

2. पैनिसिलीन ढोरो और घोडों में 10-30 लाख अन्तःपेशी द्वारा प्रति

4 घण्टे के अन्तर पर ठीक होने तक प्रयोग करें। तीव्र अवस्था में 30-60 लाख 24 घण्टे में अन्तः शिरा से देवें।

3. टेरामाइसिन, ओरोमाइसिन, होस्टासाइक्लीन इन्जेक्शन लाभप्रद हैं ये सभी औषधियाँ पशु चिकित्सक की देखरेख में ही दी जावें।

रोकथाम (Control Measures)—

1. संक्रमित स्थानों पर प्रतिवर्ष वर्षारम्भ से पूर्व बोवाइन एन्थ्रैक्स स्पोर वैक्सीन या पाश्चर डबल वैक्सीन का टीका लगवाएँ।

2. रोगी पशु के सम्पर्क मे आये स्वस्थ पशुओं के 10-25 c. c. एण्टीसीरम का इन्जेक्शन लगाने पर 14 दिन तक पशु रोग से बच जाते हैं।

3. इस रोग की आशंका होने पर पोस्टमार्टम किसी भी दशा में न करें। शरीर के सभी प्राकृतिक छिद्रों को 1:1000 मरकरी पर क्लोराइड। मरक्यूरिक क्लोराइड या फिनाइल मे भीगी रूई को निचोड़कर बन्द कर देवें। पशु को 2 मीटर गहरा गड्डा खोद कर चारों ओर 30 से० मी० मोटी चूने की तह लगाकर दबा देवें।

4. संक्रमित स्थानों को निःसंक्रमण कर देना चाहिए।

2. जहर वाद (Black Quarter)

अन्य नाम—लंगड़ी, लेंगड़िया, चुरचुरिया, गठिया, वातस्फीतिक रोग।

स्वभाव एवं प्रकृति—यह बहुत ही घातक एवं तीव्र संक्रामक रोग है जो ढोर तथा भेड़ों मे होता है। यह पूरे विश्व में फैलती है।

कारण—यह एक प्रकार के जीवाणु 'क्लास्ट्रीडियम शोवियाई' (Clostridium Chauvoei) से फैलती है।

संक्रमण—1. अन्न नली द्वारा—दूषित चरागाह में पशु के चरने से पशु शरीर में पहुँच जाते हैं।

2. त्वचा द्वारा—शरीर पर खरोच, घाव से जीवाणु शरीर मे प्रवेश करते हैं।

उद्भवन काल—1 से 15 दिन।

लक्षण—1. पशु खाना-पीना तथा जुगाली बन्द करके झुण्ड से अलग खड़ा रहता है।

2. तीव्र ज्वर 107-108° फे० तक हो जाता है।

3. सूजन छाती, गर्दन, पीठ, पुट्ठे तथा पिछले पैरों पर तेजी से बढ़ती है जिससे पशु लंगड़ा कर चलता है।

4. सूजन बढ़ने के साथ गिल्टियाँ बड़ी हो जाती हैं जिसको दबाने पर चर-

चर की (Creptitating Sound) आवाज आती है, इसमें गैस भरी होती है जिससे इसे 'चुरचुरिया' कहते हैं।

5. सूजन की त्वचा सूखकर सख्त काली हो जाती है, चीरा लगाने पर सूजन का भाग रबर स्पंज की भांति कटता है, इसमें काले रंग का झागदार खून निकलता है जिसमें सड़े मक्खन जैसी बदबू आती है।

6. अचानक ज्वर का कम होना पशु मृत्यु का सूचक है प्राय. 12 से 40 घण्टे में मृत्यु हो जाती है।

उपचार—औषधियों से अपेक्षाकृत लाभ कम होता है फिर भी—

1 प्रभावित पशुओं को झुण्ड से अलग कर देवें।

2. पशु की सूजन जीवाणु रहित चाकू से चीरकर, साफ करके उसमे टिंचर आयोडीन, 1:1000 मरक्यूरिक क्लोराइड घोल भरकर ठीक किया जा सकता है परन्तु यथासम्भव शरीर न खोला जावे अन्यथा घाव से जीवाणु निकलकर वातावरण दूषित कर प्रकोप को बढ़ायेंगे।

3. रोग प्रारम्भ में पशु को 10-20 लाख यूनिट पेनीसिलीन इन्जेक्शन लगावें, $33\frac{1}{3}$ प्रति. सल्फामेजायीन सोडियम का 70-100 c. c. घोल अन्त: शिरा इन्जेक्शन लगाने से लाभ होता है।

4. एण्टी लंगड़ी सीरम 10-40 c c. अन्तर्त्वचा इन्जेक्शन देने पर पशु 15 दिन तक बचाया जा सकता है।

छूत के रोग

गल घोंटू (Haemorrhagic Septicaemia)

अन्य नाम—घुटका, घुरेखा, नाविक बुखार।

स्वभाव एवं प्रकृति—यह जीवाणु से फैलने वाला भयंकर घातक संक्रामक रोग है जिससे देश में प्रतिवर्ष 5000 पशुओं की मृत्यु हो जाती है। यह गाय एवं भैसों मे वर्षा प्रारम्भ होने पर होता है। कभी-कभी इसके अति प्रकोप से गांव के सभी पशु प्रभावित हो जाते हैं।

कारण—यह रोग गायों में पास्चुरेल्ला बोवीसेप्टिका (Pastaurella boviseptica) तथा भैसों मे पास्च्युरेल्ला बुबेलीसेप्टिका (Pasteurella bubaliseptica) नामक जीवाणु से फैलता है। जीवाणु शरीर से बाहर आते तुरन्त नष्ट हो जाता है परन्तु शरीर की रक्त प्रणाली में विकासकर पशु को रोगी बना देता है। प्रौढ़ पशुओं की अपेक्षा युवा पशु अधिक प्रभावित होते हैं।

संक्रमण—

1. चरागाह द्वारा—रोगी पशुओ के चरागाह में जाने पर घास दूषित हो जाती है जो स्वस्थ पशुओं को रोगी बना देते हैं।

2. श्वास नलिका द्वारा (Byinhalation)—वैज्ञानिकों के अनुसार रोग के जीवाणु वायु से पशु के श्वास के साथ शरीर में प्रवेश कर विकसित होकर रोग फैलाते हैं।

3. परजीवी द्वारा—यह रोग स्वस्थ पशुओं में मक्खी, मच्छर, चीचड़ों (Tick) के द्वारा फैलता है। रोगी पशु के खून चूसने पर ये कीट जब स्वस्थ पशु को काटते हैं तो जीवाणु शरीर में पहुँचकर रोग फैलाते हैं।

इनके अतिरिक्त रोग पशुओं के सम्पर्क, दूषित आहार एवं नम जलवायु से फैलता है।

उद्भवन काल—रोग के लक्षण प्राय: 1 से 3 दिन में प्रकट हो जाते हैं। पशु के गले पर सूजन हो जाने से इसके कारण का अनुमान लगाना मुश्किल सा हो जाता है।

लक्षण—पशुओं से इस रोग की तीन अवस्थायें होती हैं —

1. तीव्र रक्त पूतित अवस्था (Acute Septicaemic Form)—पशु को अचानक तीव्र 108° फ़ं० बुखार हो जाता है। पशु आहार न लेकर बिना जुगाली किए तथा कान नीचे लटकाये एक कोने मे खड़ा रहता है। पेट मे ऐंठन तथा पतले खूनी दस्त होते हैं जो रोग की विशिष्ट पहिचान है। रोग की तीव्रता होने पर पशु 5-7 घण्टे में मर जाता है।

2. त्वचा शोथ अवस्था (Dedematous Form)—इसमे रोग के लक्षण त्वचा पर दिखते हैं। पशु को तेज बुखार के साथ नीचे के जबड़े का सूजना, जीभ का सूजकर बाहर निकल आना, मुँह से लार गिरना, श्वास लेने में कठिनाई तथा घुर्र-घुर्र की आवाज आना, रोग के मुख्य लक्षण हैं।

जीभ, गले पर अधिक सूजन आ जाने से पशु बेचैन हो जाता है और गर्दन मोड़कर जमीन पर गिर जाता है जिसके कारण 24-26 घण्टे में पशु मर जाते हैं।

3. अंस-अंस अवस्था (Pectoral Form)—इस अवस्था में पशु को श्वास गहरा एवं जल्दी आने लगता है। श्वास के साथ धसका भी आता है। पशु की नाक से सफेद-लाल रंग का स्राव आता है जो गाढ़ा होकर नाक से लटका दिखता है। बुखार में निमोनिया के लक्षण दिखाई देते हैं।

रोगी पशु का पोस्टमार्टम करने पर शरीर की सभी झिल्लियाँ रक्त सकुचित होती हैं। लसिका ग्रन्थिका, अन्तड़ी एवं पेट सूजा हुआ लाल दिखाई देता है जिनकी भीतरी दीवालों पर रक्त के थक्के जमे दिखते हैं।

उपचार—यह रोग अति भयंकर तथा घातक होता है। पशु के शरीर पर लक्षण दिखते-दिखते मर जाता है। अत: पशु की चिकित्सा की अपेक्षा रोकथाम महत्वपूर्ण है।

1. एण्टीसीरम की 150 सी०सी० मात्रा का अन्त शिरा में इन्जेक्शन लगाएँ।

2. पशुओं को रोग की प्रारम्भिक अवस्था में 2 ग्राम पुटेशियम परमेंगनेट पानी में घोलकर कई बार देवें।

3. पुटेशियम परमेंगनेट तथा कपूर की बराबर मात्रा को 8 घण्टे के अन्तर पर पशु को पिलाने से लाभ होता है।

4. रोग के प्रकोप को कम करने के लिए कार्बोलिक अम्ल का घोल पिलाने से आराम होता है।

5. एक ड्राम पुटेशियम आयोडाइड को 300 सी०सी० आसुत जल मे मिला कर त्वचा में इन्जेक्शन लगाने से लाभ होता है।

6 रोगी पशु को 100 सी०सी० $33\frac{1}{3}$ प्रति. सल्फा मे जाथीन घोल का अन्त:शिरा इन्जेक्शन लगाने से अपेक्षाकृत शीघ्र लाभ होता है।

7. पशु की गर्दन के एक ओर 50 सी०सी० एण्टीसीरम तथा दूसरी ओर 50 सी०सी० सल्फा डिमीडीन का इन्जेक्शन लगाने से शीघ्र लाभ होता है।

8 सिवाजोल, सल्फर थाइजोल, सल्फा मैंजाथीन की टिकियों को बारीक पीसकर दिन में दो बार खिलायें।

9. प्रति जैविक औषधियाँ—टैरामाइशीन, ओरामाइसीन, होरटासाइक्लीन, एक्रोमाइसीन का उपयोग रोगी पशुओं को अधिक लाभप्रद है।

रोकथाम—

1. वर्षा काल के प्रारम्भ से पूर्व सभी पशुओं को H.S. Composite broth vaccine की 5 सी०सी० मात्रा का इन्जेक्शन लगा देना चाहिए।

2. स्वस्थ पशुओं को रोगी पशुओं से दूर अलग रखें।

3. रोग से मरे पशुओं को 2 मीटर गहरा गड्ढा खोदकर दबा दें या शव को जला देना चाहिए।

4. पशुशाला की 15 सेमी० मिट्टी खुरचकर जीवाणु नाशक दवा का छिड़काव कर नि.संक्रमित करें।

5. स्वस्थ पशुओं को चरागाह में न भेजकर पशुशाला में ही व्यवस्था करें।

6. पशुओं के आवास को साफ रखने के साथ उनको स्वादिष्ट एवं पौष्टिक आहार दें।

रोकथाम—

1. पशुओं को दूषित भूमि, चरागाह से दूर रखें।

2. पशु की 6 माह की आयु से ही प्रति तीन वर्ष के अन्तर पर 'पोलीवेलेण्ट

फार्मेलीनाइज्ड एनाकल्चर वेक्सीन' आयु के अनुसार लगावें तथा लगाने के 10 दिन बाद पुनः लगाने पर प्रतिरक्षा क्षमता बढ़ जाती है।

ढोर—गाय, भैंस – 5–10 c.c.

भेड़ – 1–2 c.c.

3. महामारी वाले क्षेत्रों में वर्षारम्भ से पूर्व रोग के सामूहिक टीके राज्य पशुपालन विभाग निःशुल्क लगाये जाते हैं, सम्बन्धित अधिकारी से सम्पर्क करके व्यवस्था करायें।

4. रोग से मरे पशु की खाल किसी भी दशा में न निकाले, इसे जमीन में गहरा गाड़ दें या सावधानी से जला देवें।

5. दूषित स्थानों का निःसंक्रमण करें।

(ब) विषाणु रोग (Viral Disoasos)

माता (Rinderpest)

अन्य नाम—मालमारी, पशु प्लेग, पोंका, पोंकनीमाता, मतहाई, मानरोग, वेदन, वसंतू, शीतला आदि।

स्वभाव एवं प्रकृति—यह एक ज्वरीय संसर्गज रोग है जो जुगाली करने वाले पशुओं में होता है। मैदानी भागों की अपेक्षा पहाड़ी भागों तथा विदेशी जाति के पशु ग्रसित होने पर 80–100 प्रति. मृत्यु दर होती है। यह वर्ष में किसी भी समय हो सकती है परन्तु अधिक शुल्क मौसम में पशु स्थानान्तर होने पर अधिक फैलती है।

कारण—यह बहुत ही शीघ्र एक पशु से दूसरे पशु में एक छानने योग्य वायरस से फैलता है।

संक्रमण—1. अन्न नली द्वारा—रोगी पशु के चारे, बर्तन, पानी, सेवक के कपड़े आदि के सम्पर्क में आने से फैलता है। मक्खियां भी रोग फैलाने में सहायक होती हैं।

2. श्वांस नली द्वारा—विषाणु स्वस्थ पशु में प्रवेश कर जाते है।

उद्भवन काल—3 से 8 दिन।

लक्षण—प्रथम अवस्था—अनेक पशु बीमार होते है। पशु का तापक्रम 4-5 दिन में 104-108° फे० तक पहुँच जाता है। शरीर के रोंगटे खड़े होकर पशु के कांपने के साथ दांत कटकटाने लगते हैं। पशु के जुगाली न करने पर कब्ज होकर गोबर सख्त, खून से सना होता है।

द्वितीय अवस्था—पशु की आंखें लाल होकर कीचड आने लगता है। नाक,

आँख, मुँह से लार बहती है। मुँह की झिल्ली लाल होकर छाले हो जाते हैं। नथुने तथा थूथन सूखकर फटने लगता है। गोबर में आँव आने लगता है।

तृतीय अवस्था—पशु के आँख, नाक, मुँह से मवाद युक्त लसदार पदार्थ निकलता है। पशु को पतले बदबूदार खून से सने; तेज दस्त (Shooting Diarrhoea) होते हैं जिससे पूँछ तथा पिछला भाग सन जाता है। पशु को दस्त होने के साथ तापक्रम सामान्य से काफी नीचे गिर जाता है और पशु काफी कमजोर होकर 4-7 दिन में मर जाता है। कभी-कभी तीन सप्ताह जीवित रहता है।

उपचार—प्राय: पशु के रोगी होने पर मृत्यु हो जाती है फिर भी रोग के प्रारम्भ में चिकित्सा से लाभ होता है।

1. रोगी पशु के शरीर को टाट, कपड़ा, कम्बल ओढ़ाकर गर्म रखें तथा हल्का शीघ्र पचने वाला चारा खिलावें।

2. दस्त रोकने के लिए निम्न दवा की दो खुराक बनाकर चावल के माड़ के साथ 2-3 बार देवें।

पिसी खड़िया 60 ग्राम, सौंफ 15 ग्राम, कत्था 15 ग्राम, बेलगिरी 30 ग्राम, अफीम 2 ग्राम।

3. पशु चिकित्सक की परामर्श के अनुसार पशु को 33⅓प्रति. सल्फामेजाथीन सोडियम घोल अन्त: शिरा या अधस्त्वक इन्जेक्शन के रूप में प्रथम मात्रा 50-70 सी०सी० तथा द्वितीय मात्रा 30 सी०सी० देवें।

सल्फामेजाथीन की 5 ग्राम की 5 गोलियाँ दो बार में देने से दस्त रोकती हैं।

4. 'एण्टीरिण्डरपेस्ट सीरम' उपलब्ध होने पर गर्दन के ओर 50 सी०सी० तथा गर्दन की दूसरी ओर 33⅓ प्रति. सल्फामेजाथिन सोडियम घोल 30 सी०सी० देना लाभप्रद है।

रोकथाम—1. रोग की प्रथम सूचना निकटस्थ पशुशल्य चिकित्सक को देवें।

2. स्वस्थ, रोगी तथा रोगी से सम्पर्क में आये पशुओं को अलग-अलग झुण्ड में रखें।

3 स्वस्थ पशुओं के बकरी टिसू वेक्सीन (G. T. V.) के एक ऐम्पुल की 1 सी०सी० मात्रा 100 पशुओं के अधस्त्वक टीका लगाने से पशु में 7 वर्ष तक की रोग प्रतिरक्षा हो जाती है।

4. रोगी पशु के सम्पर्क में आये स्वस्थ देशी पशुओं के 15-20 सी०सी० पहाडी पशुओं के 10 सी०सी० सीरम की मात्रा का टीका लगाने से वे 10-15 दिन तक रोग से मुक्त रहते हैं।

5. पशुओं के सामूहिक रूप में प्रातःकाल टीका लगाना चाहिए। 5 माह की गामिन पशु के टीका न लगावें, इसके अतिरिक्त 6 माह के बच्चों में 1 सी०सी० मात्रा लगायें।

देश के विभिन्न राज्यों में 'पशु प्लेग उन्मूलन योजना' चलाई गई जिससे सामान्यतया पशु रोगमुक्त हो गये हैं फिर भी देश के सीमान्त प्रदेशों में सामूहिक टीका योजना लागू है।

खुरपका मुँह पका (Foot & Mouth Disease)

अन्य नाम—एफ्पस ज्वर, मुँह-पैर का रोग, मुखपका-खुरपका।

स्वभाव एवं प्रकृति—यह अतिशीघ्र फैलने वाला संक्रामक रोग है जो जुगाली करने वाले गाय, भैंस, भेड़-बकरी के अलावा सुअर, कुत्ते, बिल्ली आदि पशुओं में फैलता है। भारत के अलावा अन्य देशों में फैलता है।

कारण—यह छानने योग्य विषाणु (Filterable Virus) से फैलता है जिसकी तीन प्रजातियाँ 'ए', 'ओ' और 'सी' प्रमुख है।

संक्रमण—सभी सांसर्गिक रोगों में यह अधिक फैलने वाला रोग है जो पशु के मल-मूत्र, लार, चारा-पानी तथा सम्बन्धित पदार्थों से छूत फैलता है। वायु द्वारा 100 गज तक क्षेत्र मे संक्रमण होता है। पक्षी आदि भी संक्रमण फैलाते हैं।

रोग की प्रचण्डता—देश में रोग प्रारम्भ से फैलता रहा है। पश्चिमी देशों की अपेक्षा यहाँ मृत्यु दर 1-2 प्रति. अधिक है। प्रौढ़ों की अपेक्षा बच्चों की मृत्यु दर अधिक है फिर भी दुधारू पशुओं में रोग होने पर आर्थिक हानि अधिक होती है।

उद्भवन काल—2 से 10 दिन।

लक्षण—1. पशु को जाड़ा देकर 104-105° फे० या अधिक तापक्रम हो जाता है।

2. पशु खाना-पीना तथा जुगाली बन्द करके सिर नीचा किये सुस्त खड़ा रहता है।

3. पशु के मुँह से लार बहने लगती है और चप-चप की आवाज आती है।

4. पशु के मुँह के अन्दर, गालों, होंठों, तालू तथा मसूड़ों पर छाले होकर सींग की जड़ तक पहुँच जाते हैं।

5. छालों के फूटने पर ये लाल रंग के छिछले, कटे-फटे किनारेदार हो जाते हैं जिनसे लगातार लार गिरती रहती है।

6. अयन और थनों पर छाले होने से दूध की क्षमता कम हो जाती

7. पशु के खुरों तथा त्वचा के मिलान के स्थान पर छाले होने से वह लंगड़ाने लगता है जिससे पैर जमीन पर झटकता है।

8. कभी-कभी लक्षण मुँह या पैर पर दिखाई देते हैं, इससे पशु काफी दुर्बल हो जाता है।

9. अयन, थनों की अपेक्षा मुँह के छाले जल्दी ठीक हो जाते हैं तथा पशु सामान्यतया 2 सप्ताह में ठीक हो जाते हैं।

उपचार—

मुँह के छाले—मुँह के छालों को अच्छे रोगाणुनाशक जो उत्तेजक न हों, जैसे पुटेशियम परमेगनेट घोल (1:2000) या एक्रीफ्लेविन लोशन (1:5000) से धोने के बाद बोरोग्लिसरीन या एक भाग सुहागा और चार भाग शहद मिलाकर लगाने से शीघ्र लाभ होता है।

खुर के छाले—1 प्रति. तूतिया या फिनाइल या लाइसोल को कई बार प्रयोग करें। अधिक पशुओं के रोग होने पर 'पादस्नान' (Foot Bath) प्रयोग करें। खुरों के बीच के घावों पर तूतिये का मरहम लगावें।

थन के छाले—पेनिसिलीन क्रीम या बोरिक मरहम लगावें, दूध थन साइफन से निकालते रहें।

पशु को हरी घास, शीरे के साथ चावल का मांड या भूसी खाने को देवें।

रोकथाम— 1. स्थानों का निःसंक्रमण—विषाणुक्षार सुग्राही है जिससे 1 प्रति. कास्टिक सोडा या 4 प्रति. धोवन सोडा के घोल से स्थान निःसंक्रमित करें।

2. संक्रामक रोग होने से रोग एक पशु से दूसरे पशु को शीघ्र लगता है इससे प्रत्येक गांव में पक्का पादस्नान (12 फुट लम्बा, 3 फुट चौड़ा, 1 फुट गहरा तथा दोनो ओर 3-3' का ढालदार बनाकर) *1 प्रति. तूतिये के घोल मे पशुओं को* सायं निकालें।

3. देश में रोग निरोधी टीको का प्रयोग नही होता है बल्कि खुरपका मुँह-पका *वेक्सीन (Polyva ent) का प्रयोग लाभप्रद है,* इसकी निम्न मात्रा को गर्दन या गलकम्बल की त्वचा मे टीका लगाते हैं—

गाय, भैंस, बछड़े — 10 मि०ली०
भेड़-बकरी — 5 मि०ली०

(घ) परजीवी रोग (Porasitic Diseases)

किलनी ज्वर (Tic. Fever)

अन्य नाम —लाल-मूत्र रोग, चिचड़ी ज्वर, टेक्सास ज्वर।

स्वभाव एवं प्रकृति –यह 'प्रोटोजोअन' (Protozoan) छूतदार रोग है जो *गाय तथा भैंस वंशज पशुओं का विशिष्ट रोग है जिससे लाल रक्त कणिकायें टूटकर*

रक्त पतला हो जाता है और ज्वर तथा मूत्र में रक्त आने लगता है। यह तराई तथा नमी वाले क्षेत्रों में, जहाँ किलीलियों के विकसित के लिए अच्छा वातावरण मिलता है, अधिक फैलता है।

कारण—नाशपाती के समान एक रक्त प्रजीवाणु परजीवी (Blood Pro tozoan Parasite) बवेशिया बाइजेमिना।

जो किलनी द्वारा संचरित होता है, से फैलता है।

संक्रमण—किलनी, जिसमें रोग के जीवाणु होते है, के स्वस्थ पशु के शरीर पर चिपककर रक्त चूसकर इसके जीवाणु शरीर में प्रवेश करा देती है, मलेरिया रोग की भाँति।

उद्‌भवन काल—7–17 दिन।

लक्षण—रोग की दो अवस्थायें हैं—

(1) तीव्र अवस्था (Acute)—1. रोग के परजीवी पशु रक्त कणों को तोड़ते हैं।

2. पशु को अचानक 106-107° फे० तेज बुखार होता है और श्वांस तथा नाड़ी गति तीव्र हो जाती है।

3. आँखों से प्रस्राव तथा लार गिरने लगती है, जो रोग का प्रारम्भिक लक्षण है।

4. रक्त हीमोग्लोबिन टूटने से मूत्र का रंग लाल हो जाता है।

5. पशु 2 से 8 दिन में मर जाता है। इस अवस्था में 30 प्रति. मृत्यु दर है।

(2) दीर्घकालिक अवस्था (Chronic)—पशु में धीरे-धीरे रोग का प्रभाव होता है।

1. पशु को अनियमित बुखार होकर दस्त होते हैं जिससे पशु काफी दुर्बल हो जाता है।

2. मूत्र में एल्ब्यूमिन आने लगता है।

3. लाल रक्त कणिकाओं के धीरे-धीरे नष्ट होने से पशु अत्यधिक कमजोर होकर मर भी जाते हैं।

मरे पशु के शव के चीरने पर तिल्ली व जिगर बढा हुआ, मूत्राशय लाल रंग के पेशाब से भरा तथा शरीर की झिल्ली पर रक्त के धब्बे मिलते हैं।

उपचार—1. पशु की किलीनी गैमेक्सीन या डी० डी० टी० से हटावें।

2. 1% ट्राइपेन ब्ल्यू का 50-150 सी०सी० घोल अन्तः शिरा इन्जेक्शन लगावें।

3. आई० सी० आई० द्वारा निर्मित 'बेबेसन' 5 प्रति. घोल की 1 सी०सी० प्रति 250 कि०ग्राम शरीर भार पर देने से पशु निरोग हो जाते हैं।

4. गुलाबी फिटकरी तथा खाने का सोडा 15-15 ग्राम प्रातः सायं 8-10 दिन तक देना लाभप्रद है।

रोकथाम—1. डी०डी०टी० या गैमेक्सीन के प्रयोग के भलावा 1-2 प्रति० डी०डी०टी० घोल से पशु को नहलाने से किलीनी नष्ट हो जाती है।

2. 0·5 प्रति असनतोल या नेगूवान के घोल (6 ग्राम दवा और 1 लिटर पानी) से स्नान कराने से किलीनी नष्ट हो जाती है।

3. रोग ग्रसित पशु से 5-10 सी० सी० रक्त निकालकर स्वस्थ पशु में अधस्त्वक इन्जेक्शन देने से रोगप्रतिरोधिता आ जाती है। प्रारम्भ में 7-15 दिन तक यदि 104° फे० तापक्रम हो तो ट्राइपेन ब्ल्यू का इन्जेक्शन लगावें।

प्रश्न

1. पेचिश, कब्ज तथा अतिसार की बीमारियों में दी जाने वाली दवाइयों की मात्रा व देने की विधि का वर्णन करो।
2. पशुओं में 'रिण्डरपेस्ट' बीमारी के कारण, लक्षण तथा उपचार लिखो।
3. निम्न व्याधियों के उपचार मे दवा का नाम, मात्रा एवं प्रयोग विधि लिखो—
   (अ) खुजली (ब) अफरा (स) भोज्य विषाक्त।
4. पशुओं में मुँह पका, खुरपका रोग के कारण, लक्षण तथा उपचार बताइये।
5. 'कब्ज' होने के लक्षण एवं उपचार लिखिये ?
6. पशुओं में अफरा होने के लक्षण और उपचार का वर्णन कीजिये।
7. बैल के पैर में मोच आने पर उपचार करने की विधि का वर्णन कीजिए।
8. पशुओं में 'एन्थ्रेक्स' रोग के कारण लक्षण उपचार लिखिए ?
9. पशुओं में घाव के उपचार करने की विधि का वर्णन कीजिये।
10. जहरवाद तथा जहरी बुखार के रोग के लक्षणों में क्या भिन्नता है, इनके उपचारों तथा निरोधक उपायों को लिखिये ?

तृतीय–खण्ड

दुग्ध विज्ञान
(DAIRYING)

(1) दूध और दूध का संगठन
(2) शुद्ध दूध उत्पादन
(3) डेरी-बर्तनों की सफाई एवं जीवाणु हनन
(4) दूध से बनने वाले पदार्थ—
    (i) क्रीम (ii) दही (iii) घी
(5) दूध की जांच– आ० घ०, वसा, अम्लता एवं कलकन परीक्षण
(6) डेरीफार्म पर रखे जाने वाले अभिलेख

पाये जाते हैं, इसे 'एम्फोटेरिक रिएक्शन' कहते हैं परन्तु दूध का पी० एच० मान साधारणतया 6·6-6·8 के मध्य रहता है।

(v) सूक्ष्मदर्शी यन्त्र से देखने पर दूध में वसा सूक्ष्म गोलिकाओं में फैली दिखाई देती है। दूध को रखने या गर्म करने पर ऊपर पर्त के रूप में इकट्ठी हो जाती है, इसे मलाई या क्रीम कहते हैं।

(vi) दूध में कई प्रकार के जीवाणु पाये जाते हैं जो दूध के उबालने पर नष्ट हो जाते हैं, यह जीवाणु रहित दूध काफी समय तक रखा जा सकता है।

(ब) रासायनिक विशेषतायें —

दूध का संगठन—

पानी	—87·25 प्रतिशत
अन्य ठोस पदार्थ	—12·75 प्रतिशत
वसा	— 3·75 प्रतिशत
प्रोटीन	— 3·20 प्रतिशत
लैक्टोज	— 4·70 प्रतिशत
राख	— 0·75 प्रतिशत
अन्य यौगिक	— 0·35 प्रतिशत

(1) पानी—दूध में सबसे अधिक पानी की मात्रा होती है जो 82-92 प्रतिशत तक होती है। पानी मे दूध के सभी अवयव किसी न किसी रूप में घुले होते हैं। दूध में पानी की मात्रा पशु की जाति, दिए जाने वाले हरे चारे पर निर्भर करती है, क्योंकि हरे चारे में पानी की मात्रा अधिक होती है, इसको गर्म करने पर पानी वाष्पीकृत हो जाता है।

(2) वसा—यह दूध का सबसे अमूल्य तत्व है जिसकी मात्रा 2·3-7·8 प्रतिशत होती है। ये दूध मे छोटे-छोटे गोलिकाओं के रूप में फैले होते हैं जो सूक्ष्मदर्शी यन्त्र से देखे जा सकते हैं। वसा वसाम्लों का मिश्रित ग्लिसराइल ईस्टर का रूप है जिसको दूध में से कई विधियों से अलग निकाला जा सकता है और इससे कई प्रकार के पदार्थ क्रीम, मक्खन, घी आदि बनाये जाते हैं। वसा की मात्रा पशु की जाति, दुग्धकाल की अवधि और आहार पर निर्भर करती है।

(3) प्रोटीन—यह दूध में 2·4-5 प्रति. मिलता है। मुख्य रूप से दूध में तीन प्रकार की प्रोटीन—केसीन, एल्ब्यूमिन, ग्लोबुलिन मिलती है। इसमें केसीन की मात्रा 80 प्रति. होती है यह फास्फोरसयुक्त प्रोटीन है ताजे दूध में चूने के लवणों के साथ मिलता है। इसी के कारण दूध का रंग सफेद होता है। गाय

अध्याय 23

दूध (Milk)

वैज्ञानिकों ने दूध को कई प्रकार से परिभाषित किया है—

1. 'दूध एक तरल है जो कई एक अवयवों से मिलकर बनता है, इसका रंग सफेद होता है।'

2. 'दुग्ध ग्रन्थियों का वह सफेद क्षरण है जो गाय या भैंस को पूर्ण दुहने पर मिलता है।

3. डेविस के अनुसार—'Milk is defined as characteristic secrection of the mammery glands intended forimmediate nutrition of newly born off springs'. अर्थात्

दूध वह क्षरण पदार्थ है जो स्तनो से नवजात शिशु के पैदा होने के तुरन्त बाद उसके पोषण के लिए प्राप्त होता है।

4. रसायनिक परिभाषा के अनुसार, 'दूध एक विषम पदार्थ है जिसमे वसा, प्रोटीन, शर्करा, खनिज तथा दूसरे अवयव या तो घोल के रूप मे या कोलाइडल या सस्पेंशन या इमल्शन के रूप में सतत तरल अवस्था पानी मे पाये जाते हैं।

दूध की अनेक परिभाषाएँ अनेक प्रकार से पृथक रूप मे की गई हैं जिनसे दूध की निम्न विशेषताओं के बारे में जानकारी मिलती है—

(अ) भौतिक विशेषतायें—

(i) दूध देखने पर साधारणतया सफेद रंग मे दिखाई देता है परन्तु गाय के दूध का रंग हल्का पीलापन लिए होता है जो 'कैरोटिन' नामक पिगमेण्ट के कारण होता है, यह चारे से आता है।

(ii) दूध को सूंघने पर उसमे हल्की भीनी सुगन्ध आती है परन्तु रखने पर इसमें खटास पैदा हो जाती है।

(iii) चखने पर यह हल्का मीठापन लिए होता है।

(iv) लिटमस से जाँच करने पर नीला लिटमस लाल तथा लाल लिटमस नीला हो जाता है, इससे दूध में अम्लीय एवं क्षारीय दोनो गुण

पाये जाते हैं, इसे 'एम्फोटेरिक रिएक्शन' कहते हैं परन्तु दूध का पी० एच० मान साधारणतया 6·6-6·8 के मध्य रहता है।

(v) सूक्ष्मदर्शी यन्त्र से देखने पर दूध में वसा सूक्ष्म गोलिकाओं में फैली दिखाई देती है। दूध को रखने या गर्म करने पर ऊपर पर्त के रूप में इकट्ठी हो जाती है, इसे मलाई या क्रीम कहते हैं।

(vi) दूध में कई प्रकार के जीवाणु पाये जाते हैं जो दूध के उबालने पर नष्ट हो जाते हैं, यह जीवाणु रहित दूध काफी समय तक रखा जा सकता है।

(ब) रासायनिक विशेषतायें —

दूध का संगठन—

पानी	—87·25 प्रतिशत
अन्य ठोस पदार्थ	—12·75 प्रतिशत
वसा	— 3·75 प्रतिशत
प्रोटीन	— 3·20 प्रतिशत
लैक्टोज	— 4·70 प्रतिशत
राख	— 0·75 प्रतिशत
अन्य यौगिक	— 0·35 प्रतिशत

(1) पानी—दूध में सबसे अधिक पानी की मात्रा होती है जो 82-92 प्रतिशत तक होती है। पानी में दूध के सभी अवयव किसी न किसी रूप में घुले होते हैं। दूध में पानी की मात्रा पशु की जाति, दिए जाने वाले हरे चारे पर निर्भर करती है, क्योंकि हरे चारे में पानी की मात्रा अधिक होती है, इसको गर्म करने पर पानी वाष्पीकृत हो जाता है।

(2) वसा—यह दूध का सबसे अमूल्य तत्व है जिसकी मात्रा 2·3-7·8 प्रतिशत होती है। ये दूध में छोटे-छोटे गोलिकाओं के रूप में फैले होते हैं जो सूक्ष्मदर्शी यन्त्र से देखे जा सकते हैं। वसा वसाम्लों का मिश्रित ग्लिसराइल ईस्टर का रूप है जिसको दूध में से कई विधियों से अलग निकाला जा सकता है और इससे कई प्रकार के पदार्थ क्रीम, मक्खन, घी आदि बनाये जाते हैं। वसा की मात्रा पशु की जाति, दुग्धकाल की अवधि और आहार पर निर्भर करती है।

(3) प्रोटीन—यह दूध में 2-4·5 प्रति. मिलता है। मुख्य रूप से दूध में तीन प्रकार की प्रोटीन—केसीन, एल्ब्यूमिन, ग्लोबुलिन मिलती हैं। इसमें केसीन की मात्रा 80 प्रति. होती है यह फास्फोरसयुक्त प्रोटीन है ताजे दूध में चूने के लवणों के साथ मिलता है। इसी के कारण दूध का रंग सफेद होता है। गाय

के दूध में केसीन 2·5 प्रति., भैंस के दूध में 3 प्रति. होता है जिसके कारण भैंस के दूध का दही अच्छा बनता है। एल्व्यूमिन कुल नाइट्रोजन का 10 प्रति. होता है जो अण्डे की सफेदी की भांति होता है।

(4) लैक्टोज यह दूध में मिलने वाली शर्करा है जो 3·5-6 प्रतिशत होती है। लैक्टोज जीवाणुओं की क्रिया के द्वारा लैक्टिक अम्ल मे बदल जाता है जिसके कारण दूध खट्टा हो जाता है। इसका उपयोग दही तथा मक्खन बनाने मे होता है। पनीर (Cheese) बनाते समय दूध के पानी में बचा जाता है।

(5) खनिज तत्त्व—दूध को सुखाने पर यदि उसे जलाया जाये तो इसे राख कहते हैं, इसमें कई प्रकार के खनिज तत्त्व होते हैं जिनमें कैल्शियम, फास्फोरस गंधक, क्लोरीन अधिक मात्रा मे तथा लोहा, ताबा, जस्ता, अल्यूमीनियम, मैग्नीशियम कम मात्रा में होते हैं। इनका प्रतिशत 6 से ·9 है। शारीरिक अगों की वृद्धिमें सहायक होने से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

इन तत्त्वों के अलावा दूध में बहुत ही सूक्ष्म मात्रा मे विटामिन्स, एन्जाइम्स, पिगमेण्ट्स अन्य कोशिकाएँ आदि मिलती है जो शारीरिक वृद्धि तथा रोगों से बचाव करते हैं।

दूध की मात्रा, संगठन और गुणों को प्रभावित करने वाले कारक
(Factors effecting the Quantity, Composition and Quality of Milk)

क्र० सं०	जाति	पानी प्रतिशत	वसा प्रतिशत	प्रोटीन प्रतिशत	लैक्टोज प्रतिशत	खनिजतत्व प्रतिशत
1	गाय	87 34	3·75	3·40	4 70	0·75
2	भैंस	82 90	7 50	4·10	4·70	0 80
3	बकरी	85·58	4·93	4·11	4 78	0·89
4	भेड़	78·73	8·52	6 24	5 08	1 06
5	औरत	88·50	3·30	1·30	6·80	0·20

(1) पशु की जाति—जैसा सारिणी से प्रकट है कि विभिन्न वर्ग के पशुओं के दूध में पाये जाने वाले तत्त्वों में मिलता है जिसके कारण उनका गुण एवं पौष्टिकता अलग होती है। इनकी मात्रा में भी काफी अन्तर होता है।

(2) पशु का व्यक्तित्व – वैज्ञानिकों ने विभिन्न प्रयोगों एवं अनुभवों से यह निष्कर्ष निकाला है कि एक ही जाति के सम आयु वाले बच्चों की जिनका पालन-पोषण तथा सभी प्रबन्ध क्रियाएँ एक सी की गई हैं तो भी उनके दूध की मात्रा तथा गुणों में अन्तर पाया गया यह उनके स्वयं के जन्मजात गुणों के कारण है।

(3) पशु की दशा—स्वस्थ पशु से पर्याप्त मात्रा में अच्छा दूध मिलता है। पशु के अस्वस्थ होने पर वह दूध कम मात्रा में देता है और तत्वों पर भी प्रभाव पड़ता है।

(4) पशु की आयु— युवा पशु के दूध मे तत्त्वों की मात्रा अधिक होती है तथा दूध भी अधिक मात्रा मे मिलता है। पशु की आयु बढ़ने के साथ उसके आहार का अधिकांश भाग एवं शक्ति शरीर निर्वाह में काम आ जाती है जिससे उत्पादन कम हो जाता है।

(5) पशु का आहार—यह निर्विवाद सत्य है कि पशु को अच्छा एवं संतुलित आहार देने पर अधिक और सम्पूर्ण मात्रा में दूध मिलता है जब कि खराब और घटिया किस्म का आहार देने पर दूध की मात्रा कम हो जाती है और वसा की मात्रा कम हो जाती है। हरे चारे और हरी घासें खिलाने से वसा की मात्रा कम हो जाती है तथा वसारहित तत्वों की मात्रा बढ़ जाती है।

(6) ऋतु – वर्षा में दूध की मात्रा अधिक तथा जून के माह में दूध की मात्रा सबसे कम हो जाती है, जबकि सर्दी (नवम्बर) मे अच्छी मात्रा मे दूध मिलता है।

(7) तापमान—अत्यधिक ऊँचा तथा न्यूनतम तापक्रम दूध की मात्रा को प्रभावित करता है परन्तु संगठन पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है।

(8) ब्यांत की संख्या—प्रथम बार ब्याई गाय से दूध निकालने में परेशानी होती है और कम मात्रा में दूध मिलता है। ब्यांत की संख्या बढ़ने पर दूध की मात्रा बढ़ जाती है। तीसरे ब्यात की गाय अच्छी रहती है।

(9) दुग्ध काल—बच्चा देने के तुरन्त प्राप्त दूध सामान्य दूध से भिन्न होता है जो गर्म करने पर फट जाता है तथा दस्तावर होता है, इसे खीस कहते है। सामान्य दूध की अपेक्षा इसमें सभी तत्त्व अधिक मात्रा मे पाये जाते हैं। खीस से सामान्य दूध की ओर बढ़ने पर इन सभी तत्वों की मात्रा धीरे-धीरे कम हो जाती है परन्तु दूध अच्छा और अधिक मात्रा में मिलता है। हाल की ब्याई गाय के दूध में वसा की मात्रा कम होती है, परन्तु दूध सूखने के समय वसा की मात्रा अधिक और स्वाद खारा हो जाता है क्योंकि इसमे अपेक्षाकृत दुग्ध शर्करा कम हो जाती है और क्लोराइड की मात्रा बढ जाती है।

(10) दूध दुहने का समय—प्रातः और सायंकाल के दूध में अन्तर पाया जाता है सायं को दूध कम परन्तु वसा की मात्रा भी कम मिलती है।

(11) दूध निकालते समय पशु से व्यवहार—दूध निकालते समय पशु से अच्छा व्यवहार न करने या अजनबी व्यक्ति के आने आदि का दूध की मात्रा तथा वसा दोनों पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(12) दूध का भाग—पशु के दूध निकालते समय प्रथम बार में वसा की मात्रा कम होती है। जबकि मध्य एवं अन्त की धारों में वसा की मात्रा अधिक होती है।

प्रश्न

1. 'दूध' से क्या अभिप्राय है ? दूध के गुणों को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों का वर्णन कीजिए।
2. दूध में पाये जाने वाले विभिन्न तत्वों को बताते हुए इनकी उपयोगिता बताइये ?
3. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखो—
   (अ) दुग्ध शर्करा।
   (ब) गाय के दूध का पीला रंग होना।

अध्याय–24

स्वच्छ दूध उत्पादन
(Clean Milk Production)

दूध मानव के लिये एक पूर्ण आदर्श आहार है इसमें वे सभी खाद्य तत्व पाये जाते हैं जो मानव शरीर के लिये आवश्यक हैं। दूध जीवाणुओं की वृद्धि के लिए उपयुक्त माध्यम है जिसमे वे शीघ्र ही वृद्धि करते उसे खराबकर देते हैं जिससे वह गर्म करने पर फट जाता है। ये जीवाणु कई प्रकार के होते हैं जिनमें कुछ शरीर के अन्दर पहुँचकर बीमारियाँ जैसे हैजा, यक्ष्मा पैदा करते हैं। कुछ बाहरी गन्दगी जैसे गोबर, धूल, भूसा आदि गिरकर गन्दा कर देते हैं। अतः आवश्यक है कि किस प्रकार स्वच्छ दूध प्राप्त किया जा सके।

स्वच्छ एवं शुद्ध दूध –वह दूध जो स्वच्छ वातावरण में स्वस्थ पशु से स्वच्छ तरीकों से प्राप्त किया गया हो जिसमें गन्दगी एवं जीवाणु कम से कम हों; स्वच्छ एवं शुद्ध दूध कहलाता है।

स्वच्छ दूध उत्पादन की उपयोगिता—इस प्रकार के दूध की उपयोगिता को दो भागों में बाटते हैं—

(अ) उत्पादकों के लिए–दूध उत्पादक निम्न कारणों से स्वच्छ दूध उत्पादन करना चाहते हैं—

(i) उत्पादक को स्वच्छ दूध से वर्ष भर अच्छे पैसे मिलते हे जिससे उसका व्यवसाय उसे अच्छा लाभ देता है।

(ii) अति उत्पादन काल (Peak Season) मे दूध अधिक आता है इस समय वही दूध बाजार में बिकता है जो स्वच्छ तथा शुद्ध है, शेष कम दामों पर बिकता है या बिकता ही नही है।

(iii) अच्छा एवं शुद्ध दूध लाने पर उत्पादक की साख बन जाते हैं जिसका उसके व्यवसाय पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

(iv) स्वच्छ दूध से अच्छे पर्याप्त मात्रा में पदार्थ बनता है जिससे अधिक लाभ मिलता है।

(v) इस दूध को काफी अधिक देर तक रखकर बेचा जा सकता है।

(vi) स्वच्छ दूध को उपयोग लाने वाले व्यक्तियों का स्वास्थ्य अच्छा रहता है साथ ही पशु तथा उसके बछड़े-बछिया स्वच्छ रहते हैं।

(व) उपभोक्ताओं के लिये—दूध तथा दूध से बने पदार्थों को उपयोग करने वाले व्यक्ति निम्न कारणों से स्वच्छ एवं शुद्ध दूध पसन्द करते हैं—

(i) स्वच्छ दूध में दूध को खराब करने वाले जीवाणु कम मात्रा में होते हैं जिससे इसे काफी समय तक सुरक्षित रखकर उपयोग में ला सकते हैं।

(ii) स्वच्छ दूध में तत्वों की अच्छी मात्रा में होने से यह स्वादिष्ट तथा अच्छा होता है। इससे बनाये जाने वाले पदार्थ भी पर्याप्त मात्रा में बनते हैं।

(iii) स्वच्छ दूध में रोग पैदा करने वाले जीवाणु कम होते हैं जिससे उपभोक्ता स्वस्थ एवं नीरोग रहते हैं।

दूध को अशुद्ध एवं अस्वच्छ करने वाले कारक—दूध को अशुद्ध करने वाले जीवाणु एवं गन्दगी कई माध्यमों से पहुँचती है ये माध्यम निम्न हैं—

(1) पशु के शरीर के अन्दर से आने वाली गन्दगी—दूध बनकर अयन में इकट्ठा होता है जो इसमें कोई जीवाणु या गन्दगी नही होती है। थनों से दूध बाहर आने वाली नली (Tear Canal) में वायुमण्डल से जीवाणु प्रवेश कर वृद्धि करने लगते हैं। दूध दुहने पर ये दूध के साथ बाल्टी में आकर इसे गन्दा कर देते हैं। बीमार एवं अस्वस्थ पशु के दूध में तत्वो की मात्रा सामान्य दूध से काफी भिन्न होती है। कुछ बीमारियाँ जैसे थनैला, यक्ष्मा के जीवाणु शरीर से दूध में आ जाते हैं।

पशु के शरीर के बाहर से आने वाली गन्दगी—अधिकांश गन्दगियाँ दूध मे बाहर से आती है जो दूध को अस्वच्छ बना देती हैं, ये निम्न हैं—

(i) पशु शाला का वातावरण—पशुशाला की अच्छी तरह सफाई न करने पर गन्दी रहती है जो जीवाणुओं की वृद्धि में सहायक होते हैं। दूध दुहने से थोड़े समय पूर्व की गई सफाई से धूल आदि के कण वायुमण्डल में फैल जाते हैं जो दूध की बाल्टी में गिरकर उसे गन्दा कर देते हैं।

(ii) पशुओं द्वारा—दूध आने वाले पशु के शरीर से लगा गोबर, मिट्टी, कीचड़ आदि साफ न करने से वह दूध में *आसानी से गिर सकता है।* जुएँ, किलीली या अन्य परजीव दूध में गिरकर उसे गन्दा कर देते हैं।

(iii) बर्तनों द्वारा—दूध दुहने और वितरण मे काम आनेवाले बर्तनों को अच्छी तरह से साफ न करने से उनके जोड़ों में लगा हुआ दूध, मिट्टी, राख आदि दूध को गन्दा कर देते हैं।

(iv) ग्वाले द्वारा—ग्वाले के गन्दे रहने, गन्दे [illegible] बाल, [illegible]दी आदतें-खुजलाना, छींकना आदि दूध को आसान[illegible] ते

(४) प्रयुक्त पानी—पशु के अयन, थन, बर्तनों आदि को साफ करने वाले पानी के गन्दे होने पर वह दूध को अशुद्ध कर देता है।

स्वच्छ एवं शुद्ध दूध प्राप्त करना—

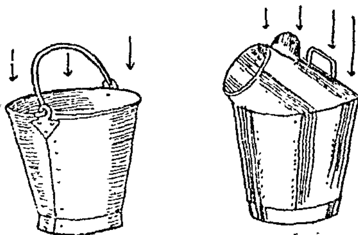
1. पशु शाला की सफाई—पशु के बांधने का स्थान और दुग्धशाला की सफाई प्रतिदिन करना अत्यन्त आवश्यक है। यहां पर गन्दगी, महकदार चीजों को हटा देना चाहिए। पक्के फर्श को अच्छी तरह रगड़कर पानी से फिनाइल के घोल से साफ कर देना चाहिए। कच्ची पशुशाला में अच्छी तरह से झाड़ू लगाकर पानी छिड़ककर सफाई कर देनी चाहिए।

   सफाई का कार्य पशु के चरागाह में जाने के समय या दूध निकालने के दो घण्टे पूर्व या बाद में करनी चाहिए जिससे दूध निकालने के समय तक गर्द, धूल बैठ जाये।

2. स्वस्थ पशु—स्वच्छ दूध प्राप्त करने के लिये पशु किसी भी रोग से पीड़ित नहीं होना चाहिए क्योंकि कुछ बीमारियाँ दूध के द्वारा मनुष्यों मे पहुँचती हैं। बीमार पशु का दूध अलग निकालकर अन्य दूध में नही मिलाना चाहिए तथा उपयोग में नहीं लाना चाहिए।

3. पशु की सफाई—दूध निकालने से काफी समय पूर्व पशुशाला से बाहर पशु के खुरहरा करके नहलाना अच्छा रहता है। पशु के अयन, थन, पूंछ, पुट्ठे आदि को अच्छी तरह से साफ करके धोकर सुखा देना चाहिए, इसके बाद पशु को दुग्धशाला में ले जाकर दूध निकालना चाहिए।

4. प्रयोग में आने वाले बर्तन—दूध दुहने में खुले मुँह तथा बन्द मुँह के बर्तन काम मे लाते हैं परन्तु छोटे मुँह वाले सादा, जोड़ रहित स्टेन लैस स्टील



के बर्तन अच्छे रहते हैं। इनको दूध दुहने और वितरण के तुरन्त बाद अच्छी तरह सफाई और जीवाणु रहित करके ऊँचे साफ स्थान में रख देना चाहिए

5. प्रयोग में आने वाला पानी—पशु और बर्तनों की सफाई में काम आने वाल पानी साफ होना चाहिए। पशु को साफ, ताजा पानी पिलाना चाहिए नल या कुए का पानी अच्छा रहता है।

6. ग्वाले का चुनाव—दूध निकालने वाला व्यक्ति स्वस्थ, साफ-सुथरा तथा अच्छे आदतो वाला होना चाहिए। उसके कपड़े साफ हो। वह गन्धयुक्त वस्तुएं प्रयोग नहीं करें क्योंकि इनकी गन्ध दूध में आ जाती है। उसके नाखून, बाल आदि कटे हुए होने चाहिए तथा भड़कीले कपडे नही पहने हो अन्यथा पशु के भड़कने का भय रहता है जिससे वह दूध कम या बिल्कुल नहीं देगा।

7. दोहन विधि—दूध निकालने से पहिले दूध की प्रथम दो-तीन धारें जमीन पर गिरा देना चाहिए। थनो को गीला करने के लिए दूध बाल्टी से नही लेना चाहिए। दूध निकालने की पूर्णहस्त दोहन विधि सर्वोत्तम है।

8. दूध रखने का ढंग—दूध निकालने के बाद उसको तौलकर, छानकर स्वच्छ बर्तनों में भरकर ठण्डे स्थान में रख देते है। गाँवों से दूध को इक्ट्ठा करके दध को प्रशीतन करके बड़ी डेरियो में भेजते हैं वहां इसको पाश्चुरीकरण एव ठण्डा करके वितरण के लिए भेज देते हैं।

9. चारा—पशु को दुग्धशाला में चारा न खिलाये तो उत्तम है। पशुशाला (गोशाला) और दुग्धशाला अलग-अलग न हों तो पशु को दूध दुहने से 2 घण्टे पूर्व चारा खिलाना चाहिए। गन्धयुक्त चारा (प्याज, लहसुन, मेंथी) पशु को दुहने के बाद खिलाना चाहिए।

स्वच्छ एवं शुद्ध दूध शुद्ध स्थान में स्वच्छ एवं स्वस्थ पशु से स्वच्छ एवं स्वस्थ ग्वाले से दूध निकाला जाये और दूध के सम्पर्क वाली सभी वस्तुएँ पूर्णतया स्वच्छ होना चाहिए, इस प्रकार स्वच्छ एवं शुद्ध दूध प्राप्त किया जा सकता है।

प्रश्न

1. स्वच्छ दूध किसे कहते हैं? इसके उत्पादन के लिए क्या-क्या सावधानियाँ बरतनी चाहिए।
2. दूध किन-किन अवस्थाओं में अस्वच्छ हो जाता है? उत्पादक एवं उपभोक्ता को इससे क्या हानि है? वर्णन करिये?
3. निम्न का स्वच्छ दूध पर क्या प्रभाव पड़ता है—
   (अ) दूध रखने का ढंग।
   (ब) प्रयोग में आने वाले पात्र एवं पानी।

अध्याय–25

डेरी के बर्तनों की सफाई एवं जीवाणुहनन

(Cleaning and Sterilization of Dairy Utensils)

डेरी उद्योग में बर्तनों की सफाई का विशेष महत्त्व है क्योंकि दूध दुहने से लेकर उपभोक्ताओं तक पहुँचाने, संग्रह करने एवं उपयोग में लाने तक कई प्रकार के बर्तनों को काम में लाया जाता है। इन बर्तनों की अच्छी तरह से सफाई न होने से ये दूध को अस्वच्छ बना देते है और इनसे पदार्थ भी अच्छे नही बनते हैं। अतः दूध को उपयोग में लाने के तुरन्त बाद इनकी सफाई अत्यन्त आवश्यक है।

विधियाँ—बर्तनों को साफ करने की कई विधियां काम में आती हैं परन्तु साधारण तौर पर निम्न विधियाँ उपयुक्त हैं—

(1) सूखी विधि–बारीक रेत, मिट्टी, राख से बर्तनों को अच्छी तरह से रगड़कर साफ करके इनको कपड़े से पोंछ दिया जाता है। यह विधि कम पानी वाले क्षेत्रों में काम आती है तथा इसे सूखी मल भी कहते हैं।

(2) गीली विधि—बर्तनों को प्रयोग में आने के बाद पानी से गीला करके मिट्टी, राख को मूँज या नारियल के रेशे की सहायता से बर्तनों को रगड़ते हैं। अधिक गन्दे बर्तनो को गर्म पानी या ठण्डे पानी में कुछ समय तक पड़े रहने पर साफ किया जाता है। बर्तनों को पर्याप्त साफ पानी से धोने के बाद इनको गर्म पानी से साफ करने से ये जीवाणु तथा चिकनाई रहित हो जाते हैं।

जोड़ वाले बर्तनो के होने पर मिट्टी, राख एवं दूध इनके जोड़ो पर लगा रहता है और वह दूध को गन्दा कर देते हैं।

(3) रसायनों के प्रयोग द्वारा - बर्तनों की सफाई के लिये गर्म पानी करके थोड़ा आवश्यकतानुसार धोवन सोड़ा, विम या इसी प्रकार का कोई वाशिंग पाउडर डाल लेते है, ब्रुश की सहायता से बर्तन अच्छी तरह रगड़ते हैं परन्तु जोड़ों पर विशेष ध्यान देते है फिर पर्याप्त पानी से बर्तनों को धोकर साफ करके किसी ऊँचे साफ स्थान या स्टैण्ड पर उल्टा रख देते हैं जिससे पानी निचुड़कर ये सूख जावे।

जीवाणुहनन—

(1) धूप में रखना—बर्तनो को अच्छी तरह से साफ करके इनको धूप में मेज या स्टैण्ड पर रख देना चाहिए जिससे सूर्य की किरणों से छोटे-छोटे जीवाणु नष्ट हो जाते हैं।

(2) गर्म पानी द्वारा—बर्तनों को प्रयोग में माने के बाद दोनों बार सफाई करने के बाद स्टेरिलाइजर में खोलते पानी में कम से कम 15 मिनट तक रखना चाहिए, भाप में इनको दो मिनट तक रखने पर जीवाणु रहित किये जाते हैं। 180°F के गर्म पानी में 15 मिनट तथा 212°F के गर्म पानी में 5 मिनट तक बर्तनों को डालकर जीवाणु रहित किया जाता है।

(3) रसायनों द्वारा—बर्तनों को साफ करने के बाद क्लोरीन, पुटेशियम परमैंगनेट सोडियम हाइपोक्लोराइड के घोल से जीवाणु रहित किया जाता है।

बर्तनों को धोने के बाद धूप में सुखाना भ्रच्छा रहता है, किसी भी दशा में सुखाने के लिये कपड़े का प्रयोग नहीं करना चाहिए तथा बर्तनों को काम में लेने से पूर्व हाथों को भ्रच्छी तरह से साफ करके सुखा लेना चाहिए।

प्रश्न

1. दुग्धशाला में बर्तनों की सफाई का क्या महत्त्व है ? दुग्धशाला में काम भ्राने वाले विभिन्न बर्तनों की सफाई की विधियों का वर्णन करो ?
2. दुग्धशाला मे बर्तनों की सफाई एवं जीवाणुहनन का उद्योग मे महत्त्व लिखिये ?
3. दुग्धशाला में बर्तनों की सफाई का क्या महत्व है ? बर्तनों की सफाई करने की विधियों को संक्षेप में वर्णन कीजिए ?

अध्याय–26

दूध से बनने वाले पदार्थ

(Milk Products)

दूध प्रत्येक के लिये आवश्यक पूर्ण आहार है, इसकी खाद्य महत्ता अधिक होने से यह शिशु, युवा, प्रौढ़, स्वस्थ, रोगी सभी आयु एवं जाति के लिये लाभदायक है, क्योंकि इसमें शरीर के विकास के लिये सभी आवश्यक तत्व पाये जाते हैं।

अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा देश में प्रति व्यक्ति इसकी खपत काफी कम है। यह तरल अवस्था में ही उपयोग नहीं लाता है बल्कि दिन-प्रतिदिन प्रत्येक स्तर पर अनेकों रूपों में उपयोग में लाते हैं।

दूध से कई प्रकार के पदार्थ बनाये जाते हैं, जिनका निर्माण आदिकाल से किया जाता रहा है। दूध से पदार्थों के बनाने के प्राचीन अवैज्ञानिक तरीके काम में लाता है जिनसे पूरा लाभ नहीं मिलता है। इन तरीकों में सुधारक के पर्याप्त और अच्छी मात्रा में पदार्थ प्राप्त किये जा सकते हैं।

दूध से बनाये जाने वाले पदार्थ —

क्रीम, मक्खन, दही, घी, पनीर, खोआ या मावा, दुग्ध चूर्ण, आइसक्रीम, कन्डेन्सड मिल्क।

क्रीम (Cream)—

शहरी क्षेत्र के डेरी उद्योगों में क्रीम में प्रमुख स्थान है। क्रीम का उपयोग कई रूपों में किया जाता है। इसका मक्खन, घी, आइसक्रीम, बेकरी तथा दूध के साथ कई रूपों में उपयोग होता है। क्रीम निकलने से सेपरेटा दूध की भी काफी खपत होती है जो बच्चों, रोगी व्यक्तियों तथा पशुओं के लिये काफी लाभप्रद रहता है।

क्रीम—दूध का वह भाग जिसमे दुग्ध वसा अधिक मात्रा में रहती है। वसा कम से कम 18% तथा 2% से अधिक अम्ल पैदा करने वाले पदार्थ नहीं हो।

क्रीम एक गाढ़ा दूध है जिसमें वसा की मात्रा 18 से 60 प्रतिशत तक होती है।

दूध को कुछ समय तक रखने पर वसा वाला भाग ऊपरी सतह पर आ जाता है। यह वसा वाला भाग अपकेन्द्रीय बल (Centrifasal force) से भी अलग किया जा सकता है।

क्रीम का वर्गीकरण—क्रीम को दुग्धवसा की मात्रा के आधार पर निम्न तीन प्रकार से वर्गीकृत करते हैं—

(1) लघु या हल्की क्रीम (Light Cream)—कम से कम दुग्ध वसा 18%
(2) मध्यम क्रीम (Medium Cream)—कम से कम 36%. दुग्ध वसा।
(3) गुरु या भारी क्रीम (Heavy Cream)—कम से कम 55%. दुग्ध वसा।

क्रीम का संगठन

क्रमांक	क्रीम	वसा %	प्रोटीन %	शर्करा %	राख %	पानी %
1	हल्की क्रीम	19·00	2·94	4·05	0·60	63·41
2	मध्यम क्रीम	36·00	2·20	3·15	0·46	58·18
3	भारी क्रीम	58·77	1·83	1·46	0·32	36·62

क्रीम पृथक्करण का सिद्धान्त—क्रीम निकालने की प्रक्रिया में दूध को दो भागों मे बांटा जाता है। प्रथम ऊपर वाला भाग जिसमें वसा की मात्रा अधिक तथा घनत्व कम होता है। दूसरा नीचे वाला भाग जिसमे वसा की मात्रा कम तथा घनत्व अधिक होता है, इसे मक्खनिया दूध कहते हैं। इस प्रकार विभिन्न विधियों से दूध से वसा और मक्खनिया दूध को दो अलग पर्तों में अलग करना, क्रीम पृथक्करण कहलाता है।

क्रीम पृथक्करण की विधियाँ—क्रीम को पृथक करने की दो विधियां हैं—

(अ) गुरुत्व विधि
(ब) अपकेन्द्रीय विधि

(अ) गुरुत्व विधि (Gravity Methods)—इस विधि में दूध को ठण्डी जगह मे उस समय तक रखते हैं जब तक वसा की अधिकतम मात्रा ऊपर पर्त के रूप में एकत्रित न हो जावें। गुरुत्व विधि मे केवल उर्ध्व (Vertical) धरातल में कार्य करता है।

इस विधि मे क्रीम निकालने में यह सिद्धान्त कार्य करता है कि जब दो विभिन्न घनत्व वाली वस्तुएं मिलाकर रखी जाती हैं तो ये भिन्न भिन्न घनत्व होने के कारण अलग हो जाता है। कम घनत्व वाला पदार्थ हल्का होने के कारण ऊपरी ओर तथा अधिक घनत्व वाला पदार्थ भारी होने के कारण नीचे रह जाता है।

60°F तापक्रम पर दूध का घनत्व 1·032 होता है और इसी तापक्रम पर दुग्ध वसा का घनत्व 0·93 तथा मक्खनिया दूध का घनत्व 1·037 होता है। जब दूध को इसी तापक्रम पर रखा जाता है तो वसा और मक्खनिया दूध पर इनके घनत्व के अनुपात में गुरुत्व बल पड़ता है। मक्खनिया दूध का घनत्व अधिक होने से गुरुत्व बल अधिक होता है जिससे यह अधिक तेजी से नीचे की ओर जाता है। इस प्रक्रिया में वसा कम घनत्व के कारण ऊपर रह जाती है या नीचे से ऊपर की ओर फेंक दी जाती है जो क्रीम पर्त के रूप में दिखाई देती है जिसे इकट्ठा कर लेते हैं।

विधियां—प्राचीन काल में दूध से क्रीम अलग करने की मशीन नहीं थी जिससे क्रीम गुरुत्व विधि द्वारा ही प्राप्त की जाती हैं। इसकी निम्न तीन विधियाँ हैं—

(1) उथली कढ़ाई विधि

(2) गहरी कढ़ाई विधि

(3) दूध मे पानी मिलाकर क्रीम पृथक्करण

(1) उथली कढ़ाई विधि (Shallow Pan Method)—इसमें कम गहरे परन्तु अधिक व्यास वाले बर्तन काम में लाये जाते हैं। इन बर्तनों की गहराई 15 20 से.मी. होती है। इनमें दूध भरकर 36 घण्टे के लिये ठण्डे स्थान पर रख देते हैं। क्रीम को चम्मच या स्कीमर की सहायता से सावधानी से इकट्ठा कर लेते हैं, बचे दूध में ·5 से ·6 प्रतिशत वसा रह जाती है।

दोष—(i) समय अधिक लगता है।

(ii) पूरी मात्रा में वसा अलग नहीं हो पाती हैं।

(iii) बर्तनों का व्यास अधिक होने से जीवाणु अधिक प्रभाव डालते हैं जिससे मक्खनियां दूध को उपयोग में नहीं ला पाते हैं।

(2) गहरी कढ़ाई विधि (Deep Pan Method)—इसमें कम व्यास परन्तु अधिक गहराई वाले बर्तन काम में लाये जाते हैं। बर्तनों की गहराई 40-50 से.मी. होती है। दूध को 98–100°F ताप पर गर्म करते हैं जिससे वसा कण दूध में फैल जाते हैं। दूध को बर्तनों में भरकर 36-48 घण्टों के लिय रखते हैं और बाद में क्रीम को इकट्ठा कर लेते हैं। मक्खनिया दूध में ·2–·5 प्रतिशत वसा रह जाती है।

दोष—(i) बर्तन गहरे होने से अधिक मंहगे होते हैं।

(ii) क्रीम प्राप्त करने मे अधिक समय लगता है।

(iii) दूध को अधिक समय तक रखने के कारण खटास पैदा हो जाती है और उपयोग मे नहीं आ पाता है।

(3) दूध में पानी मिलाकर क्रीम पृथक्करण (Water Dilution Method)—इस विधि मे दूध में 100°F तापक्रम पर समान मात्रा मे पानी मिलाकर बर्तनों में भरकर 12 घण्टे के लिये ठण्डे स्थान पर रख देते है और क्रीम को अलग कर लेते हैं। मक्खनिया दूध में ·3–·4 प्रतिशत वसा रह जाती है।

दोष—पानी मिलाने से मक्खनियाँ दूध उपयोग में आने योग्य नहीं रहता है।

गुरुत्व विधि से क्रीम पृथक्करण में हानियाँ—

(i) मक्खनियाँ दूध मे ·3-·6 प्रतिशत वसा रह जाता है जिससे क्रीम में वसा की मात्रा कम रह जाती है।

(ii) दूध से क्रीम प्राप्त करने में 12 से 48 घण्टे लगते हैं जिससे क्रीम के खराब होने की संभावना रहती है।

(iii) मक्खनियाँ दूध खट्टा हो जाता है जिससे उपयोग में नहीं आ सकता है।

(iv) दूध भरने के बर्तन के लिए अधिक स्थान की आवश्यकता होती है।

(v) वसा की मात्रा को नियन्त्रित नहीं किया जा सकता है।

अपकेन्द्रीय बल या मशीन से क्रीम पृथक्करण (Contrifufsal Method)

दूध से क्रीम अलग करने के लिए कई प्रकार की मशीनें लिस्टर, वैगा, परफेक्ट, सार्पलैस, स्टेण्डर्ड, अल्फालेविल, डी. लेविल आदि से क्रीम सेपरेटर मिलते हैं जिनको हाथ या शक्ति (विद्युत या इन्जिन) से चलाया जाता है। निर्धारित चाल वाले क्रीम सेपरेटर अच्छे रहते हैं।

क्रीम सेपरेटर की बनावट—विभिन्न प्रकार के क्रीम सेपरेटर मे निम्नलिखित मुख्य भाग पाये जाते हैं।

1. मशीन की बॉडी (Body of Machine)—इसके अन्दर मशीन के चलाने वाले कल-पुर्जे (गरारियाँ, धुरी, जुड़े होते हैं। इसी की धुरी से मशीन के ऊपरी विभिन्न भाग समायोजित किए जाते है। बाहर की ओर का धुरा हत्थे या शक्ति से सम्बन्धित होता है जिससे मशीन को चलाया जाता है।

2. दुग्ध पात्र (Milk Spout)—मशीन के सबसे ऊपर क्रीम को अलग करने के एक दूध को भरने का पात्र होता है। जो दो प्रकार के होते हैं। एक मे पात्र के बीच में टोंटी तथा दूसरे में एक किनारे टोंटी होती है। यह टोंटी (Faucet) बाउल में दूध को प्रवेश कराता है।

3 मिल्क रेग्युलेटर या फ्लोटिंग कवर (Floating Cover)—यह दूध पात्र से मशीन में दूध प्रवेश को नियन्त्रित करता है।

4. मिल्क फ्लोट (Milk Float)- यह मशीन का सबसे हल्का, तश्तरी की भाँति भाग होता जो फ्लोटिंग कवर के अन्दर रहता है। दुग्ध-पात्र से दूध आने पर यह बहाव मे तैरने लगता है तथा गति को नियन्त्रित करता है।

5. स्पाउट (Spout)—दो प्रकार के हैं—

(i) क्रीम स्पाउट—यह सेपरेटा दूध स्पाउट से कम गहरा तथा कम व्यास का होता है। यह क्रीम स्क्रू से जुड़ा होता है इससे क्रीम बाहर आती है।

(ii) सेपरेटा दुग्ध स्पाउट (Separated Milk Spout) - यह क्रीम स्पाउट से अधिक गहरा तथा अधिक व्यास का होता है इससे सेपरेटा दूध बाहर आता है।

6. बाउल (Boul)—यह मशीन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भाग है जो कई छोटे-छोटे भागों से मिलकर बना है। मशीन की गति के कारण बाउल 200 गुनी गति से घूमता है। बाउल में निम्न भाग लगे होते हैं—

(i) बाउल बॉडी (Bowl Body)—यह भाग मशीन की धुरी पर रखा जाता है जिस पर बाउल के सभी भाग रखे जाते हैं। इसके ऊपरी भाग पर भागो को कसने के लिए चूड़ियाँ (Grooves) कटी होती हैं।

(ii) रबड़ का छल्ला (Rubber Ring)—यह बाउल बॉडी के अन्दर निचले कटाव पर फिट होता है जो सभी भागों को कसकर दूध के भारी कणों को इकट्ठा करता है।

(iii) दुग्ध वितरक (Milk Distributer)—बाउल का सबसे उपयोगी भाग है जो दुग्ध पात्र से आये दूध को बाउल में वितरित करता है जिससे दूध डिस्कों में पहुँचकर पतली झिल्ली के रूप में फैल जाता है।

(iv) तश्तरियाँ (Disc)–ये बाउल बॉडी पर लगी होती है। इनकी संख्या मशीन की किस्म पर निर्भर करती है। ये निम्न तीन प्रकार की होती है—

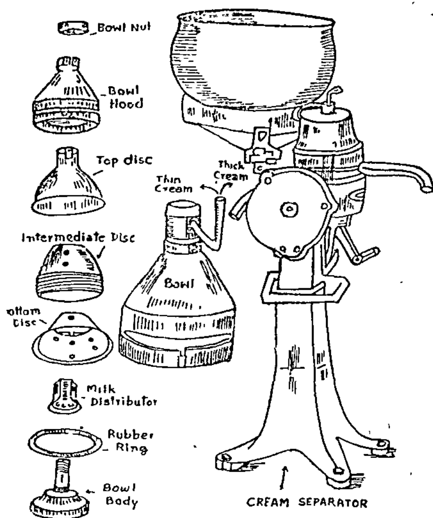
(अ) बॉटम डिस्क (Bottom Disc)—यह सबसे नीचे रखी जाती है जिसके निचले किनारे पर तीन उभरे कटान होते हैं जो कटोरी के ऊपर तीन छेद व तीन उभरे स्थान होते हैं।

(ब) मिडिल डिस्क (Middle Disc) - इन कटोरियों मे केवल ऊपरी भाग पर उभरे स्थान तथा छेद होते हैं। इनकी सख्या 16 से 44 तक होती है। छोटी मशीनों में 11 से 16 तथा बड़ी मशीनो में 80 तक होती है।

(स) टॉप डिस्क (Top Disc) यह एक उल्टी कीप की भाँति होती है जिसकी गर्दन में एक छिद्र होता है जिससे सेपरेटा दूध बाहर निकलता है।

(v) बाउल हुड (Bowl Hood)—यह एक गहरी कटोरी की भाँति रचना होती है जो बाउल के सभी भागो को ढकने के काम आती है। इसकी गर्दन लम्बी होती है जिसमे बने छिद्र में एक पेच (Cream Screw) लगा होता है जो क्रीम को पतली एवं गाढ़ी करने के काम आता है।

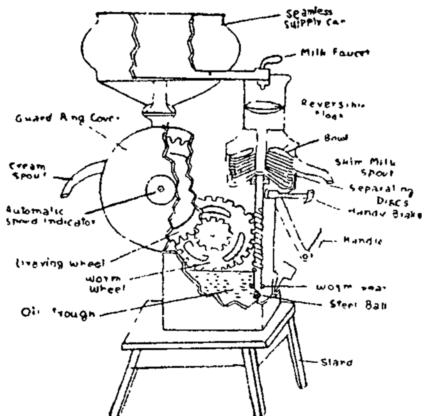
(vi) बाउल नट (Bowl Nut) — यह बाउल बॉडी पर बनी चूड़ियों पर कसने के काम आता है जिससे बाउल के सभी भाग अच्छी तरह से कसे रहते हैं।



क्रीम सेपरेटर के विभिन्न भाग

क्रीम सेपरेटर से क्रीम पृथक्करण की विधि—इसमे दूध टंकी मे क्षैतिज तल मे भरा जाता है तथा बाउल की गति काफी अधिक 2000-4000 चक्कर प्रति मिनट (r.p.m , revolution per minute) होती है। जब दूधबाउल में मशीन के अन्दर जाता है तो दूध पर काफी बल पड़ता है। दोनों ही दूध तथा स्किम्ड मिल्क बाहर की ओर चक्र मे घूमते हैं। बाउल की तेज गति के कारण दूध छिद्र-

युक्त तश्तरियों के छेदों के द्वारा जाता है और बारीक पतली पर्तों में बंट जाती है। मशीन के चलने से केन्द्राकर्षण बल उत्पन्न होता है जिससे मक्खनिया दूध (अधिक



घनत्व) भारी होने के कारण दुग्धवसा को हल्की होने के कारण केन्द्र की ओर फेंकता है। क्रीम सेपरेटर में क्रीम और स्किम्ड मिल्क को अलग करने का प्रबन्ध होता है जिससे ये अलग-अलग रास्ते (स्पाउट) के द्वारा बाहर निकल जाते हैं।

लाभ—(i) वसा की पूरी मात्रा कम समय में प्राप्त हो जाती है।

(ii) मक्खनियां दूध ताजा और अच्छा रहता है जिसका उपयोग दूध, दही आदि के रूप में किया जाता है।

(iii) थोड़े स्थान की आवश्यकता होती है।

(iv) क्रीम सेपरेटर में आवश्यकतानुसार वसा की मात्रा कम या अधिक करने की व्यवस्था होती है।

(v) 70 प्रतिशत तक वसा प्राप्त की जा सकती है।

(vi) क्रीम से अच्छा मक्खन बनता है।

(vii) अच्छे क्रीम सेपरेटर से निकले स्किम्ड मिल्क में 0·01 प्रतिशत वसा रहती है।

क्रीम सेपरेटर की क्रीम निकालने की क्षमता को प्रभावित करने वाले कारक

1. क्रीम सेपरेटर की दशा—क्रीम सेपरेटर से कार्य लेने से पूर्व निम्न बातों का ध्यान देना आवश्यक है—

(i) मशीन समतल धरातल पर अच्छी तरह से लगी होनी चाहिए।

(ii) मशीन के नट और बोल्ट अच्छी तरह से कसे होने चाहिए।

(iii) मशीन के स्पिण्डिल तथा गियर्स सदैव तेल में डूबे होने चाहिए।

2. क्रीम सेपरेटर की यान्त्रिक क्षमता—अगर क्रीम सेपरेटर का स्पिण्टिल इस प्रकार का बना हो कि वह क्रीम पृथक के बाद दुबारा कुछ कारणों से क्रीम एवं मक्खनियाँ दूध को मिला देवें तो यह सेपरेटर अच्छा नहीं है। मक्खनियाँ दूध में कम से कम वसा जानी चाहिए।

3. बाउल की बनावट—बाउल में कटोरियों की संख्या कम होने पर क्रीम कम मात्रा में प्राप्त होती है। बाउल के सभी भागों को अच्छी तरह से साफ एवं जीवाणुरहित करके सही तरीके से कसने चाहिए।

क्रीम स्क्रू को न अधिक और न कम ही कसना चाहिए इससे क्रीम गाढी और पतली हो जाती है।

4. गति—मशीन की गति धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिए। प्रारम्भ मे घण्टी बजनी बन्द होने पर गति ठीक समझना चाहिए तभी दूध के प्रवाह को जारी कर देना चाहिए इससे क्रीम सेपरेटर की क्षमता बढ़ जाती है। सेपरेटर को सदैव उचित और समान गति पर चलाना चाहिए।

5. दूध का तापक्रम—दूध को 90-100°F तापक्रम पर गर्म करने से वसा के कण पूरे दूध में फैल जाते हैं जिससे गाढ़ापन एकसा हो जाता है, इससे अच्छी और अधिक मात्रा में क्रीम मिलती है।

6. दूध की दशा—प्रारम्भ मे दूध को छलनी से छानने के बाद ही पात्र में भरना चाहिए जिससे कटोरियो में पर्याप्त स्थान मिलता है। क्योंकि दूध में मिट्टी आदि के कणों से सेपरेटर स्लाइम अधिक बनता है और कटोरियो मे स्थान कम रहता है जिससे मक्खनियाँ दूध मे वसा की अधिक मात्रा जायेगी।

दूध ताजा होना चाहिये। अम्लीय (खट्टा) दूध कटोरियों के बीच जम जाता है और सेपरेटर की क्षमता कम हो जाती है।

7. सेपरेटर की सफाई—दूध से क्रीम प्राप्त करने के बाद हल्का गर्म पानी भरकर मशीन चलाना चाहिए फिर सेपरेटर के सभी भागों को अलग-अलग करके गर्म खौलते पानी में डाल देना चाहिए। सोडा मिले पानी में ब्रुश की सहायता से रगड़कर पर्याप्त पानी से धोकर ऊँचे एवं साफ स्थान पर सूखने रख देना चाहिए। इनको फिट करते समय हाथों को अच्छी तरह साफ सुखाकर के भागों को चिमटी की सहायता से लगायें।

प्रश्न

1. क्रीम सेपरेटर का नामांकित चित्र बनाइए ? किस सिद्धान्त से मलाई अलग होती है; लाभ बताओ।
2. क्रीम सेपरेटर का नामांकित चित्र बनाइए तथा प्रत्येक अंग का कार्य बताइए ?
3. दूध से क्रीम निकालने की विधियों का वर्गीकरण करिए ?
4. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखो—
   (क) क्रीम,
   (ख) गुरुत्व एवं अपकेन्द्रीय क्रीम पृथक की विधि।

अध्याय 27

दही (DAHI)

प्राचीनकाल से ही देश मे दूध और दही का उपयोग होता आ रहा है। दही बनाने का आज तक प्राचीन ढंग ही अपनाया जा रहा है जबकि विदेशों में दही नये-नये ढंग से बनाई जाती है।

दैनिक जीवन में दही का काफी मात्रा मे उपयोग होता है। भोजन में ताजे दही को प्रमुख स्थान दिया जाता है। गर्मियो मे अधिकतर इससे लस्सी बनाई जाती है। दही से क्रीम प्राप्त करते हैं जिससे मक्खन और घी प्राप्त होता है। दही सभी आयु एवं वर्ग के व्यक्तियों के लिए लाभकर पाचक तथा कार्यक्षमता को बढ़ाता है। पेट-विकारों को ठीक करता है।

अच्छा दही बर्तनों की सफाई और अच्छे जॉवन पर निर्भर करता है। यह जॉवन दो प्रकार का होता है—

1. प्राकृतिक जॉवन (Natural Starter)—दूध को स्वच्छ बर्तन में 60° एफ० तापक्रम पर इसमें खटास पैदा करने वाले जीवाणु 'स्ट्रेप्टोकोकस लैक्टिस' उत्पन्न हो जाते हैं। इस खट्टे दूध को स्वाभाविक जॉवन कहते हैं। ताजे जॉवन के प्रयोग से अच्छा दही प्राप्त होता है।

2. कृत्रिम जॉवन (Commercial Starter—बड़ी प्रयोगशालाओं एवं डेरी फार्मों पर लैक्टिक अम्ल जीवाणुओं का कल्चर तैयार करते है जिससे कृत्रिम जॉवन तैयार किया जाता है।

दही बनाने के लिए दूध को उबालकर उसमे 70°F तापक्रम पर स्वच्छता से कल्चर मिला दिया जाता है। इसको दही जमने तक 70°F तापक्रम पर रखा जाता है।

देशी विधि से दही बनाना—यह विधि सभी स्थानों में उपयोग मे लाई जाती है। गांवों में दूध की हांडी में उपलों पर दोपहर से सायं तक गर्म होता रहता है तथा सायं को इसे थोड़ा ठण्डा करके पहिले दिन का जांवन मिला देते हैं। गर्मी तथा वर्षा काल में हांडी को ठण्डे स्थान तथा सर्दियों में उपलों की आंच पर ही रखी रहती है। 8-10 घण्टे में दूध से दही बन जाता है। साधारणतया दही जमाने के लिए पहिले दिन का जॉवन (दही) दूसरे दिन उपयोग में लाते हैं।

हाण्डी के स्थान पर मिट्टी के प्याले, स्टील के बर्तनों का भी उपयोग किया जाता है। अच्छा, स्वादिष्ट दही बनाने के लिए बर्तनों को अच्छी तरह साफ करके जीवाणु रहित करके ताजा जाँवन उचित मात्रा में उपयोग में लाना चाहिए। स्वच्छता पर विशेष ध्यान देने पर अच्छा दही मिलता है।

दही का संगठन—दूध की भाँति दही में सभी तत्व पाये जाते हैं। दही में दुग्धाम्ल की मात्रा अधिक तथा पानी और दुग्ध शर्करा की मात्रा कम होती है।

दही का रासायनिक संगठन

दूध की किस्म	जल	वसा	प्रोटीन	लैक्टोज	दुग्धाम्ल	खनिज लवण	कैल्शियम	फास्फोरस
पूर्ण दूध का दही	85-89	5-7	3·2-3·8	4·4-4·8	0·5-1·0	0·7-0·8	0·12-0·14	0 93-0·99
वसा रहित दूध का दही	90-91	0·05-0·10	3·2-3·5	4·5-4·9	0·5-1·0	0·7-0·8	0·12-0·14	0·93-0·99

अच्छी दही के गुण—

1. अच्छा दही ठोस, समान रूप में गाढ़ा होता है। जिससे पानी अलग नहीं दिखाई देता है।
2. ताजे दही में विशेष सुगन्ध आती है जो 'डाइएलिटिल' के कारण होती है।
3. अच्छा दही स्वादिष्ट होता है। इसमें 0·65 से 0·75 प्रति. अम्लता हो।

दही को ताजी अवस्था में प्रयोग करना चाहिए। गर्मियों में 8-12 घण्टे तथा सर्दियों में 1 से 2.5 दिन तक स्वच्छ एवं ताजी अवस्था में बना रहता है। अधिक समय तक रखने पर अम्लीयता बढ़ने से खटास बढ़ जाती है जिससे दुग्धाम्ल के स्थान पर ब्यूटायरिक अम्ल बनने से बुरी गन्ध आने लगती है।

प्रश्न

1. दही बनाने की सरल विधि का वर्णन कीजिए ?
2. अच्छे दही की क्या पहिचान है ? दही बनाने की विधि का संक्षिप्त वर्णन करो।
3. दही का रासायनिक संगठन लिखिए।

अध्याय 28

घी (GHEE)

घी दूध से बनने वाला बहुमूल्य पदार्थ है जो वसा के रूप में उपयोग किया जाता है। दूध से बनाये जाने वाले पदार्थों में इसका विशिष्ट स्थान है। दूध से दही, मट्ठा, खोया, पनीर आदि पदार्थ बनाये जाते है परन्तु घी का निर्माण सर्वाधिक किया जाता है।

विदेशों में घी के स्थान पर मक्खन का प्रयोग किया जाता है परन्तु देश की जलवायु गर्म होने से इसका संग्रह अधिक समय तक नहीं किया जा सकता है जबकि घी को बिना विशेष देखभाल के काफी समय तक अच्छी दशा में संग्रह किया जा सकता है।

दूध देने वाले पशुओं में से गाय तथा भैंस से अधिक दूध मिलता है। गाय के दूध में लगभग 5·00 प्रति तथा भैंस के दूध में 7·5 प्रति. वसा होती है जिसके कारण गाय की अपेक्षा भैंस को घी उत्पादन की दृष्टि से अच्छा माना जाता है।

घी बनाने की विधियाँ—दो विधियाँ उपयोग में लाई जाती है—

(क) देशी विधि से घी बनाना, (ख) मक्खन से घी बनाना।

(क) देशी विधि से घी बनाना—देश के अधिकाश ग्रामीण भागो में इसी विधि से घी बनाया जाता है। सर्वप्रथम दूध से दही बना लेते हैं इसके बाद दही को मथकर उसमें से लौनी (मक्खन) निकालकर अलग पात्र (मिट्टी की हाडी) मे एकत्रित करते रहते हैं। प्रायः एक सप्ताह की लौनी को कढ़ाई, मगौना या हाडी में गर्म करते हैं।

गर्म करने पर लौनी का वाष्प बनकर उड़ने लगता है और यह पिघलने लगती है। जब यह पूरी तरह पिघल जाती है तो सतह के नीचे पानी और छाछ रह जाती है। कुछ छाछ पानी के साथ उबलने पर सतह पर तैरने लगती है। जब छाछ का रग हल्का बादामी रंग का हो जाये और लगभग सारा पानी वाष्प बनकर उड़ जाता है तो इसमें से विशेष भीनी-भीनी गन्ध आने लगती है तो यह अवस्था घी तैयार होने की है। इसे आँच से उतार थोड़ा ठण्डा होने पर मोटे कपड़े या छननी से छानकर साफ तथा सूखे बर्तनों में संग्रह कर लिया जाता है।

(ख) मक्खन से घी बनाना—मक्खन को निश्चित तापक्रम पर गर्म किया जाता है तो इसका सम्पूर्ण पानी वाष्प बनकर उड़ जाता है तभी स्वच्छ, पीला

द्रव रह जाता है, जिसे घी कहते हैं। यह वसा दूध में पाई जाने पर वाली वसा से भिन्न होती है।

क्रीम सेपरेटर की सहायता से दूध से क्रीम प्राप्त करके मक्खन तैयार किया जाता है। कहीं-कहीं क्रीम को भी गर्म करके घी प्राप्त कर लेते हैं। मक्खन को साफ बर्तन में गर्म करने पर 30 से 60° से० ग्रे० तापक्रम पर पिघल जाता है और सतह से झाग उठने लगते हैं जिससे आयतन बढ़ता है यह दशा 94° से० ग्रे० तक रहती है। यह तरल मक्खन 94-96° से० ग्रे० के ताप पर चमकने लगता है। जब सम्पूर्ण पानी वाष्प बनकर उड़ जाता है तो तापमान 98° से० ग्रे० हो जाता है और तरल कुछ गाढ़ा हो जाता है। जब तापमान 110° से. ग्रे. पर पहुँचता है तो छाछ इकट्ठी होकर ऊपर आने लगती है परन्तु 120° से.ग्रे. तापमान पर छाछ के कण नीचे बैठने लगते है और तरल साफ पारदर्शक दिखाई देने लगता है, इस दशा मे घी मे विशेष प्रकार की भीनी-भीनी महक आने लगती है। थोड़ा और तापमान बढ़ाने पर तरल में बुलबुले उठने लगते हैं, यह दशा घी तैयार होने की है। छाछ के कारण घी के रंग से गहरे रंग के हो जाने पर गर्म करना बन्द कर देते हैं अन्यथा घी के जलने की सम्भावना रहती है। यह स्थिति 128° से०ग्रे० तापमान पर आती है। अब पात्र को उठाकर थोड़ा ठंडा होने पर घी को छानकर बर्तनो मे भर लिया जाता है।

घी का संग्रहण—घी को टिन के बने विभिन्न आकार के डिब्बो में संग्रह किया जाता है। घी के थोड़ा ठण्डे होने पर छानकर साफ डिब्बे में भरकर ढक्कनो को बन्द कर दिया जाता है, इस प्रकार घी को काफी समय तक रखा जा सकता है।

घी का खराब होना (Rencidity of Ghee)—दो कारण हैं—

(1) घी को अच्छी तरह गर्म न करने पर उसमें छाछ रह जाती है जो खटास पैदा कर देती है।

(2) बर्तनो के अच्छी तरह साफ न होने पर या इनमे जंग आदि लगे रहने से घी खराब हो जाता है।

अतः घी को अच्छी तरह गर्म करके साफ, सूखे एवं जंगरहित बर्तनों मे भरा जावे तो घी काफी समय तक अच्छी दशा में बना रहता है।

प्रश्न

1. घी बनाने की भिन्न-भिन्न विधियों का वर्णन करो ?
2. 'घी' से क्या समझते हैं ? भैंस के दूध से घी बनाना क्यों पसन्द करते है ? घी बनाने में ताप का क्या महत्व है ? वर्णन कीजिए।
3. घी को काफी समय तक संग्रह के लिए किन-किन बातो को ध्यान में रखोगे ?

अध्याय-29

दूध का गुण नियंत्रण
(Quality Control of Milk)

दूध के गुण नियंत्रण से अभिप्राय है कि दूध के सामान्य गुणों को स्थिर बनाये रखना है अर्थात् वह प्रक्रिया जिससे दूध के सामान्य गुण जैसे शुद्धता स्वाद, अच्छी अवस्था में रखने की लम्बी अवधि (Keeping Quality) जीवाणुओं की कम संख्या आदि को यथावत रखा जाता है, दूध का गुण नियंत्रण कहते हैं।

उपयोगिता—गुण नियंत्रण से उपभोक्ताओं को दूध सदैव प्रतिदिन एक ही तरह का मिलता है और ऐसा दूध सदैव शुद्ध एवं ताजा गुणों का होता है।

दूध के सामान्य गुणों को यथावत रखने के लिये दूध का कई प्रकार से कई स्थानों पर परीक्षण किया जाता है।

(अ) दूध उत्पादन के समय दूध-गुण नियंत्रण।
(ब) दूध संसाधन के समय-दूध गुण नियंत्रण।

दूध उत्पादन के समय दूध-गुण नियंत्रण—डेरी फार्म जहाँ गायें, भैंसे दूध उत्पादन के लिये रखी जाती हैं उनका वर्ष मे एक निश्चित अवधि में परीक्षण किया जाता है जिससे ज्ञान हो सके कि किसी भी पशु को टी. बी., गर्भ स्रवण का रोग तो नहीं है। यदि पशु इन रोगों से ग्रसित है तो उसका दूध अलग कर लिया जाता है और उसे उपयोग में नहीं लाते है जिससे अन्य दूध के गुण खराब नहीं होते हैं।

कभी-कभी पशु थनैला रोग से ग्रसित होता है जिससे दूध के गुण असामान्य हो जाते हैं। दूध में प्रोटीन, शर्करा आदि की कमी हो जाती है और क्लोराइड बढ़ जाता है। इस दूध को सभी दूध में मिलाने से वह अशुद्ध हो जाता है। इसको पता करने के लिये डेरी फार्म पर निम्न परीक्षण किये जाते हैं—

(1) स्ट्रिप कप परीक्षण
(2) बी. टी. बी. टेस्ट परीक्षण
(3) मेस्टेड घोल परीक्षण
(4) अम्लता परीक्षण

(5) क्लोराइड परीक्षण
(6) सी. श्रो. बी. परीक्षण
(7) अल्कोहल परीक्षण

किसी पशु का दूध यदि इन परीक्षणों के आधार पर थनैला के लिये + वी सी होता है तो उस दूध को अलग कर दिया जाता है और पशु के रोग निदान होने के बाद ही उसके दूध को सामान्य दूध में मिलाया जाता है।

सी. श्रो. बी, परीक्षण + वी सी होने पर उस दूध को भी सामान्यतः नहीं मिलाते हैं क्योंकि इस तरह के दूध में खीस होती है या इसकी अम्लता बढ़ जाती है।

(ब) दूध संसाधन के समय–दूध गुण नियंत्रण – पशुओं से दूध निकाल कर उपभोक्ताओं के लिये जब किसी डेरी संयंत्र पर भेजा जाता है जो वहाँ इसकी शुद्धता और ताजगी के परीक्षण किये जाते हैं, जिसके लिये निम्न परीक्षण किये जाते हैं—

दूध की शुद्धता के लिए आपेक्षिक घनत्व, वसा और कुल ठोस मात्रा का परीक्षण करते हैं।

ताजगी के लिए दूध का सी. श्रो. बी. परीक्षण या अम्लता परीक्षण किया जाता है। ताजे दूध में 0·14–0·16% अम्लता होती है, अधिक अम्लता बढ़ने पर दूध के फटने या जमने का डर रहता है। ऐसा दूध अधिक समय तक रखा नही जा सकता है और गरम करने पर फट जाता है। अधिक अम्लता अधिक जीवाणुओं की संख्या को भी प्रदर्शित करती है।

आपेक्षिक घनत्व, कम ठोस एवं वसा परीक्षण से दूध में मिलाये पानी या दूध से निकाली वसा का पता चलता है। सामान्य दूध का आ. घ. 1·030 होता है, पानी मिले दूध का आ. घ. कम एवं क्रीम निकाले दूध का आ. घ. अधिक (1·36) होता है।

सामान्यतया गाय के दूध में वसा 5% और भैंस के दूध मे 7% होती है। पानी मिलाने या क्रीम निकालने से यह मात्रा कम हो जाती है।

शहरों मे पाश्चुराइज दूध का फास्फेटेज परीक्षण होता है जिससे दूध में टी. बी. के जीवाणु का ज्ञान होता है। एम. बी. आर. परीक्षण से दूध में जीवाणुओं की उपस्थिति तथा सामान्य दशा में रखने की क्षमता का पता चलता है।

इस प्रकार विभिन्न स्थानों पर विभिन्न परीक्षणों द्वारा दूध के गुण नियंत्रण किये जाते है।

प्रश्न

1. दूध के गुण नियंत्रण से क्या तात्पर्य है ?
2. दूध के गुण नियंत्रण किस-किस समय किया जाता है ? इस समय कौन से परीक्षण किये जाते हैं, सामान्य परीक्षणों का संक्षेप में वर्णन करिये ?

अध्याय–30

दुग्ध-परीक्षरण
(Milk Testing)

प्राचीनकाल से ही दूध का व्यवसाय होता आ रहा है परन्तु वर्तमान में दुग्ध व्यवसाय ने एक विशिष्ट स्थान ले लिया है। यह समस्या है कि शुद्ध दूध किस प्रकार प्राप्त किया जाये। जनसंख्या वृद्धि की तुलना में अच्छे पशु तथा उनका उत्पादन नहीं बढ़ा है। दूध बेचने वाले भी दूध में पानी, सेपरेटा तथा अन्य पदार्थ मिला देते हैं।

मोटे तौर पर दूध की जांच निम्न तरीके से की जाती है—

(i) नाखून पर दूध की बूंद रखने पर यह सीधी दशा में नीचे न गिरे।

(ii) पक्के फर्श पर डालने से शुद्ध दूध नहीं बहेगा।

(iii) कांच के गिलास में डालने पर वह दीवालों पर लगेगा।

(iv) खोया या मावा बनाने पर एक लिटर शुद्ध दूध से 250 ग्राम खोया बनेगा।

इन विधियों से दूध की सही शुद्धता की जाँच नहीं की जा सकती है। दुग्ध विज्ञान में प्रगति के कारण दुग्ध परीक्षरण की कई विधियों की खोज हुई जिनकी सहायता से दूध की जांच की जाती है। प्रमुख परीक्षरण विधियाँ निम्न हैं—

1. दुग्धमापी द्वारा परीक्षरण
2. दुग्ध बसा परीक्षरण
3. अम्लता परीक्षरण
4. कलकन परीक्षरण

1. दुग्ध मापी द्वारा परीक्षरण (Lactometer Test)—

उद्देश्य–(i) दूध के निर्धारित मानकों की पूर्ति करना

(ii) दूध में पानी का मिलाना

(iii) दूध से बसा निकालना

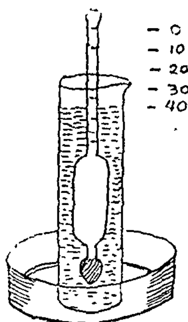
(iv) दूध में बाहरी पदार्थों का मिलाना

उपकरण—डेरी फ्लोटिंग थर्मामीटर, लैक्टोमीटर, जार व डिस्क, दूध

सिद्धान्त—सभी द्रव-घनत्वमापियों (Hydro Meter) की भांति लैक्टोमीटर का भी यही सिद्धान्त है कि जब कोई वस्तु किसी द्रव में तैरती है तो वह एक बल

द्वारा उत्प्लावित (Buoyed up) होता है जो उस वस्तु के द्वारा हटाये जाने वाले द्रव के भार के तुल्य होता है।

लैक्टोमीटर—दूध की जांच के लिए विशेष रूप से बनाया गया द्रव घनत्व मापी है। सामान्यतया प्रयोग में आने वाला क्विनी का लैक्टोमीटर है इसमें एक तापमापी भी रहता है। यह कांच के एक लम्बे, पतले तथा अंशांकित (Graduated) स्तम्भ (Stem) का बना होता है जिसका निचला भाग एक बड़े रिक्त बल्ब के रूप



में होता है। इस बल्ब के निचले सिरे में पारा और शीशे की गोलियां भरी होती हैं जिससे यह दूध में सीधा खड़ा रहता है। बल्ब के ऊपरी भाग में हवा भरी होती है जो लैक्टोमीटर को तैरने में सहायक होती है। लैक्टोमीटर में पैमाने पर नीचे से 10 या 15 से 40 तक निशाना लगे होते हैं। यह गत्ते या लकड़ी के खोल में रखा होता है।

डेरी फ्लोटिंग थर्मामीटर—विशेष प्रकार का बना होता है जो दूध के ताप को जानने मे उपयोग होता है। इस पर 10 से 220° तक निशान लगे होते हैं। प्रत्येक खाना 5 भागों में बटा होता है। जो 2° को प्रकट करता है।

$$\text{सूत्र—दूध का आपेक्षिक घनत्व} = 1 + \frac{\text{लैक्टोमीटर की संशोधित माप}}{1000}$$

लैक्टोमीटर की संशोधित माप = लैक्टोमीटर माप + शुद्धिकारक + ·1 प्रति डिग्री
C.L.R. O.L.R. C.F.

विधि—दूध को 60°F पर गरम करके जार में धीरे से दीवाल के सहारे से दो-तिहाई धीरे-धीरे भरें जिससे हवा के बुलबुले न रहें। इसका ढेरीपलोटिंग थर्मामीटर से तापक्रम नोट करें। लैक्टोमीटर को धीरे से दूध में डालें जिससे यह जार में बिना बाधा के बीच में तैरे फिर जार को दूध से मुँह तक भर देवें। आधा मिनट बाद लैक्टोमीटर के पैमाने को नवचन्द्रक (Meniscus) के ऊपरीतल की माप पढ़ कर नोट कर लें।

तापक्रम के लिये लैक्टोमीटर की माप का संशोधन—साधारणतौर लैक्टोमीटर पर 50°F (15°C) पर निशान लगाये जाते हैं। 60°F से तापक्रम अधिक होने पर प्रत्येक अंश F पर लैक्टोमीटर की माप में 0·1 जोड़े तथा 60°F से नीचे तापमान पर प्रत्येक अंश पर 0·1 घटाना आवश्यक है।

तापमान 50°F से कम या 70°F से अधिक होने पर सही संशोधन नहीं हो पाता है।

लैक्टोमीटर में दशमलव के अंश न होने प्रत्येक पाठ्यांक में शुद्धिकारक के रूप में ·5 जोड़ा जाता है।

प्रेक्षण सारिणी

दूध का नमूना	लैक्टोमीटर पाठ्यांक O.L.R.	तापमान OF	शुद्धिकरण C.F.	संशोधित लैक्टोमीटर माप O L R + C.F. ± ·1 प्रति°
अ.	28	68	·5	28 + ·5 + ·8 = 29·3

$$\text{गणना — आपेक्षिक घनत्व} = 1 + \frac{\text{लैक्टोमीटर की संशोधित माप}}{1000}$$

$$= 1 + \frac{29 \cdot 3}{1000}$$

$$= 1 \cdot 0293$$

सावधानियां –

(i) दूध के नमूने को भलीभांति मिलाने के बाद लें।

(ii) लैक्टोमीटर जार की दीवाल को न छूये तथा दूध से जार को पूरा भरें जिससे आवर्तन (Refrection) का प्रभाव न पड़े।

(iii) लैक्टोमीटर के स्थिर होने के आधा मिनट बाद माप पढ़ें।

(iv) I.S.I. मार्क लैक्टोमीटर प्रयोग में लावें।

लैक्टोमीटर माप पर प्रभाव—लैक्टोमीटर दूध की शुद्धता के अनुसार डूबता है। गाय के दूध का लैक्टोमीटर माप 28–30, भैंस के दूध का माप 30–32 होता है, सेपरेटा दूध मिलाने पर माप 32 से अधिक आती है। अधिक घनत्व वाले पदार्थ मिलाने पर माप अधिक आती है। भैंस के दूध में पानी मिला कर गाय का दूध बताया जाता है।

अधिक वसा वाले दूध की माप कम आती है क्योंकि वसा का घनत्व कम होता है।

गन्दा पानी, शक्कर, अरारोट, स्टार्च, गन्ने का रस मिलाने से माप अधिक आती है। इससे दूध की सही जांच नहीं हो पाती है।

2. वसा परीक्षण (Fat-Testing)

दुग्ध वसा कई वसाओं का मिश्रण है जो दूध में सूक्ष्म गोलिकाओं के रूप में पाई जाती है। इसका आपेक्षिक घनत्व 0·93 होता है जिससे दूध को यदि कुछ समय तक रखा जाता है तो दुग्ध वसा क्रीम-पर्त के रूप में ऊपर इकट्ठी हो जाती है।

उद्देश्य–(i) वसा दूध का खाद्य मान (प्रति ग्राम वसा 9 किलो कैलोरी ऊर्जा) निर्धारिक तत्व है।

(ii) दूध तथा अनेक दूध उत्पादों का मूल्य वसा के आधार पर नियत किया जाता है।

(iii) मक्खन, पनीर तथा अन्य पदार्थों के निर्माण में उपयोगी है।

(iv) दूध मे पानी मिलावट तथा क्रीम निकालने का पता चलता है।

निर्धारण विधियां—दूध में वसा प्रतिशत मात्रा का निर्धारण तीन विधियो से होता है—(i) भारात्मक विधि (Gravimetric Method), (ii) आयतनी विधि (Volumetic Method) (iii) परोक्ष विधि (Indirect Method)

आयतनी विधि—यह व्यापारिक विधि होने से सभी जगह उपयोग में आती है। कम समय में हो उचित विधि से दूध से वसा को अलग करके इसका आयतन माप लिया जाता है।

गरबर विधि—स्विट्जरलैण्ड वासी एन० गरबर द्वारा खोजी यह विधि सर्वाधिक प्रचलित विधि है। अग्रलिखित सामग्री आवश्यक है—

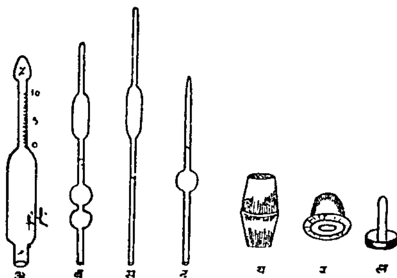
(क) उपकरण (1) गरबर ब्यूटाइरोमीटर— कांच का विशेष रूप से बना एक नली का होता है जिसका एक सिरा बन्द होता है। पहले खुला मुंह वाला चौड़ा भाग, दूसरा बीच का पतला अंशांकित स्तम्भ (Stem) जिससे वसा प्रतिशत पता चलता है तथा तीसरा एक छोटा बल्ब जिसका सिरा बन्द होता है। चौड़ें वाले मुंह दो प्रकार–चूड़ीदार तथा सादा होता है।

(2) दूध नापने के लिये 11 मि०ली० या 10.75 मि०ली० की पिपेट

(3) गंधकाम्ल की बोतल 10 मि०ली० आयतन की आटोमेटिक टिल्टमेजर सहित।

(4) अमाइल अल्कोहल की बोतल 1 मि० ली० आयतन की स्वचालित पिपेट सहित।

(5) ब्यूटाइरोमीटर तथा पिपेट का स्टैण्ड



(6) जल ऊष्मक (Water Bath)

(7) गरबर का अपकेन्द्रित मशीन (Gerber Centri fuge)

(8) रबर कार्क तथा की

(ख) रसायन—(i) सल्फ्यूरिक अम्ल (Hzsou)— इसका 15°C (66°F) पर आ० घ० 1·820 से 1·825 हो। यह पानी से लगभग दुगुना भारी है। जिससे दुग्ध सीरम का भार बढ़ाकर उसके तथा दुग्ध वसा के

घनत्व में काफी अन्तर पैदा करता है । वसा के अलावा सभी ठोस पदार्थ, केसीन आदि घोलकर इनकी चिपचिपापन कम करके वसा को मुक्त करता है ।

(ii) अमाइल अल्कोहल—इसका 15°C पर आ० घ० 0.816 होता है इसके मिलाने से वसा तथा अम्ल स्पष्ट विभाजित होकर अलग-अलग पर्तों में बंट जाते हैं ।

परीक्षण विधि—(*i*) आटोमेटिक टिल्ट मेजर की सहायता से गंधक अम्ल की 10 मि०ली० मात्रा स्वच्छ एवं शुष्क ब्यूटाइरोमीटर में डालें ।

(*ii*) भलीभांति मिश्रित दूध की 11 मि०ली० मात्रा पिपेट की सहायता से ब्यूटाइरोमीटर की दीवाल के सहारे धीरे-धीरे डालें जिससे दूध अम्ल से न मिलकर अलग पर्त में जमा हो जावे ।

(iii) अमाइल अल्कोहल की 1 मि०ली० मात्रा किनारे से डाले जो तीसरी पर्त के रूप में जमा हो जावे ।

(iv) ब्यूटाइरोमीटर के मुँह को कपड़े से सुखाकर सूखी रबरकार्क 'की' की सहायता से सावधानीपूर्वक कसकर लगा दें ।

(v) ब्यूटाइरोमीटर को अच्छी तरह डाट से बन्द करके ऊपर-नीचे हिलाकर अन्दर के तरल को मिलावें जब तक सारे पदार्थ घुलकर मिश्रित रूप में आ जावें ।

(vi) मिश्रित करने के बाद ब्यूटाइरोमीटर को 70°C ताप पर नियन्त्रित जल-ऊष्मक में 4-5 मिनट तक रखें जिससे डाट नीचे रहे ।

(vii) अब ब्यूटाइरोमीटर को गरबर मशीन मे रखें कि चौड़ा मुँह परिधि की ओर रहे । मशीन को *1100 चक्कर प्रति मिनट गति पर 4—5* मिनट तक चलायें ।

(*viii*) गरबर मशीन से ब्यूटाइरोमीटर को (डाट नीचे की ओर) जल ऊष्मक मे 4-5 तक रखें जब वसा स्पष्ट तरल मे दिखने लगे ।

(ix) वसा परत का आयतन ब्यूटाइरोमीटर को डाट को 'की' की सहायता से समायोजन करके अशांकित स्तम्भ की माप को नोट करें ।

(x) वसा परत के ऊपरी नव चन्द्रक (Minisaus) के निचले भाग तक की माप को लें । आँख उस बिन्दु पर सीधी जानी चाहिए जिस पर माप लेनी है ।

प्रेक्षण सारिणी

दूध का नमूना	ब्यूटाइरोमीटर की माप		वसा प्रतिशत (B—A)
	प्रथम माप (A)	अन्तिम माप (B)	

सावधानियां—(i) दूध का नमूना सही ढग से लिया जावे ।

(ii) सल्फ्यूरिक अम्ल सावधानी से डालें जिससे शरीर, कपड़े और मेज पर न गिरें ।

(iii) ब्यूटाइरोमीटर में डाले जाने वाले कोई भी तरल मुँह को गीला न करें ।

(iv) सूखी रबड़ डाट को सावधानीपूर्वक अच्छी तरह बन्द करें ।

(v) गरबर मशीन में ब्यूटाइरोमीटर रखने से पूर्व देख लें कि दूध के सभी पदार्थ पूर्णरूप से धुल गये हों ।

(vi) गरबर मशीन सन्तुलित रहे इसके लिए ब्यूटाइरोमीटर आमने-सामने रखें ।

(vii) जल-ऊष्मक का तापमान 70°C नियन्त्रित रखे ।

(viii) माप लेने के बाद सारे उपकरणों को धोवन सोडे के गर्म पानी या टीपोल के घोल से भलीभांति धोकर और सुखाकर रखें ।

(x) I. S. I. मार्क ब्यूटाइरोमीटर उपयोग में लावें । अन्दर के तरल का तल कम होने पर पिपेट की सहायता से थोड़ा साफ पानी मिलावें ।

अशुद्धि का कारण—

(i) सही अम्ल का न होना—सल्फ्यूरिक अम्ल की सान्द्रता सही न होने पर ब्यूटाइरोमीटर के भीतर के द्रव का रंग भूरा हो जाता है जो कैसीन के कारण है ।

(ii) बुलबुलों का होना—अपकेन्द्रित या घूर्णन कम होने के कारण होता है । ब्यूटाइरोमीटर को जल ऊष्मक में कुछ देर रखें ।

(iii) सही तल न आना—10·75 मि०ली० की पिपेट, साधारण ब्यूटाइरोमीटर तथा दूध के जलने के कारण होता है । रबर कार्क सावधानी से खोल पिपेट की सहायता से थोड़ा पानी मिलायें ।

(iv) वसा की पर्त के नीचे काली पर्त का होना—रबड़ कार्क के जलने से होता है । प्रयोग के बाद कार्क को सोडे के घोल में भिगोकर गरम पानी से धोयें ।

घनत्व में काफी अन्तर पैदा करता है। वसा के अलावा सभी ठोस पदार्थ, प्रोटीन आदि घोलकर इनकी चिपचिपापन कम करके वसा को मुक्त करता है।

(ii) अमाइल अल्कोहल—इसका 15°C पर आ० घ० 0.816 होता है इसके मिलाने से वसा तथा अम्ल स्पष्ट विभाजित होकर अलग-अलग पर्तों में बंट जाते हैं।

परीक्षण विधि—(i) ऑटोमेटिक टिल्ट मेजर की सहायता से गंधक अम्ल की 10 मि०ली० मात्रा स्वच्छ एवं शुष्क ब्यूटाइरोमीटर में डालें।

(ii) भलीभांति मिश्रित दूध की 11 मि०ली० मात्रा पिपेट की सहायता से ब्यूटाइरोमीटर की दीवाल के सहारे धीरे-धीरे डालें जिससे दूध अम्ल से न मिलकर अलग पर्त मे जमा हो जावे।

(iii) अमाइल अल्कोहल की 1 मि०ली० मात्रा किनारे से डाले जो तीसरी पर्त के रूप में जमा हो जावे।

(iv) ब्यूटाइरोमीटर के मुँह को कपड़े से सुखाकर सूखी रबरकार्क 'की' की सहायता से सावधानीपूर्वक कसकर लगा दें।

(v) ब्यूटाइरोमीटर को अच्छी तरह डाट से बन्द करके ऊपर-नीचे हिलाकर अन्दर के तरल को मिलायें जब तक सारे पदार्थ घुलकर मिश्रित रूप मे आ जावें।

(vi) मिश्रित करने के बाद ब्यूटाइरोमीटर को 70°C ताप पर नियन्त्रित जल-ऊष्मक में 4-5 मिनट तक रखें जिससे डाट नीचे रहे।

(vii) अब ब्यूटाइरोमीटर को गरबर मशीन में रखें कि चौड़ा मुँह परिधि की ओर रहे। मशीन को 1100 चक्कर प्रति मिनट गति पर 4—5 मिनट तक चलायें।

(viii) गरबर मशीन से ब्यूटाइरोमीटर को (डाट नीचे की ओर) जल ऊष्मक मे 4-5 तक रखें जब वसा स्पष्ट तरल में दिखने लगे।

(ix) वसा परत का आयतन ब्यूटाइरोमीटर की डाट को 'की' की सहायता से समायोजन करके अशांकित स्तम्भ की माप को नोट करें।

(x) वसा परत के ऊपरी नव चन्द्रक (Minisaus) के निचले भाग तक की माप को लें। आँख उस बिन्दु पर सीधी जानी चाहिए जिस पर माप लेनी है।

प्रेक्षण सारिणी

दूध का नमूना	ब्यूटाइरोमीटर की माप		वसा प्रतिशत (B—A)
	प्रथम माप (A)	अन्तिम माप (B)	

सावधानियां—(i) दूध का नमूना सही ढंग से लिया जावे।

(ii) सल्फ्यूरिक अम्ल सावधानी से डालें जिससे शरीर, कपड़े और मेज पर न गिरें।

(iii) ब्यूटाइरोमीटर में डाले जाने वाले कोई भी तरल मुँह को गीला न करें।

(iv) सूखी रबड़ डाट को सावधानीपूर्वक अच्छी तरह बन्द करें।

(v) गरबर मशीन में ब्यूटाइरोमीटर रखने से पूर्व देख लें कि दूध के सभी पदार्थ पूर्णरूप से घुल गये हों।

(vi) गरबर मशीन सन्तुलित रहे इसके लिए ब्यूटाइरोमीटर आमने-सामने रखें।

(vii) जल-ऊष्मक का तापमान 70°C नियन्त्रित रखे।

(viii) माप लेने के बाद सारे उपकरणों को धोवन सोडे के गर्म पानी या टीपोल के घोल से भलीभाँति धोकर और सुखाकर रखें।

(x) I. S. I मार्क ब्यूटाइरोमीटर उपयोग में लावें। अन्दर के तरल का तल कम होने पर पिपेट की सहायता से थोड़ा साफ पानी मिलावें।

अशुद्धि का कारण—

(i) सही अम्ल का न होना—सल्फ्यूरिक अम्ल की सान्द्रता सही न होने पर ब्यूटाइरोमीटर के भीतर के द्रव का रंग भूरा हो जाता है जो कैसीन के कारण है।

(ii) बुलबुलों का होना—अपकेन्द्रित या घूर्णन कम होने के कारण होता है। ब्यूटाइरोमीटर को जल ऊष्मक में कुछ देर रखें।

(iii) सही तल न आना—10·75 मि०ली० की पिपेट, साधारण ब्यूटाइरोमीटर तथा दूध के जलने के कारण होता है। रबर कार्क सावधानी से खोल पिपेट की सहायता से थोड़ा पानी मिलायें।

(iv) वसा की पर्त के नीचे काली पर्त का होना—रबड़ कार्क के जलने से होता है। प्रयोग के बाद कार्क को सोडे के घोल मे भिगोकर गरम पानी से धोयें।

3. अम्लता परीक्षण (Acidity Test)

पशु का ताजा दुहा दूध अम्लीय (पी-एच मान 6·7) होता है पर उसमें लैक्टिक अम्ल नहीं मिलता है। यह अम्लीयता दो प्रकार की होती है –

1. प्राकृतिक या स्वाभाविक अम्लीयता (Natural Acidity)—दूध में फास्फेट, साइट्रेट लवणों, दुग्ध प्रोटीन-कैसीन, अल्ब्यूमिन तथा कार्बन डाइऑक्साइड आदि पदार्थ होते है जिसके कारण यह अम्लीयता होती है। यह 0·10 से 0·16 *प्रतिशत होती है।*

2. विकसित अम्लीयता (Developed Acidity)—दूध को रखने पर उसमें *अम्लता उत्पन्न होती है जो दुग्ध शर्करा (Lartose) के स्ट्रेप्टोकोकस लैक्टिस* जीवाणु के किण्वन से लैक्टिक अम्ल में बदल जाती है। दूध में 0·2 प्रतिशत से अधिक अम्ल होने पर यह गरम करने पर फट जाता है।

उद्देश्य—(i) दूध की ताजगी जानना।

(ii) पनीर-निर्माण प्रक्रिया पर नियन्त्रण रखना।

(iii) दूध के गरम करने पर स्कंदित (Coazulate), फटने की क्रिया को जानना।

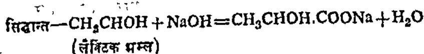
(iv) मक्खन बनाने के लिए क्रीम की अम्लता की उदासीनता की जाँच करना।

उदासीनीकरण (Titration)—यह परीक्षण इस रासायनिक सिद्धान्त पर आधारित है कि एक जैसी सान्द्रता वाले अम्लों और क्षारों के बराबर आयतन एक एक दूसरे को पूर्ण उदासीन बना देते हैं। उदासीनता बिन्दु का निर्धारण एक सूचक *(Indicator) द्वारा किया जाता है जो अम्ल में रंगहीन, क्षार मे* रंगीन तथा उदासीन होते ही गुलाबी (Pinc) रंग देता है।

नॉरमल घोल—किसी भी तत्व के तुल्यांक भार का एक लीटर (1000 मि०ली०) का घोल नॉरमल घोल कहलाता है। इसमें NaOH का घोल प्रयोग *में लाते है। NaOH की 40 ग्राम मात्रा का एक लीटर का घोल* नॉरमल घोल *होता है।*

अनुमापन द्वारा दूध में अम्लता का प्रतिशत निर्धारण

उपकरण – स्टैण्ड पर लगा क्लैम्प सहित ब्यूरेट, पिपेट 10 मि० ली०, बीकर, काँच की छड़, (N/9 या N/10) क्षारीय घोल, फिनोलफ्थेलीन सूचक, आसुत जल।



सिद्धान्त—$CH_2CHOH + NaOH = CH_3CHOH.COONa + H_2O$
(लैक्टिक अम्ल)



$NaOH \equiv CH_3CHOH.COOH$

(N शक्ति) 40 gm. = 90 gm. (N शक्ति)

∵ 1 लिटर नॉरमल NaOH = 90 ग्राम लैक्टिक अम्ल का उदासीन करता है

∴ 1 लिटर N/9 NaOH = $\frac{90}{9}$ या 10 ग्राम लैक्टिक अम्ल को उदासीन करेंगे।

इसी प्रकार N/10 NaOH = ·009 ग्राम लैक्टिक अम्ल को उदासीन करेगा।

अतः अम्लता प्रतिशत

$$= \frac{\text{प्रयोग किया N/10 NaOH विलयन का आयतन} \times \cdot 009}{\text{दूध का भार (ग्राम में)}} \times 100$$

अम्लता प्रतिशत

$$= \frac{\text{प्रयोग किया N/9 NaOH विलयन का आयतन} \times \cdot 01}{\text{दूत का भार}} \times 100$$

दूध का भार उसे तौलकर या इसके आपेक्षिक घनत्व को उसके आयतन (मि०ली०) से गुणा करके ज्ञात किया जाता है।

विधि—

(i) ब्यूरेट को साफ करके तथा थोड़े क्षारीय घोल से धोकर N/9 NaOH का विलयन से भर दें।

(ii) साफ बीकर में पिपेट की सहायता से 10 मि० ली० दूध डाले फिर दूसरी साफ पिपेट से इतना ही आसुत जल डालकर अच्छी तरह मिलायें।

(iii) दूध में 3-4 बूंदें फिनोलफ्थेलीन को डालकर कांच की छड़ से मिलायें।

(iv) ब्यूरेट में क्षार विलयन की माप नवचन्द्रक के निम्नतम बिन्दु को पढ़ें।

अम्लता प्रतिशत = ·2

इसी प्रकार – N/10 NaOH क्षारीय विलयन उपयोग में लाने पर अम्लता निम्न प्रकार ज्ञात करेंगे—

$$\text{अम्लता प्रतिशत} = \frac{\text{प्रयोग किए गए N/10 क्षार विलयन का आयतन (ml)} \times \cdot 009}{\text{दूध का भार (ग्राम में)}} \times 100$$

सावधानियाँ—

(i) दूध में क्षार की एक-एक बूँद डाली जावें।

(ii) सूचक द्वारा उत्पन्न गुलाबी रंग कम से कम एक मिनट तक रहने पर माप लेनी चाहिए।

(iii) प्रत्येक अनुमापन में लगभग एक रंग उत्पन्न होने पर माप लें।

(iv) प्रत्येक बार क्षार डालने पर बीकर के दूध को छड़ से सावधानीपूर्वक हिलावें जिससे दूध बाहर न छलके।

4. कलकन परीक्षण (Sediment Test)—

दूध में से पानी को वाष्पीकृत करने पर जो पदार्थ शेष बचता है, उसे कुल ठोस (*Total Solid, T. S.*) या शुष्क पदार्थ कहते हैं। इस अवशेष में वसा, प्रोटीन, लैक्टोस तथा खनिज पदार्थ मिलते हैं जिनकी मात्रा वसा की मात्रा पर निर्भर होती है। वसा की मात्रा अधिक होने पर ठोस की मात्रा भी अधिक होगी। गाय के दूध में कुल ठोस 12 से 14 प्रतिशत तथा भैंस के दूध में 15 से 18 प्रतिशत ठोस पदार्थ होते है।

कुल ठोस पदार्थ में वसा अंश घटाने पर वसारहित ठोस पदार्थ (Sold not fat, S. N. F.) बच जाते हैं जिनमें प्रोटीन लैक्टोज तथा खनिज पदार्थ होते है। यह मात्रा गाय के दूध में 8·5 प्रतिशत तथा भैंस के दूध मे 9·22 प्रति. होती है।

कुल ठोस=पूर्ण दूध-पानी

वसा रहित ठोस पदार्थ=कुल ठोस-वसा।

उद्देश्य—दूध से क्रीम निकालने या पानी मिलाने की जाँच ठोस पदार्थ की प्रतिशत से निर्धारित होती है।

दूध से क्रीम निकालने पर उसका आ० घ० बढ़ जाता है जिससे वसा तथा कुल ठोस की मात्रा घट जाती है तथा वसा रहित ठोस पदार्थों की मात्रा बढ़ जाती है।

पानी मिलाने से दूध का आ० घ०, वसा प्रतिशत, ठोस तथा वसा रहित ठोस पदार्थों की मात्रा में कमी आ जाती है।

विधियाँ—(1) वाष्पन या भारात्मक विधि।

(2) परिकलनों द्वारा—इसमें कई सूत्र उपयोग में लाये जाते हैं। इसके लिए दूध का आपेक्षिक घनत्व तथा वसा प्रतिशत परीक्षण आवश्यक होता है।

(i) फ्लीशमान का सूत्र—

1. कुल ठोस का प्रतिशत $= 1{\cdot}2$ व $+ 2{\cdot}665 \times \frac{100 \text{ आ॰} - 100}{\text{आयतन}}$

2. वसा रहित ठोस पदार्थ का प्रतिशत $= \frac{\text{ल}}{4}$ 0 2 व

जहाँ—ल = 15°c पर लैक्टोमीटर की माप
व = वसा प्रतिशत
आ० = आपेक्षिक घनत्व।

(ii) रिचमण्ड परिकलन-पट्टिका द्वारा——परिकलनों में लगने वाले श्रम तथा समय बचाने के लिए परिकलन पट्टिका का प्रयोग किया जाता है। यह एक पैमाना होता है जिसके बीच में इधर-उधर सरकने वाला एक सर्पण (Slip) होता है। पट्टिका पर ऊपर बाईं ओर तापमान (0° से 25°c तक) का पैमाना दाईं ओर वसा (0 से 9 तक) प्रतिशत अंकित होता है।

पट्टिका पर नीचे की ओर कुल ठोसों की प्रतिशत (8 से 20 तक) का पैमाना अंकित रहता है। सर्पण पर ऊपर बाईं ओर लैक्टोमीटर की माप (22 से 37 तक) और नीचे, दाईं ओर आपेक्षिक घनत्व (20 से 37 तक की संशोधित माप) का पैमाना अंकित होता है।

दूध की लैक्टोमीटर माप, दूध का तापमान तथा वसा प्रतिशत ज्ञात होने पर परिकलन पट्टिका की सहायता से कुल ठोस की मात्रा ज्ञात कर सकते हैं।

विधि—लैक्टोमीटर द्वारा प्राप्त माप को तापमान के पैमाने पर 20°c पर अंकित तीर चिह्न पर रखने से दूध का वास्तविक तापमान के सामने पड़ने वाली माप 20°c पर लैक्टोमीटर की संशोधित माप बताती है।

इसके बाद सर्पण पर दाईं ओर बने तीर चिह्न को दूध के वसा प्रतिशत अंश के सामने रखते हैं। सर्पण के नीचे की ओर बने आ० घ० पैमाने पर लैक्टोमीटर की संशोधित माप के सामने कुल ठोस पैमाने का अंश दूध में कुल ठोस प्रतिशत मात्रा को बताता है।

प्रश्न

1. आपेक्षिक घनत्व किसे कहते हैं ? लैक्टोमीटर का चित्र बनाओ। प्रयोगशाला में आ० घ० कैसे ज्ञात करोगे ?
2. दुग्ध वसा की प्रतिशत ज्ञात करने की विधि का वर्णन करो। वसा परीक्षण करते समय बरतने योग्य सावधानियों का उल्लेख करो ?
3. गाय के दूध मे पाये जाने वाले तत्वों को बताइये। दूध में वसा ज्ञात करने की विधि का वर्णन कीजिए।
4. दूध की अम्लता के प्रकार तथा उनके महत्त्व का वर्णन करो। दूध की अम्लीयता ज्ञात करने की विधि भी लिखिए।
5. शुद्ध एवं ताजे दूध में कितनी अम्लता पाई जाती है ? दूध मे अम्लता क्यों बढ़ जाती है अम्ल ज्ञात करने की विधि का सविस्तार वर्णन करो।

अध्याय-31

डेरी फार्म पर रखे जाने वाले अभिलेख
(Farm-Records)

किसी भी व्यवसाय की आर्थिक स्थिति की जानकारी के लिए आवश्यक है कि इनके उचित अभिलेख रखे जावें। प्रत्येक दुग्धशाला पर अनेक अभिलेख रखे जाते हैं जो पशु को दिये आहार, उत्पादन आदि से सम्बन्धित होते हैं जिनसे इनकी प्रगति तथा आय-व्यय का ज्ञान होता है जिनसे भविष्य की योजना बनाने मे सहायता मिलती है।

अभिलेख रखने से लाभ—

1. अधिक दूध उत्पादन—प्रत्येक पशु के दिन प्रतिदिन तथा ब्यात के उत्पादन का ज्ञान होता है। कम दूध देने वाले पशु को अच्छा सन्तुलित आहार *देकर अधिक दूध के लिए प्रयास करते हैं।*

2 पशु-स्वास्थ्य का ज्ञान—अभिलेखों से पशु की विस्तृत जानकारी होती है। उसके स्वास्थ्य तथा उत्पादन पशुपालक को उसकी बीमारी का ज्ञान कराता है जिससे पशु को झुण्ड से अलग करके उपचार कराता है और अन्य पशु सक्रमण से बच जाते हैं।

3. *उत्तम पशु का चुनाव—दुग्ध-अभिलेख तथा पशु के अभिलेख से संतति* चयन में सहायता मिलती है। अच्छी माताओं के बछिया-बछड़े में अच्छे गुणों की सम्भावना रहती है।

6. नियमित एवं सन्तुलित आहार—किसी भी डेरी का कुल व्यय का $\frac{2}{3}$ भाग पशु आहार पर व्यय होता है। अतः पशु के भार तथा उत्पादन के अनुसार सन्तुलित चारा-दाना की व्यवस्था उत्पादन अभिलेख से ही सम्भव है।

7. उचित प्रजनन—पशु की प्रजनन क्षमता कई गुणों से जानी जाती है जिसके लिए पशु तथा उनकी संतति के विभिन्न उत्पादन के लेखे रखते हैं। निम्न-कोटि के पशु को झुण्ड से अलग करके अच्छी सन्तति को रखना चाहिए।

8. योजना-निर्माण में सहायक—विभिन्न अभिलेखों से दुधारु पशु की उत्पादन क्षमता का पता लगता है। अधिक समय दूध देने वाले पशुओं को रखा जाना डेरी के लिए लाभप्रद है। डेरी फार्म को विस्तृत करने की योजना बनाई जा सकती है।

9 केन्द्रीय गौ-वृन्द रजिस्टर में अंकन करना—भारत सरकार के केन्द्रीय गौ-वृन्द रजिस्टर (Central Herd Book) में अच्छे उत्पादक पशुओं का रजिस्ट्रेशन कराया जा सकता है जिससे विभिन्न विशेषज्ञों की परामर्श से इनकी उन्नति की योजना बनाई जाती है।

अभिलेखों का वर्गीकरण—डेरी पर रखे जाने वाले विभिन्न अभिलेखों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत करते है—

(1) उत्पादन अभिलेख
(2) आहार अभिलेख
(3) प्रजनन अभिलेख
(4) स्वास्थ्य अभिलेख
(5) विविध अभिलेख।

1. उत्पादन अभिलेख (Production Records)—इसके अन्तर्गत पशु के ब्याने की तिथि से दिन प्रतिदिन का पूरे ब्यांत के दूध की मात्रा, इसका वितरण आदि के विभिन्न अभिलेख रखे जाते हैं—

(1) दुग्ध अभिलेख रजिस्टर
(2) दुग्ध वितरण रजिस्टर
(3) दूध उत्पादन रजिस्टर
(4) ब्यांत अभिलेख पत्र
(5) कूपन बिक्री रजिस्टर
(6) कूपन अभिलेख रजिस्टर।

2. आहार अभिलेख (Feeding Records)—पशुओं को दिये जाने वाले

दाना-चारा का लेखा आवश्यक है जिससे पशुओं को दिए गए आहार से कितना दूध मिल रहा है। इससे आय-व्यय की जानकारी मिलती है। उचित उत्पादन के लिए पशु को दिन प्रतिदिन का दाना-चारा तौलकर पशु खाद्य रजिस्टर में अलग-अलग अंकित किया जाता है।

3. प्रजनन अभिलेख (Breeding Records)—प्रत्येक डेरी पर ये अभिलेख आवश्यक हैं जिसमें पशु के इतिवृत्त पत्र (History Sheet) और वंशावली लेखे (Pedigree Records) होते हैं। ये गाय तथा सांड के अलग-अलग रखे जाते है। पशु तथा इनके पूर्वजों के विस्तृत अभिलेख से अच्छे पशु चयन में सहायता मिलती है।

1. पशु वंशावली तथा वृत पत्र
2. पशु का परिचय पत्र
3. गर्भ धारण अभिलेख।

4. स्वास्थ्य अभिलेख (Health Records)—डेरी के विभिन्न पशुओं के स्वास्थ्य अभिलेख रखे जाते है जिससे होने वाली बीमारी से बचाव होता है—

1. पशु भार अभिलेख
2. बच्चों के भार अभिलेख
3. पशु का स्वास्थ्य अभिलेख।

5. विविध अभिलेख (Miscellaneous Records)—इन अभिलेखो के अतिरिक्त डेरी पर अन्य अभिलेख रखना अत्यन्त आवश्यक है। फार्म पर आने वाली विभिन्न सामग्री (भण्डार), कर्मचारी की उपस्थिति, वेतन, आय-व्यय के लेखे तथा पशु संख्या आदि के लेखे किए जाते है—

1. स्थाई तथा अस्थाई सामग्री के अभिलेख
2 उपस्थिति रजिस्टर
3. वेतन रजिस्टर
4. आय-व्यय अभिलेख
5. पशु रजिस्टर
6. विविध पत्रवालियाँ।

दूध का लेखा (Milk Recording)

यह दोहन क्रिया का ही भागहै जो दूध दोहन के तुरन्त बाद किया जाता है।

सामग्री - डेरी हुई रिकार्डर-बाल्टी सहित, दोहन पात्र, दूध संग्रह एवं वितरण पात्र, छलनी, सील, तार और सील पिसर।

विधि—डेरी फार्म पर प्रत्येक ग्वाला 8-10 गायों या भैंसों के दूध को

निश्चित बाल्टी में एक-एक करके दुहता है। दूध दोहन के बाद ग्वाला दूध को नियत स्थान पर बैठे व्यक्ति-दूध अभिलेख के पास ले जाता है जिसके पास दूध अभिलेख रजिस्टर होता है। रजिस्टर में सारे पशु के नाम और नम्बर आदि लिखे होते हैं।

ग्वाला इस व्यक्ति के पास जाकर पशु का नाम या नम्बर पुकारता है और दूध को डेरी हुई रिकार्डर पर लटकी बाल्टी में डाल देता है। अभिलेखक दूध की मात्रा को रजिस्टर में निश्चित स्थान में लिख देता है, इसी प्रकार सभी पशुओं के दूध का लेखा किया जाता है।

इस प्रकार दूध का एक दिन के एक समय के लेखे को तैयार किया जाता है। दूसरे समय भी इसी प्रकार दूध का लेखा तैयार किया जाता है तथा यह प्रक्रिया पूरे माह चलती रहती है। माह के समाप्त होने पर पूरे माह का योग कर लिया जाता है और इसी भाँति दूसरे माह, पशु के पूरे ब्यात का लेखा तैयार किया जाता है।

लाभ —

(i) पशु के पूरे ब्यांत का उत्पादन मालूम कर सकते हैं।

(ii) दूध उत्पादन की मात्रा के अनुसार पशु के चारा-दाना की मात्रा को ज्ञात करके अच्छा पोषक आहार दिया जा सकता है।

(iii) अनुत्पादक गायों को हटाकर डेरी को लाभप्रद बनाया जा सकता है।

(iv) अच्छे पशुओं का चुनाव किया जा सकता है तथा भविष्य की योजना बनाने में सहायता मिलती है।

(v) सेण्ट्रल हर्ड बुक में अच्छे दुधारु पशुओं को अङ्कित कराया जा सकता हैं।

दुग्ध अभिलेख पत्र (Milk Recording Register)

फार्म का नाम....

माह....

वर्ष ...

गाय का नाम और संख्या	गाय ब्याने की तिथि	प्रतिदिन दूध उत्पादन								माह के दूध का योग	गत माह के दूध का योग	कुल योग
		1		2		—		30				
		प्रातः	शाम	प्रातः	शाम	प्रातः	शाम	प्रातः	शाम			
योग												
पूर्ण योग												
हस्ताक्षर प्रभारी												

दुग्ध वितरण अभिलेख पत्र (Milk Disposal Register)

फार्म का नाम....

माह ... वर्ष....

क्र० सं०	उपभोक्ता के नाम	1		2		3		—		30		माह का योग	दर	मूल्य	गत शेष	कुल राशि	प्राप्त धन राशि	विशेष
		प्रातः	सायं	प्रातः	सायं	प्रातः	सायं			प्रातः	सायं							

दूध उत्पादन अभिलेख पत्र (Milk Production Register)

फार्म का नाम ---

माह	1981		1982		1983		1984		विशेष
	दूध लिटर	वसा प्रतिशत	दूध लिटर	वसा प्रतिशत	दूध लिटर	वसा प्रतिशत	दूध लिटर	वसा प्रतिशत	
जनवरी									
फरवरी									
मार्च									
अप्रैल									
मई									
जून									
जौलाई									
अगस्त									
सितम्बर									
अक्टूबर									
नवम्बर									
दिसम्बर									
योग दूध									

ब्यांत अभिलेख पत्र

फार्म का नाम···· वर्ष

क्र.सं.	पशु का नाम एवं प्रसव तिथि	प्रथम ब्यांत			द्वितीय ब्यांत			तृतीय ब्यांत			चतुर्थ ब्यांत		
		दूध की मात्रा	दूध के दिन	सूखे दिन	दूध की मात्रा	दूध के दिन	सूखे दिन	दूध की मात्रा	दूध के दिन	सूखे दिन	दूध की मात्रा	दूध के दिन	सूखे दिन

कूपन अभिलेख पत्र

फार्म का नाम···· वर्ष····

कूपन का प्रारम्भिक नम्बर								कूपन का अन्तिम नम्बर

कूपन बिक्री अभिलेख पत्र

दिनांक	क्रम स.	नाम	पता	स्टाफ कूपन	छात्र के कूपन	दूध के कूपन	क्रीम के कूपन	मक्खन के कूपन	सेपरेटा दूध के कूपन	कूपन-नम्बर	
										प्रारम्भिक	अन्तिम

पशु खाद्य अभिलेख पत्र (Cattle Feed Register)

फार्म का नाम····　　　　माह　　　　वर्ष····

पशु का नाम व नम्बर	1	2	3	4	5	—	29	30	माह का योग	गत माह तक योग	कुल योग
योग											

हस्ताक्षर प्रमारी

पशु वंशावली एवं वृत पत्र

फार्म का नाम...वर्ष

पहिचान के चिह्न...

नाम........................ नं०........................ किस्म........................

जन्म स्थान........................ जन्म तिथि........................ बीमारी की टीका........................

चित्र

तिथि एवं स्थान

क्रय तिथि........................ क्रय अधिकारी........................

विक्रयकर्ता का नाम एवं स्थान........................ मूल्य........................ अनुमानित उम्र........................

अन्तिम विवरण

विक्रय तिथि........................ स्थान........................ क्रयकर्ता का नाम........................ मूल्य........................ हस्ताक्षर........................

मृत्यु तिथि........................ स्थान........................ मृत्यु का कारण........................ तिथि........................

पशु परिचय पत्र

फार्म का नाम.................

पशु का नाम व नम्बर................. जन्म तिथि.................

पिता का नाम व नम्बर................. माता का नाम व नम्बर.................

गर्भ धारण अभिलेख		प्रसव अभिलेख			ब्यांत अभिलेख		
तिथि	सांड का नाम व नम्बर	तिथि	बच्चे का लिंग	बच्चे का मार कि. ग्राम	दूध सूखने की तिथि	दूध उत्पादन (लिटर)	विशेष

गर्भ धारण अभिलेख पत्र

फार्म का नाम................. वर्ष.................

गर्भ धारण की संख्या	गर्भ धारण की तिथि	गर्भित पशु		सांड		पशु मालिक का नाम एवं पता	प्रसव की तिथि	बच्चा					अन्य
		नाम व नम्बर	किस्म	नाम व नम्बर	किस्म			लिंग	नाम व नं०	रंग	पहिचान चिह्न	विवरण	

पशु-भार अभिलेख

फार्म का नाम............ वर्ष...........

क्रम संख्या	पशु का नाम व नम्बर	जन्म तिथि	पशु भार किलो ग्राम											
			जनवरी	फरवरी	मार्च	अप्रैल	मई	जून	जौलाई	अगस्त	सितम्बर	अक्टूबर	नवम्बर	दिसम्बर

बच्चों का भार अभिलेख

फार्म का नाम........ वर्ष............

क्र० सं०	पिता का नाम व नम्बर	माता का नाम व नम्बर	लिंग	बछड़े का नाम व नम्बर	जन्म तिथि	भार कि० ग्राम							
						जन्म काल	एक सप्ताह	दूसरे सप्ताह	माह प्रथम	दूसरा माह	तीसरा	चौथा	बारहवां

पशु स्वास्थ्य अभिलेख

फार्म का नाम········

नाम········ संख्या········ पता·· ·····

क्षय रोग परीक्षायें यूथ संख्या········ नस्ल········

तिथि परिणाम साधारण स्वास्थ्य

ब्रुसेलोसिस परीक्षायें

तिथि परिणाम

प्रभारी अफसर

प्रश्न

1. पशुशाला में विभिन्न अभिलेखों के नमूने के प्रारूप बनाकर प्रत्येक खाने का नाम लिखो। (राज. बोर्ड, 1978)
2. दुग्ध अभिलेखन से लाभ लिखिए, दैनिक दुग्ध अभिलेखन का नमूना बनाइए। (राज. बोर्ड, 1982)
3. डेरी पर अभिलेख रखने से क्या लाभ है, कौन-कौन अभिलेख रखने की आवश्यकता होती है ?